राजकमल पेपरबैक्स

निर्मल वर्मा

प्रतिनिधि कहानियाँ

प्रतिनिधि कहानियाँ

निर्मल वर्मा

प्रतिनिधि कहानियाँ

निर्मल वर्मा

राजकमल पेपरबेक्स

राजकमल पेपरबैक्स में
पहला संस्करण : 1987
दूसरा संस्करण : 1988

© निर्मल वर्मा

राजकमल पेपरबैक्स : उत्कृष्ट साहित्य के जनसुलभ संस्करण

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
द्वारा प्रकाशित

टाइपसैटिंग : फोटोटाइप डिवीज़न,
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
एफ-5, सैक्टर-8, नौएडा-201 301

मुद्रक : मॉडर्न प्रिंटर्स, मॉडल टाउन,
दिल्ली-110009

मूल्य : रु. 15.00

आवरणचित्र : रामकुमार

PRATINIDHI KAHANIYAN
Representative Stories of NIRMAL VERMA

क्रम

परिन्दे	7
अँधेरे में	36
माया दर्पण	57
दूसरी दुनिया	72
अन्तर	92
दो घर	102
एक दिन का मेहमान	124
पिछली गर्मियों में	143
पिक्चर पोस्टकार्ड	167

परिन्दे

Can we do nothing for the dead? And for a long time the answer had been—nothing! —*Ktaherine Mansfield*

अँधेरे गलियारे में चलते हुए लतिका ठिठक गयी। दीवार का सहारा लेकर उसने लैम्प की बत्ती बढ़ा दी। सीढ़ियों पर उसकी छाया एक बेडौल कटी-फटी आकृति खींचने लगी। सात नम्बर कमरे में लड़कियों की बातचीत और हँसी-ठहाकों का स्वर अभी तक आ रहा था। लतिका ने दरवाजा खटखटाया। शोर अचानक बन्द हो गया।

"कौन है ?"

लतिका चुप खड़ी रही। कमरे में कुछ देर तक घुसर-पुसर होती रही, फिर दरवाजे की चिटखनी के खुलने का स्वर आया। लतिका कमरे की देहरी से कुछ आगे बढ़ी, लैम्प की झपकती लौ में लड़कियों के चेहरे सिनेमा के परदे पर ठहरे हुए क्लोजअप की भाँति उभरने लगे।

"कमरे में अँधेरा क्यों कर रखा है ?" लतिका के स्वर में हल्की-सी झिड़की का आभास था।

"लैम्प में तेल ही खत्म हो गया, मैडम !"

यह सुधा का कमरा था, इसलिए उसे ही उत्तर देना पड़ा। होस्टल में शायद वह सबसे अधिक लोकप्रिय थी, क्योंकि सदा छुट्टी के समय या रात को डिनर के बाद आस-पास के कमरों में रहनेवाली लड़कियों का जमघट उसी के कमरे में लग जाता था। देर तक गप-शप, हँसी-मजाक चलता रहता।

"तेल के लिए करीमुद्दीन से क्यों नहीं कहा ?"

"कितनी बार कहा मैडम, लेकिन उसे याद रहे तब तो।"

कमरे में हँसी की फुहार एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गयी। लतिका के कमरे में आने से अनुशासन की जो घुटन घिर आयी थी वह अचानक बह गयी। करीमुद्दीन होस्टल का नौकर था। उसके आलस और काम में टालमटोल करने के किस्से होस्टल की लड़कियों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आते थे।

लतिका को हठात् कुछ स्मरण हो आया। अँधेरे में लैम्प घुमाते हुए चारों ओर निगाहें

दौड़ायीं। कमरे में चारों ओर घेरा बनाकर वे बैठी थीं – पास-पास एक-दूसरे से सटकर। सबके चेहरे परिचित थे, किन्तु लैम्प के पीले मद्धिम प्रकाश में मानो कुछ बदल गया था, या जैसे वह उन्हें पहली बार देख रही थी।

"जूली, अब तक तुम इस ब्लाक में क्या कर रही हो ?"

जूली खिड़की के पास पलँग के सिरहाने बैठी थी। उसने चुपचाप आँखें नीची कर लीं। लैम्प का प्रकाश चारों ओर से सिमटकर अब केवल उसके चेहरे पर गिर रहा था।

"नाइट रजिस्टर पर दस्तखत कर दिये ?"

"हाँ, मैडम।"

"फिर... ?" लतिका का स्वर कड़ा हो आया। जूली सकुचाकर खिड़की से बाहर देखने लगी।

जब से लतिका इस स्कूल में आयी है, उसने अनुभव किया है कि होस्टल के इस नियम का पालन डाँट-फटकार के बावजूद नहीं होता।

"मैडम, कल से छुट्टियाँ शुरू हो जायेंगी, इसलिए आज रात हम सबने मिलकर..." और सुधा पूरी बात न कहकर हेमन्ती की ओर देखते हुए मुस्कराने लगी।

"हेमन्ती के गाने का प्रोग्राम है, आप भी कुछ देर बैठिए न।"

लतिका को उलझन मालूम हुई। इस समय यहाँ आकर उसने इनके मजे को किरकिरा कर दिया। इस छोटे-से हिल-स्टेशन पर रहते उसे खासा अर्सा हो गया, लेकिन कब समय पतझड़ और गर्मियों का घेरा पार कर सर्दी की छुट्टियों की गोद में सिमट जाता है, उसे कभी याद नहीं रहता।

चोरों की तरह चुपचाप वह देहरी से बाहर हो गयी। उसके चेहरे का तनाव ढीला पड़ गया। वह मुस्कराने लगी।

"मेरे संग स्नो-फॉल देखने कोई नहीं ठहरेगा ?"

"मैडम, छुट्टियों में क्या आप घर नहीं जा रही हैं ?" सब लड़कियों की आँखें उस पर जम गयीं।

"अभी कुछ पक्का नहीं है – आई लव द स्नो-फॉल।"

लतिका को लगा कि यही बात उसने पिछले साल भी कही थी और शायद पिछले से पिछले साल भी। उसे लगा मानों लड़कियाँ उसे सन्देह की दृष्टि से देख रही हैं, मानों उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। उसका सिर चकराने लगा, मानो बादलों का स्याह झुरमुट किसी अनजाने कोने से उठकर उसे अपने में डुबो लेगा। वह थोड़ा-सा हँसी, फिर धीरे-से उसने सर को झटक दिया।

"जूली, तुमसे कुछ काम है, अपने ब्लॉक में जाने से पहले मुझसे मिल लेना – वेल गुड नाइट !" लतिका ने अपने पीछे दरवाज़ा बन्द कर दिया।

"गुड नाइट मैडम, गुड नाइट, गुड नाइट..."

गलियारे की सीढ़ियाँ न उतरकर लतिका रेलिंग के सहारे खड़ी हो गयी। लैम्प की बत्ती को नीचे घुमाकर कोने में रख दिया। बाहर धुन्ध की नीली तहें बहुत घनी हो चली थीं। लॉन पर लगे हुए चीड़ के पत्तों की सरसराहट हवा के झोंकों के संग कभी तेज, कभी धीमी होकर भीतर बह आती थी। हवा में सर्दी का हल्का-सा आभास पाकर लतिका के दिमाग में कल से शुरू होनेवाली छुट्टियों का ध्यान भटक आया। उसने आँखें मूँद लीं। उसे लगा कि जैसे उसकी टाँगें बाँस की लकड़ियों की तरह उसके शरीर से बँधी हैं, जिसकी गाँठें धीरे-धीरे खुलती जा रही हैं। सिर की चकराहट अभी मिटी नहीं थी, मगर अब जैसे वह भीतर न होकर बाहर फैली हुई धुन्ध का हिस्सा बन गयी थी।

सीढ़ियों पर बातचीत का स्वर सुनकर लतिका जैसे सोते से जगी। शॉल को कन्धों पर समेटा और लैम्प उठा लिया। डॉ. मुकर्जी मि. ह्यूबर्ट के संग एक अंग्रेजी धुन गुनगुनाते हुए ऊपर आ रहे थे। सीढ़ियों पर अँधेरा था और ह्यूबर्ट को बार-बार अपनी छड़ी से रास्ता टटोलना पड़ता था। लतिका ने दो-चार सीढ़ियाँ उतरकर लैम्प को नीचे झुका दिया। "गुड ईवनिंग डाक्टर, गुड ईवनिंग मि. ह्यूबर्ट !" "थैंक यू मिस लतिका" – ह्यूबर्ट के स्वर में कृतज्ञता का भाव था। सीढ़ियाँ चढ़ने से उनकी साँस तेज हो रही थी और वह दीवार से लगे हुए हाँफ रहे थे। लैम्प की रोशनी में उनके चेहरे का पीलापन कुछ ताँबे के रंग जैसा हो गया था।

"यहाँ अकेली क्या कर रही हो मिस लतिका ?" –डाक्टर ने होंठों के भीतर से सीटी बजायी।

"चेकिंग करके लौट रही थी। आज इस वक्त ऊपर कैसे आना हुआ मिस्टर ह्यूबर्ट ?"

ह्यूबर्ट ने मुस्कराकर अपनी छड़ी डाक्टर के कन्धों से छुला दी – "इनसे पूछो, यही मुझे जबर्दस्ती घसीट लाये हैं।"

"मिस लतिका, हम आपको निमन्त्रण देने आ रहे थे। आज रात मेरे कमरे में एक छोटा-सा कन्सर्ट होगा जिसमें मि. ह्यूबर्ट शोपां और चाइकोव्स्की के कम्पोजीशन बजायेंगे और फिर क्रीम कॉफी पी जायेगी। और उसके बाद अगर समय रहा, तो पिछले साल हमने जो गुनाह किये हैं उन्हें हम सब मिलकर कन्फेस करेंगे।" डाक्टर मुकर्जी के चेहरे पर भारी मुस्कान खेल गयी।

"डाक्टर, मुझे माफ करें, मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं है।"

"चलिए, यह ठीक रहा। फिर तो आप वैसे भी मेरे पास आतीं।" डाक्टर ने धीरे-से लतिका के कन्धों को पकड़कर अपने कमरे की तरफ मोड़ दिया।

डाक्टर मुकर्जी का कमरा ब्लॉक के दूसरे सिरे पर छत से जुड़ा हुआ था। वह आधे बर्मी थे, जिसके चिह्न उनकी थोड़ी दबी हुई नाक और छोटी-छोटी चंचल आँखों से स्पष्ट थे। बर्मा पर जापानियों का आक्रमण होने के बाद वह इस छोटे से पहाड़ी शहर में आ बसे थे। प्राइवेट प्रैक्टिस के अलावा वह कान्वेन्ट स्कूल में हाईजीन-फिजियालोजी भी पढ़ाया करते थे और

इसलिए उनको स्कूल के होस्टल में ही एक कमरा रहने के लिए दे दिया गया था। कुछ लोगों का कहना था कि बर्मा से आते हुए रास्ते में उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी, लेकिन इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि डाक्टर स्वयं कभी अपनी पत्नी की चर्चा नहीं करते।

बातों के दौरान डाक्टर अक्सर कहा करते हैं – "मरने से पहले मैं एक दफा बर्मा जरूर जाऊँगा" – और तब एक क्षण के लिए उनकी आँखों में एक नमी-सी छा जाती। लतिका चाहने पर भी उनसे कुछ पूछ नहीं पाती। उसे लगता कि डाक्टर नहीं चाहते कि कोई अतीत के सम्बन्ध में उनसे कुछ भी पूछे या सहानुभूति दिखलाये। दूसरे ही क्षण अपनी गम्भीरता को दूर ठेलते हुए वह हँस पड़ते – एक सूखी, बुझी हुई हँसी।

होम-सिक्नेस ही एक ऐसी बीमारी है जिसका इलाज किसी डाक्टर के पास नहीं है।

छत पर मेज-कुर्सियाँ डाल दी गयीं और भीतर कमरे में परकोलेटर में कॉफी का पानी चढ़ा दिया गया।

"सुना है अगले दो-तीन वर्षों में यहाँ पर बिजली का इन्तजाम हो जायेगा" – डाक्टर ने स्प्रिट लैम्प जलाते हुए कहा।

"यह बात तो पिछले दस सालों से सुनने में आ रही है। अंग्रेजों ने भी कोई लम्बी-चौड़ी स्कीम बनायी थी, पता नहीं उसका क्या हुआ" – ह्यूबर्ट ने कहा। वह आराम कुर्सी पर लेटा हुआ बाहर लॉन की ओर देख रहा था।

लतिका कमरे से दो मोमबत्तियाँ ले आयी। मेज के दोनों सिरों पर टिकाकर उन्हें जला दिया गया। छत का अँधेरा मोमबत्ती की फीकी रोशनी के इर्द-गिर्द सिमटने लगा। एक घनी नीरवता चारों ओर घिरने लगी। हवा में चीड़ के वृक्षों की साँय-साँय दूर-दूर तक फैली पहाड़ियों और घाटियों में सीटियों की गूँज-सी छोड़ती जा रही थी।

"इस बार शायद बर्फ जल्दी गिरेगी, अभी से हवा में एक सर्द खुश्की-सी महसूस होने लगी है" – डाक्टर का सिगार अँधेरे में लाल बिन्दी-सा चमक रहा था।

"पता नहीं, मिस वुड को स्पेशल सर्विस का गोरखधन्धा क्यों पसन्द आता है। छुट्टियों में घर जाने से पहले क्या यह जरूरी है कि लड़कियाँ फादर एल्मण्ड का सर्मन सुनें ?" – ह्यूबर्ट ने कहा।

"पिछले पाँच साल से मैं सुनता आ रहा हूँ – फादर एल्मण्ड के सर्मन में कहीं हेर-फेर नहीं होता।"

डॉक्टर को फादर एल्मण्ड एक आँख नहीं सुहाते थे।

लतिका कुर्सी पर आगे झुककर प्यालों में कॉफी उँडेलने लगी। हर साल स्कूल बन्द होने के दिन यही दो प्रोग्राम होते है – चैपल में स्पेशल सर्विस और उसके बाद दिन में पिकनिक। लतिका को पहला साल याद आया जब डाक्टर के संग पिकनिक के बाद वह क्लब गयी थी।

डाक्टर बार में बैठे थे। बाल रूम कुमाऊँ रेजीमेण्ट के अफसरों से भरा हुआ था। कुछ देर तक बिलियर्ड का खेल देखने के बाद जब वह वापिस बार की ओर आ रहे थे, तब उसने दायीं ओर क्लब की लाइब्रेरी में देखा – मगर उसी समय डाक्टर मुकर्जी पीछे से आ गये थे। "मिस लतिका, यह मेजर गिरीश नेगी है।" बिलियर्ड रूम से आते हुए हँसी-ठहाकों के बीच वह नाम दब-सा गया था। वह किसी किताब के बीच में उँगली रखकर लायब्रेरी की खिड़की से बाहर देख रहा था।

"हलो डाक्टर" – वह पीछे मुड़ा। तब उस क्षण···

उस क्षण न जाने क्यों लतिका का हाथ काँप गया और कॉफी की कुछ गर्म बूँदें उसकी साड़ी पर छलक आयीं। अँधेरे में किसी ने नहीं देखा कि लतिका के चेहरे पर एक उनींदा रीतापन घिर आया है।

हवा के झोंके से मोमबत्तियों की लौ फड़कने लगी। छत से भी ऊँची काठगोदाम जानेवाली सड़क पर यू. पी. रोडवेज की आखिरी बस डाक लेकर जा रही थी। बस की हैड लाइट्स में आस-पास फैली हुई झाड़ियों की छायाएँ घर की दीवार पर सरकती हुई गायब होने लगीं।

"मिस लतिका, आप इस साल भी छुट्टियों में यहीं रहेंगी ?" डाक्टर ने पूछा।

डाक्टर का सवाल हवा में टँगा रहा। उसी क्षण पियानो पर शोपां का नोक्टर्न ह्यूबर्ट की उँगलियों के नीचे से फिसलता हुआ धीरे-धीरे छत के अँधेरे में घुलने लगा – मानो जल पर कोमल स्वप्निल उर्मियाँ भँवरों का झिलमिलाता जाल बुनती हुई दूर-दूर किनारों तक फैलती जा रही हों। लतिका को लगा कि जैसे कहीं बहुत दूर बर्फ की चोटियों से परिन्दों के झुण्ड नीचे अनजान देशों की ओर उड़े जा रहे हैं। इन दिनों अक्सर उसने अपने कमरे की खिड़की से उन्हें देखा है – धागे में बँधे चमकीले लट्टुओं की तरह वे एक लम्बी, टेढ़ी-मेढ़ी कतार में उड़े जाते हैं, पहाड़ों की सुनसान नीरवता से परे, उन विचित्र शहरों की ओर जहाँ शायद वह कभी नहीं जायेगी।

लतिका आर्म चेयर पर ऊँघने लगी। डाक्टर मुकर्जी का सिगार अँधेरे में चुपचाप जल रहा था। डाक्टर को आश्चर्य हुआ कि लतिका न जाने क्या सोच रही है और लतिका सोच रही थी – क्या वह बूढ़ी होती जा रही है ? उसके सामने स्कूल की प्रिंसिपल मिस वुड का चेहरा घूम गया – पोपला मुँह, आँखों के नीचे झूलती हुई मांस की थैलियाँ, ज़रा-ज़रा-सी बात पर चिढ़ जाना, कर्कश आवाज में चीखना – सब उसे 'ओल्डमेड' कहकर पुकारते हैं। कुछ वर्षों बाद वह भी हू-ब-हू वैसी ही बन जायेगी··· लतिका के समूचे शरीर में झुरझुरी-सी दौड़ गयी, मानो अनजाने में उसने किसी गलीज वस्तु को छू लिया हो। उसे याद आया कुछ महीने पहले अचानक उसे ह्यूबर्ट का प्रेमपत्र मिला था – भावुक याचना से भरा हुआ पत्र, जिसमें उसने न

जाने क्या कुछ लिखा था, जो कभी उसकी समझ में नहीं आया। उसे ह्यूबर्ट की इस बचकाना हरकत पर हँसी आयी थी, किन्तु भीतर-ही-भीतर प्रसन्नता भी हुई थी – उसकी उम्र अभी बीती नहीं है, अब भी वह दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। ह्यूबर्ट का पत्र पढ़कर उसे क्रोध नहीं आया, आयी थी केवल ममता। वह चाहती तो उसकी गलतफहमी को दूर करने में देर न लगती, किन्तु कोई शक्ति उसे रोके रहती है, उसके कारण अपने पर विश्वास रहता है, अपने सुख का भ्रम मानो ह्यूबर्ट की गलतफहमी से जुड़ा है...।

ह्यूबर्ट ही क्यों, वह क्या किसी को भी चाह सकेगी, उस अनुभूति के संग, जो अब नहीं रही, जो छाया-सी उस पर मँडराती रहती है, न स्वयं मिटती है, न उसे मुक्ति दे पाती है। उसे लगा, जैसे बादलों का झुरमुट फिर उसके मस्तिष्क पर धीरे-धीरे छाने लगा है, उसकी टाँगें फिर निर्जीव, शिथिल-सी हो गयी है।

वह झटके से उठ खड़ी हुई – "डाक्टर माफ करना, मुझे बहुत थकान-सी लग रही है..." बिना वाक्य पूरा किये ही वह चली गयी।

कुछ देर तक टैरेस पर निस्तब्धता छायी रही। मोमबत्तियाँ बुझने लगी थीं। डाक्टर मुकर्जी ने सिगार का नया कश लिया – "सब लड़कियाँ एक-जैसी होती है – बेवकूफ और सेंटीमेंटल।"

ह्यूबर्ट की उँगलियों का दबाव पियानो पर ढीला पड़ता गया – अन्तिम सुरों की झिझकी-सी गूँज कुछ क्षणों तक हवा में तिरती रही।

"डाक्टर, आपको मालूम है... मिस लतिका का व्यवहार पिछले कुछ अर्से से अजीब-सा लगता है।" ह्यूबर्ट के स्वर में लापरवाही का भाव था। वह नहीं चाहता था कि डाक्टर को लतिका के प्रति उसकी भावनाओं का आभास-मात्र भी मिल सके। जिस कोमल अनुभूति को वह इतने समय से सँजोता आया है, डाक्टर उसे हँसी के एक ही ठहाके में उपहासास्पद बना देगा।

"क्या तुम नियति में विश्वास करते हो, ह्यूबर्ट ?" डाक्टर ने कहा। ह्यूबर्ट दम रोके प्रतीक्षा करता रहा। वह जानता था कि कोई भी बात कहने से पहले डाक्टर को फिलासोफाइज़ करने की आदत थी। डाक्टर टैरेस के जंगले से सटकर खड़ा हो गया। फीकी-सी चाँदनी में चीड़ के पेड़ों की छायाएँ लॉन पर गिर रही थीं। कभी-कभी कोई जुगनू अँधेरे में हरा प्रकाश छिड़कता हवा में गायब हो जाता था।

"मैं कभी-कभी सोचता हूँ, इन्सान जिन्दा किसलिए रहता है – क्या उसे कोई और बेहतर काम करने को नहीं मिला ? हजारों मील अपने मुल्क से दूर मैं यहाँ पड़ा हूँ – यहाँ कौन मुझे जानता है... यहीं शायद मर भी जाऊँगा। ह्यूबर्ट, क्या तुमने कभी महसूस किया है कि एक अजनबी की हैसियत से परायी जमीन पर मर जाना काफी खौफनाक बात है... !"

ह्यूबर्ट विस्मित-सा डाक्टर की ओर देखने लगा। उसने पहली बार डॉक्टर मुकर्जी के इस

पहलू को देखा था। अपने सम्बन्ध में वह अक्सर चुप रहते थे।

"कोई पीछे नहीं है, यह बात मुझमें एक अजीब किस्म की बेफिक्री पैदा कर देती है। लेकिन कुछ लोगों की मौत अन्त तक पहेली बनी रहती है··· शायद वे ज़िन्दगी से बहुत उम्मीद लगाते थे। उसे ट्रैजिक भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आखिरी दम तक उन्हें मरने का एहसास नहीं होता···।"

"डाक्टर, आप किसका जिक्र कर रहे हैं ?"··· ह्यूबर्ट ने परेशान होकर पूछा।

डाक्टर कुछ देर तक चुपचाप सिगार पीता रहा। फिर मुड़कर वह मोमबत्तियों की बुझती हुई लौ को देखने लगा।

"तुम्हें मालूम है, किसी समय लतिका बिला नागा क्लब जाया करती थी। गिरीश नेगी से उसका परिचय वहीं हुआ था। कश्मीर जाने से एक रात पहले उसने मुझे सबकुछ बता दिया था। मैं अब तक लतिका से उस मुलाकात के बारे में कुछ नहीं कह सका हूँ। किन्तु उस रात कौन जानता था कि वह वापिस नहीं लौटेगा। और अब··· अब क्या फर्क पड़ता है। लेट द डेड. डाई···"

डाक्टर की सूखी सर्द हँसी में खोखली-सी शून्यता भरी थी।

"कौन गिरीश नेगी ?"

"कुमाऊँ रेजीमेंट में कैप्टन था।"

"डाक्टर, क्या लतिका···" ह्यूबर्ट से आगे कुछ नहीं कहा गया। उसे याद आया वह पत्र, जो उसने लतिका को भेजा था··· कितना अर्थहीन और उपहासास्पद, जैसे उसका एक-एक शब्द उसके दिल को कचोट रहा हो। उसने धीरे-से पियानो पर सिर टिका लिया। लतिका ने उसे क्यों नहीं बताया, क्या वह इसके योग्य भी नहीं था ?

"लतिका··· वह तो बच्ची है, पागल ! मरनेवाले के संग खुद थोड़े ही मरा जाता है।"

कुछ देर चुप रहकर डाक्टर ने अपने प्रश्न को फिर दुहराया।

"लेकिन ह्यूबर्ट, क्या तुम नियति पर विश्वास करते हो ?"

हवा के हल्के झोंके से मोमबत्तियाँ एक बार प्रज्वलित होकर बुझ गयीं। टैरेस पर ह्यूबर्ट और डाक्टर अँधेरे में एक-दूसरे का चेहरा नहीं देख पा रहे थे, फिर भी वे एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। कान्वेन्ट स्कूल से कुछ दूर मैदानों में बहते पहाड़ी नाले का स्वर आ रहा था। जब बहुत देर बाद कुमाऊँ रेजीमेंट सेण्टर का बिगुल सुनायी दिया, तो ह्यूबर्ट हड़बड़ाकर खड़ा हो गया।

"अच्छा, चलता हूँ, डाक्टर, गुड नाइट।"

"गुड नाइट ह्यूबर्ट··· मुझे माफ करना, मैं सिगार खत्म करके उठूँगा···"

सुबह बदली छायी थी। लतिका के खिडकी खोलते ही धुन्ध का गुब्बारा-सा भीतर घुस आया,

जैसे रात-भर दीवार के सहारे सरदी में ठिठुरता हुआ वह भीतर आने की प्रतीक्षा कर रहा हो। स्कूल से ऊपर चैपल जानेवाली सड़क बादलों में छिप गयी थी; केवल चैपल का 'क्रास' धुन्ध के परदे पर एक-दूसरे को काटती हुई पेंसिल की रेखाओं-सा दिखायी दे जाता था।

लतिका ने खिड़की से आँखें हटायीं, तो देखा कि करीमुद्दीन चाय की ट्रे लिये खड़ा है। करीमुद्दीन मिलिट्री में अर्दली रह चुका था, इसलिए ट्रे मेज पर रखकर 'अटेन्शन' की मुद्रा में खड़ा हो गया।

लतिका झटके से उठ बैठी। सुबह से आलस करके कितनी बार जागकर वह सो चुकी है। अपनी खिसियाहट मिटाने के लिए लतिका ने कहा – "बड़ी सर्दी है आज, बिस्तर छोड़ने को जी नहीं चाहता।"

"अजी मेम साहब, अभी क्या सरदी आयी है – बड़े दिनों में देखना कैसे दाँत कटकटाते हैं"–और करीमुद्दीन अपने हाथों को बगलों में डाले हुए इस तरह सिकुड़ गया जैसे उन दिनों की कल्पना मात्र से उसे जाड़ा लगना शुरू हो गया हो। गंजे सिर पर दोनों तरफ के उसके बाल खिजाब लगाने से कत्थई रंग के भूरे हो गये थे। बात चाहे किसी विषय पर हो रही हो, वह हमेशा खींचतान कर उसे ऐसे क्षेत्र में घसीट लाता था, जहाँ वह बेझिझक अपने विचारों को प्रकट कर सके।

"एक दफा तो यहाँ लगातार इतनी बर्फ गिरी थी कि भुवाली से लेकर डाक बँगले तक सारी सड़कें जाम हो गयीं। इतनी बर्फ थी मेम साहब कि पेड़ों की टहनियाँ तक सिकुड़कर तनों से लिपट गयी थीं – बिलकुल ऐसे," और करीमुद्दीन नीचे झुककर मुर्गा-सा बन गया।

"कब की बात है?" लतिका ने पूछा।

"अब यह तो जोड़-हिसाब करके ही पता चलेगा, मेम साहब... लेकिन इतना याद है कि उस वक्त अंग्रेज बहादुर यहीं थे। कण्टोनमेण्ट की इमारत पर कौमी झण्डा नहीं लगा था। बड़े जबर थे ये अंग्रेज, दो घण्टों में ही सारी सड़कें साफ करवा दीं। उन दिनों एक सीटी बजाते ही पचास घोड़ेवाले जमा हो जाते थे। तो अब सारे शेड खाली पड़े हैं। वे लोग अपनी खिदमत भी करवाना जानते थे, अब तो सब उजाड़ हो गया है" – करीमुद्दीन उदास भाव से बाहर देखने लगा।

आज यह पहली बार नहीं है जब लतिका करीमुद्दीन से उन दिनों की बातें सुन रही है जब अंग्रेज बहादुर ने इस स्थान को स्वर्ग बना रखा था।

"आप छुट्टियों में इस साल भी यहीं रहेंगी मेम साहब?"

"दिखता तो कुछ ऐसा ही है करीमुद्दीन – तुम्हें फिर तंग होना पड़ेगा।"

"क्या कहती हैं मेम साहब! आपके रहने से हमारा भी मन लग जाता है, वरना छुट्टियों में तो यहाँ कुत्ते लोटते हैं।"

"तुम जरा मिस्त्री से कह देना कि इस कमरे की छत की मरम्मत कर जाये। पिछले साल

बर्फ का पानी दरारों से टपकता रहता था।" लतिका को याद आया कि पिछली सर्दियों में जब कभी बर्फ गिरती थी, तो उसे पानी से बचने के लिए रात-भर कमरे के कोने में सिमटकर सोना पड़ता था।

करीमुद्दीन चाय की ट्रे उठाता हुआ बोला – "ह्यूबर्ट साहब तो शायद कल ही चले जायें – कल रात उनकी तबीयत फिर खराब हो गयी। आधी रात के वक्त मुझे जगाने आये थे। कहते थे, छाती में तकलीफ है। उन्हें यह मौसम नहीं रास आता। कह रहे थे, लड़कियों की बस में वह भी कल ही चले जायेंगे।"

करीमुद्दीन दरवाजा बन्द करके चला गया। लतिका की इच्छा हुई कि वह ह्यूबर्ट के कमरे में जाकर उनकी तबीयत की पूछताछ कर आये। किन्तु फिर न जाने क्यों स्लीपर पैरों में टँगे रहे और वह खिड़की के बाहर बादलों को उड़ता हुआ देखती रही। ह्यूबर्ट का चेहरा जब उसे देखकर सहमा-सा दयनीय हो जाता है, तब लगता है कि वह अपनी मूक-निरीह याचना में उसे कोस रहा है – न वह उसकी गलतफहमी को दूर करने का प्रयत्न कर पाती है, न उसे अपनी विवशता की सफाई देने का साहस होता है। उसे लगता है कि इस जाले से बाहर निकलने के लिए वह धागे के जिस सिरे को पकड़ती है वह खुद एक गाँठ बनकर रह जाता है...।

बाहर बूँदाबाँदी होने लगी थी – कमरे की टिन की छत खट-खट बोलने लगी। लतिका पलँग से उठ खड़ी हुई। बिस्तर को तहाकर बिछाया। फिर पैरों में स्लीपरों को घसीटते हुए वह बड़े आईने तक आयी और उसके सामने स्टूल पर बैठकर बालों को खोलने लगी। किन्तु कुछ देर तक कंघी बालों में ही उलझी रही और वह गुमसुम हो शीशे में अपना चेहरा ताकती रही। करीमुद्दीन को यह कहना याद ही नहीं रहा कि धीरे-धीरे आग जलाने की लकड़ियाँ जमा कर ले। इन दिनों सस्ते दामों पर सूखी लकड़ियाँ मिल जाती हैं। पिछले साल तो कमरा धुएँ से भर जाता था जिसके कारण कँपकँपाते जाड़े में भी उसे खिड़की खोलकर ही सोना पड़ता था।

आईने में लतिका ने अपना चेहरा देखा – वह मुस्करा रही थी। पिछले साल अपने कमरे की सीलन और ठण्ड से बचने के लिए कभी-कभी वह मिस वुड के खाली कमरे में चोरी-चुपके सोने चली जाया करती थी। मिस वुड का कमरा बिना आग के भी गर्म रहता था, उनके गदीले सोफे पर लेटते ही आँख लग जाती थी। कमरा छुट्टियों में खाली पड़ा रहता है, किन्तु मिस वुड से इतना नहीं होता कि दो महीनों के लिए उसके हवाले कर जायें। हर साल कमरे में ताला ठोंक जाती हैं। वह तो पिछले साल गुसलखाने में भीतर की साँकल देना भूल गयी थीं, जिसे लतिका चोर दरवाजे के रूप में इस्तेमाल करती रही थी।

पहले साल अकेले में उसे बड़ा डर-सा लगता था। छुट्टियों में सारे स्कूल और होस्टल के कमरे सायँ-सायँ करने लगते हैं। डर के मारे उसे जब कभी नींद नहीं आती थी, तब वह करीमुद्दीन को रात में देर तक बातों में उलझाये रखती। बातों में जब खोयी-सी वह सो जाती, तब करीमुद्दीन चुपचाप लैम्प बुझाकर चला जाता। कभी-कभी बीमारी का बहाना करके वह

डाक्टर को बुलवा भेजती थी और बाद में बहुत जिद करके दूसरे कमरे में उनका बिस्तर लगवा देती।

लतिका ने कंघे से बालों का गुच्छा निकाला और उसे बाहर फेंकने के लिए वह खिड़की के पास आ खड़ी हुई। बाहर छत की ढलान से बारिश के जल की मोटी-सी धार बराबर लॉन पर गिर रही थी। मेघाच्छन्न आकाश में सरकते हुए बादलों के पीछे पहाड़ियों के झुण्ड कभी उभर आते थे, कभी छिप जाते थे, मानो चलती हुई ट्रेन से कोई उन्हें देख रहा हो। लतिका ने खिड़की से सिर बाहर निकाल लिया – हवा के झोंके से उसकी आँखें झिप गयीं। उसे जितने काम याद आते हैं, उतना ही आलस घना होता जाता है। बस की सीटें रिजर्व करवाने के लिए चपरासी को रुपये देने हैं। जो सामान होस्टल की लड़कियाँ पीछे छोड़े जा रही हैं, उन्हें गोदाम में रखवाना होगा। कभी-कभी तो छोटी क्लास की लड़कियों के साथ पैकिंग करवाने के काम में भी उसे हाथ बटाना पड़ता था।

वह इन कामों से ऊबती नहीं। धीरे-धीरे सब निपटते जाते हैं, कोई गलती इधर-उधर रह जाती है, सो बाद में सुधर जाती है – हर काम में किचकिच रहती है, परेशानी और दिक्कत होती है – किन्तु देर-सवेर इससे छुटकारा मिल ही जाता है। किन्तु जब लड़कियों की आखिरी बस चली जाती है, तब मन उचाट-सा हो जाता है – खाली कॉरीडोर में घूमती हुई वह कभी इस कमरे में जाती है और कभी उसमें। वह नहीं जान पाती कि अपने से क्या करे – दिल कहीं भी नहीं टिक पाता, हमेशा भटका-भटका-सा रहता है।

इस सबके बावजूद जब कोई सहज भाव से पूछ बैठता है, "मिस लतिका, छुट्टियों में आप घर नहीं जा रहीं?" तब... वह क्या कहे?

डिंग-डांग-डिंग... स्पेशल सर्विस के लिए स्कूल चैपल के घण्टे बजने लगे थे। लतिका ने अपना सिर खिड़की के भीतर कर लिया। उसने झटपट साड़ी उतारी और पेटीकोट में ही कन्धे पर तौलिया डाले गुसलखाने में घुस गयी।

लेफ्ट-राइट-लेफ्ट... लेफ्ट...

कण्टोनमेण्ट जानेवाली पक्की सड़क पर चार-चार की पंक्ति में कुमाऊँ रेजीमेण्ट के सिपाहियों की एक टुकड़ी मार्च कर रही थी। फौजी बूटों की भारी खुरदरी आवाजें स्कूल चैपल की दीवारों से टकराकर भीतर 'प्रेयर हाल' में गूँज रही थीं।

"ब्लेसेड आर द मीक..." फादर एल्मण्ड एक-एक शब्द चबाते हुए खँखारते स्वर में 'सर्मन आफ द माउण्ट' पढ़ रहे थे। ईसा मसीह की मूर्ति के नीचे 'कैण्डलब्रियम' के दोनों ओर मोमबत्तियाँ जल रही थीं, जिनका प्रकाश आगे बैंचों पर बैठी हुई लड़कियों पर पड़ रहा था। पिछली लाइनों की बैंचें अँधेरे में डूबी हुई थीं, जहाँ लड़कियाँ प्रार्थना की मुद्रा में बैठी हुई सिर झुकाये एक-दूसरे से घुसर-पुसर कर रही थीं। मिस वुड स्कूल सीजन के सफलतापूर्वक समाप्त

हो जाने पर विद्यार्थियों और स्टाफ सदस्यों को बधाई का भाषण दे चुकी थीं – और अब फादर के पीछे बैठी हुई अपने में ही कुछ बुड़बुड़ा रही थीं मानो धीरे-धीरे फादर को 'प्रौम्ट' कर रही हों।

'आमीन···' फादर एल्मण्ड ने बाइबल मेज पर रख दी और 'प्रेयर बुक' उठा ली। हॉल की खामोशी क्षण-भर के लिए टूट गयी। लड़कियों ने खड़े होते हुए जान-बूझकर बैंचों को पीछे धकेला – बैंचें फर्श पर रगड़ खाकर सीटी बजाती हुई पीछे खिसक गयीं – हॉल के कोने से हँसी फूट पड़ी। मिस वुड का चेहरा तन गया, माथे पर भृकुटियाँ चढ़ गयीं। फिर अचानक निस्तब्धता छा गयी – हॉल के उस घुटे हुए धुँधलके में फादर का तीखा फटा हुआ स्वर सुनायी देने लगा – "जीसस सेड, आई एम द लाइट ऑफ द वर्ल्ड – ही दैट फालोएथ मी शैल नॉट वाक इन डार्कनेस, बट शैल हैव द लाइट ऑफ लाइफ···।"

डाक्टर मुकर्जी ने ऊब और उकताहट से भरी जमुहाई ली, "कब यह किस्सा खत्म होगा ?" उसने इतने ऊँचे स्वर में लतिका से पूछा कि वह सकुचाकर दूसरी ओर देखने लगी। स्पेशल सर्विस के समय डाक्टर मुकर्जी के होंठों पर व्यंग्यात्मक मुस्कान खेलती रहती और वह धीरे-धीरे अपनी मूँछों को खींचता रहता।

फादर एल्मण्ड की वेश-भूषा देखकर लतिका के दिल में गुदगुदी-सी दौड़ गयी। जब वह छोटी थी, तो अक्सर यह बात सोचकर विस्मित हुआ करती थी कि क्या पादरी लोग सफेद चोगे के नीचे कुछ नहीं पहनते, अगर धोखे से वह ऊपर उठ जाये तो ?

लेफ्ट··· लेफ्ट··· लेफ्ट··· मार्च करते हुए फौजी बूट चैपल से दूर होते जा रहे थे – केवल उनकी गूँज हवा में शेष रह गयी थी।

'हिम नम्बर 117–' फादर ने प्रार्थना-पुस्तक खोलते हुए कहा। हॉल में प्रत्येक लड़की ने डेस्क पर रखी हुई हिम-बुक खोल ली। पन्नों के उलटने की खड़खड़ाहट फिसलती हुई एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गयी।

आगे की बैंच से उठकर ह्यूबर्ट पियानो के सामने स्टूल पर बैठ गया। संगीत शिक्षक होने के कारण हर साल स्पेशल सर्विस के अवसर पर उसे 'कॉयर' के संग पियानो बजाना पड़ता था। ह्यूबर्ट ने अपने रूमाल से नाक साफ की। अपनी घबराहट छिपाने के लिए ह्यूबर्ट हमेशा ऐसा ही किया करता था। कनखियों से हॉल की ओर देखते हुए उसने काँपते हाथों से हिम-बुक खोली।

लीड काइण्डली लाइट···

पियानो के सुर दबे, झिझकते से मिलने लगे। घने बालों से ढँकी ह्यूबर्ट की लम्बी, पीली अँगुलियाँ खुलने-सिमटने लगीं। 'कॉयर' में गानेवाली लड़कियों के स्वर एक-दूसरे से गुँथकर कोमल, स्निग्ध लहरों में बिंध गये।

लतिका को लगा, उसका जूड़ा ढीला पड़ गया है, मानो गरदन के नीचे झूल रहा है। मिस

वुड़ की आँख बचा लतिका ने चुपचाप बालों में लगे क्लिपों को कसकर खींच दिया।

"बड़ा झक्की आदमी है... सुबह मैंने ह्यूबर्ट को यहाँ आने से मना किया था, फिर भी चला आया" – डाक्टर ने कहा।

लतिका को करीमुद्दीन की बात याद हो गयी। रात-भर ह्यूबर्ट को खाँसी का दौरा पड़ा था... कल जाने के लिए कह रहे थे...

लतिका ने सिर टेढ़ा करके ह्यूबर्ट के चेहरे की एक झलक पाने की विफल चेष्टा की। इतने पीछे से कुछ भी देख पाना असम्भव था ; पियानो पर झुका हुआ केवल ह्यूबर्ट का सिर दिखायी देता था।

लीड काइण्डली लाइट... संगीत के सुर मानो एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़कर हाँफती हुई साँसों को आकाश की अबाध शून्यता में बिखेरते हुए नीचे उतर रहे हैं। बारिश की मुलायम धूप चैपल के लम्बे-चौकोर शीशों पर झलमला रही है, जिसकी एक महीन चमकीली रेखा ईसा मसीह की प्रतिमा पर तिरछी होकर गिर रही है। मोमबत्तियों का धुआँ धूप में नीली-सी लकीर खींचता हुआ हवा में तिरने लगा है। पियानो के क्षणिक 'पोज' में लतिका को पत्तों का परिचित मर्मर कहीं दूर अनजानी दिशा से आता हुआ सुनायी दे जाता है। एक क्षण के लिए उसे भ्रम हुआ कि चैपल का फीका-सा अँधेरा उस छोटे-से 'प्रेयर-हॉल' के चारों कोनों से सिमटता हुआ उसके आस-पास घिर आया है – मानो कोई उसकी आँखों पर पट्टी बाँधकर उसे यहाँ तक ले आया हो और अचानक उसकी आँखें खोल दी हों। उसे लगा कि जैसे मोमबत्तियों के धूमिल आलोक में कुछ भी ठोस, वास्तविक न रहा हो – चैपल की छत, दीवारें, डेस्क पर रखा हुआ डाक्टर का सुघड़-सुडौल हाथ – और पियानो के सुर अतीत की धुन्ध को भेदते हुए स्वयं उस धुन्ध का भाग बनते जा रहे हों...

एक पगली-सी स्मृति, एक उद्भ्रान्त भावना – चैपल के शीशों के परे पहाड़ी सूखी हवा, हवा में झुकी हुई वीपिंग विलोज की काँपती टहनियाँ, पैरों तले चीड़ के पत्तों की धीमी-सी चिर-परिचित खड़... खड़...। वहीं पर गिरीश एक हाथ में मिलिटरी का खाकी हैट लिये खड़ा है - चौड़े, उठे हुए, सबल कन्धे, अपना सिर वहाँ टिका दो, तो जैसे सिमटकर खो जायेगा... चार्ल्स बोयर, यह नाम उसने रखा था, वह झेंपकर हँसने लगता।

"तुम्हें आर्मी में किसने चुन लिया, मेजर बन गये हो, लेकिन लड़कियों से भी गये बीते हो... ज़रा-ज़रा-सी बात पर चेहरा लाल हो जाता है।" यह सब वह कहती नहीं, सिर्फ सोचती भर थी – सोचा था कभी कहूँगी, वह 'कभी' कभी नहीं आया...

बुरुंस का लाल फूल
लाये हो
न
झूठे

खाकी कमीज के जिस जेब पर बैज चिपके थे, उसमें से मुसा हुआ बुरुस का फूल निकल आया।

छिः सारा मुरझा गया

अभी खिला कहाँ है?

(हाउ क्लम्जी)

उसके बालों में गिरीश का हाथ उलझ रहा है – फूल कहीं टिक नहीं पाता, फिर उसे क्लिप के नीचे फँसाकर उसने कहा –

देखो

वह मुड़ी और इससे पहले कि वह कुछ कह पाती, गिरीश ने अपना मिलिटरी का हैट धप से उसके सिर पर रख दिया। वह मन्त्रमुग्ध-सी वैसी ही खड़ी रही। उसके सिर पर गिरीश का हैट है – माथे पर छोटी-सी बिन्दी है। बिन्दी पर उड़ते हुए बाल हैं। गिरीश ने उस बिन्दी को अपने होंठों से छुआ है, उसने उसके नंगे सिर को अपने दोनों हाथों में समेट लिया है –

लतिका

गिरीश ने चिढ़ाते हुए कहा – मन ईटर आफ कुमाऊँ – (उसका यह नाम गिरीश ने उसे चिढ़ाने के लिए रखा था)··· वह हँसने लगी।

"लतिका··· सुनो···" गिरीश का स्वर कैसा हो गया था !

"ना, मैं कुछ भी नहीं सुन रही।"

"लतिका··· मैं कुछ महीनों में वापिस लौट आऊँगा···"

"ना··· मैं कुछ भी नहीं सुन रही···" किन्तु वह सुन रही है – वह नहीं जो गिरीश कह रहा है, किन्तु वह जो नहीं कहा जा रहा है, जो उसके बाद कभी नहीं कहा गया···

लीड काइण्डली लाइट···

लड़कियों का स्वर पियानो के सुरों में डूबा हुआ गिर रहा है, उठ रहा है··· ह्यूबर्ट ने सिर मोड़कर लतिका को निमिष भर देखा – आँखें मूँदे ध्यानमग्ना प्रस्तर मूर्ति-सी वह स्थिर-निश्चल खड़ी थी। क्या यह भाव उसके लिए है? क्या लतिका ने ऐसे क्षणों में उसे अपना साथी बनाया है? ह्यूबर्ट ने एक गहरी साँस ली और उस साँस में ढेर-सी थकान उमड़ आयी।

"देखो··· मिस वुड कुर्सी पर बैठे-बैठे सो रही हैं" – डाक्टर होंठों में ही फुसफुसाया। यह डाक्टर का पुराना मजाक था कि मिस वुड प्रार्थना करने के बहाने आँखें मूँदे हुए नींद की झपकियाँ लेती हैं।

फादर एल्मण्ड ने कुर्सी पर फैले अपने गाउन को समेट लिया और प्रेयर बुक बन्द करके मिस वुड के कानों में कुछ कहा। पियानो का स्वर क्रमशः मन्द पड़ने लगा, ह्यूबर्ट की अँगुलियाँ ढीली पड़ने लगीं। सर्विस के समाप्त होने से पूर्व मिस वुड ने आर्डर पढ़कर सुनाया। बारिश होने की आशंका से आज के कार्यक्रम में कुछ आवश्यक परिवर्तन करने पड़े थे। पिकनिक के लिए झूला देवी के मन्दिर जाना सम्भव नहीं हो सकेगा, इसलिए स्कूल से कुछ दूर 'मीडोज' में ही सब

लड़कियाँ नाश्ते के बाद जमा होंगी। सब लड़कियों को दोपहर का 'लंच' होस्टल किचन से ही ले जाना होगा, केवल शाम की चाय 'मीडोज' में बनेगी।

पहाड़ों की बारिश का क्या भरोसा ? कुछ देर पहले धुआँधार बादल गरज रहे थे, सारा शहर पानी में भीगा ठिठुर रहा था – अब धूप में नहाता नीला आकाश धुन्ध की ओट से बाहर निकलता हुआ फैल रहा था। लतिका ने चैपल से बाहर आते हुए देखा – वीपिंग बिलोज की भीगी शाखाओं से धूप में चमकती हुई बारिश की बूँदें टपक रही थीं··· लड़कियाँ चैपल से बाहर निकलकर छोटे-छोटे गुच्छे बनाकर कॉरीडोर में जमा हो गयी हैं। नाश्ते के लिए अभी पौन घण्टा पड़ा था और उनमें से अभी कोई भी लड़की होस्टल जाने के लिए इच्छुक नहीं थी। छुट्टियाँ अभी शुरू नहीं हुई थीं, किन्तु शायद इसीलिए वे इन चन्द बचे-खुचे क्षणों में अनुशासन के घेरे के भीतर भी मुक्त होने का भरपूर आनन्द उठा लेना चाहती थीं।

मिस वुड को लड़कियों का यह गुल-गपाड़ा अखरा, किन्तु फादर एल्मण्ड के सामने वह उन्हें डाँट-फटकार नहीं सकी। अपनी झुँझलाहट दबाकर वह मुस्कराते हुए बोलीं – "कल सब चली जायेंगी, सारा स्कूल वीरान हो जायेगा।"

फादर एल्मण्ड का लम्बा ओजपूर्ण चेहरा चैपल की घुटी हुई गरमाई से लाल हो उठा था। कॉरीडोर के जंगले पर अपनी छड़ी लटकाकर वह बोले – "छुट्टियों में पीछे होस्टल में कौन रहेगा ?"

"पिछले दो-तीन सालों से मिस लतिका ही रह रही हैं··· "

"और डाक्टर मुकर्जी ?" – फादर का ऊपरी होंठ तनिक खिंच आया।

"डाक्टर तो सर्दी-गर्मी यहीं रहते हैं" – मिस वुड ने विस्मय से फादर की ओर देखा। वह समझ नहीं सकीं कि फादर ने डाक्टर का प्रसंग क्यों छेड़ दिया है !

"डाक्टर मुकर्जी छुट्टियों में कहीं नहीं जाते ?"

"दो महीने की छुट्टियों में बर्मा जाना काफी कठिन है, फादर !" –मिस वुड हँसने लगीं।

"मिस वुड, पता नहीं आप क्या सोचती हैं। मुझे तो मिस लतिका का होस्टल में अकेले रहना कुछ समझ में नहीं आता।"

"लेकिन फादर," मिस वुड ने कहा, "यह तो कान्वेन्ट स्कूल का नियम है कि कोई भी टीचर छुट्टियों में अपने खर्चे पर होस्टल में रह सकती है।"

"मैं फिलहाल स्कूल के नियमों की बात नहीं कर रहा। मिस लतिका डाक्टर के संग यहाँ अकेली ही रह जायेंगी और सच पूछिए मिस वुड, डाक्टर के बारे में मेरी राय कुछ बहुत अच्छी नहीं है··· "

"फादर, आप कैसी बात कर रहे हैं··· मिस लतिका बच्चा थोड़े ही हैं··· " मिस वुड को ऐसी आशा नहीं थी कि फादर एल्मण्ड अपने दिल में ऐसी दकियानूसी भावना को स्थान देंगे।

फादर एल्मण्ड कुछ हतप्रभ-से हो गये, बात पलटते हुए बोले – "मिस वुड, मेरा मतलब

यह नहीं था। आप तो जानती हैं, मिस लतिका और उस मिलिटरी अफसर को लेकर एक अच्छा-खासा स्कैण्डल बन गया था, स्कूल की बदनामी होने में क्या देर लगती है।"

"वह बेचारा तो अब नहीं रहा। मैं उसे जानती थी फादर ! ईश्वर उसकी आत्मा को शान्ति दे।"

मिस वुड ने धीरे-से अपनी दोनों बाँहों से क्रास किया।

फादर एल्मण्ड को मिस वुड की मूर्खता पर इतना अधिक क्षोभ हुआ कि उनसे आगे और कुछ नहीं बोला गया। डाक्टर मुकर्जी से उनकी कभी नहीं पटती थी, इसलिए मिस वुड की आँखों में वह डाक्टर को नीचा दिखाना चाहते थे। किन्तु मिस वुड लतिका का रोना ले बैठीं। आगे बात बढ़ाना व्यर्थ था। उन्होंने छड़ी को जंगले से उठाया और ऊपर साफ खुले आकाश को देखते हुए बोले – "प्रोग्राम आपने यूँ ही बदला, मिस वुड, अब क्या बारिश होगी।"

ह्यूबर्ट जब चैपल से बाहर निकला तो उसकी आँखें चकाचौंध-सी हो गयीं। उसे लगा जैसे किसी ने अचानक ढेर-सी चमकीली उबलती हुई रोशनी मुट्ठी में भरकर उसकी आँखों में झोंक दी हो। पियानो के संगीत के सुर रुई के छुई-मुई रेशों की भाँति अब तक उसके मस्तिष्क की थकी-माँदी नसों पर फड़फड़ा रहे थे। वह काफी थक गया था। पियानो बजाने से उसके फेफड़ों पर हमेशा भारी दबाव पड़ता, दिल की धड़कन तेज हो जाती थी। उसे लगता था कि संगीत के एक नोट को दूसरे नोट में उतारने के प्रयत्न में वह एक अँधेरी खाई पार कर रहा है।

आज चैपल में मैंने जो महसूस किया, वह कितना रहस्यमय, कितना विचित्र था, ह्यूबर्ट ने सोचा। मुझे लगा, पियानो का हर नोट चिरन्तन खामोशी की अँधेरी खोह से निकलकर बाहर फैली नीली धुन्ध को काटता, तराशता हुआ एक भूला-सा अर्थ खींच लाता है। गिरता हुआ हर 'पोज' एक छोटी-सी मौत है, मानो घने छायादार वृक्षों की काँपती छायाओं में कोई पगडण्डी गुम हो गयी हो, एक छोटी-सी मौत जो आनेवाले सुरों को अपनी बची-खुची गूँजों की ... में समर्पित कर जाती है... जो मर जाती है, किन्तु मिट नहीं पाती, मिटती नहीं इसलिए मरकर भी जीवित है, दूसरे सुरों में लय हो जाती है...

"डाक्टर, क्या मृत्यु ऐसे ही आती है ?" अगर मैं डाक्टर से पूछूँ तो वह हँसकर टाल देगा। मुझे लगता है, वह पिछले कुछ दिनों से कोई बात छिपा रहा है – उसकी हँसी में जो सहानुभूति का भाव होता है, वह मुझे अच्छा नहीं लगता। आज उसने मुझे स्पेशल सर्विस में आने से रोका था – कारण पूछने पर वह चुप रहा था। कौन-सी ऐसी बात है, जिसे मुझसे कहने में डाक्टर कतराता है। शायद मैं शक्की मिजाज होता जा रहा हूँ, और बात कुछ भी नहीं है।

ह्यूबर्ट ने देखा, लड़कियों की कतार स्कूल से होस्टल जानेवाली सड़क पर नीचे उतरती जा रही है। उजली धूप में उनके रंग-बिरंगे रिबन, हल्की आसमानी रंग की फ्रॉकें और सफेद पेटियाँ चमक रही हैं। सीनियर कैम्ब्रिज की कुछ लड़कियों ने चैपल की वाटिका के गुलाब के फूलों को तोड़कर अपने बालों में लगा लिया है। कण्टोनमेण्ट के तीन-चार सिपाही लड़कियों को

देखते हुए अश्लील मजाक करते हुए हँस रहे हैं और कभी-कभी किसी लड़की की ओर जरा झुककर सीटी बजाने लगते हैं।

"हलो मि. ह्यूबर्ट," ह्यूबर्ट ने चौंककर पीछे देखा। लतिका एक मोटा-सा रजिस्टर बगल में दबाये खड़ी थी।

"आप अभी यहीं हैं ?" ह्यूबर्ट की दृष्टि लतिका पर टिकी रही। वह क्रीम रंग की पूरी बाँहों की ऊनी जैकट पहने हुई थी। कुमाऊँनी लड़कियों की तरह लतिका का चेहरा गोल था, धूप की तपन से पका गेहुँआ रंग कहीं-कहीं हल्का-सा गुलाबी हो आया था, मानो बहुत धोने पर भी गुलाल के कुछ धब्बे इधर-उधर बिखरे रह गये हों।

"उन लड़कियों के नाम नोट करने थे, जो कल जा रही हैं ... सो पीछे रुकना पड़ा। आप भी तो कल जा रहे हैं मि. ह्यूबर्ट ?"

"अभी तक तो यही इरादा है। यहाँ रुककर भी क्या करूँगा। आप स्कूल की ओर जा रही हैं ?"

"चलिए ... "

पक्की सड़क पर लड़कियों की भीड़ जमा थी, इसलिए वे दोनों पोलो ग्राउण्ड का चक्कर काटती हुई पगडण्डी से नीचे उतरने लगे।

हवा तेज हो चली। चीड़ के पत्ते हर झोंके के संग टूट-टूटकर पगडण्डी पर ढेर लगाते जाते थे। ह्यूबर्ट रास्ता बनाने के लिए अपनी छड़ी से उन्हें बुहारकर दोनों ओर बिखेर देता था। लतिका पीछे खड़ी हुई देखती रहती थी। अल्मोड़ा की ओर से आते हुए छोटे-छोटे बादल रेशमी रूमालों से उड़ते हुए सूरज के मुँह पर लिपटे से जाते थे, फिर हवा में बह निकलते थे। इस खेल में धूप कभी मन्द, फीकी-सी पड़ जाती थी, कभी अपना उजला आँचल खोलकर समूचे शहर को अपने में समेट लेती थी।

लतिका तनिक आगे निकल गयी। ह्यूबर्ट की साँस चढ़ गयी थी और वह धीरे-धीरे हाँफता हुआ पीछे से आ रहा था। जब वे पोलोग्राउण्ड के पवेलियन को छोड़कर सिमिट्री के दायीं ओर मुड़े, तो लतिका ह्यूबर्ट की प्रतीक्षा करने के लिए खड़ी हो गयी। उसे याद आया, छुट्टियों के दिनों में जब कभी कमरे में अकेले बैठे-बैठे उसका मन ऊब जाता था, तो वह अक्सर टहलते हुए सिमिट्री तक चली जाती थी। उससे सटी पहाड़ी पर चढ़कर वह बर्फ में ढँके देवदार वृक्षों को देखा करती थी, जिनकी झुकी हुई शाखों से रुई के गालों-सी बर्फ नीचे गिरा करती थी। नीचे बाजार जानेवाली सड़क पर बच्चे स्लेज पर फिसला करते थे। वह खड़ी-खड़ी बर्फ में छिपी हुई उस सड़क का अनुमान लगाया करती थी जो फादर एल्मण्ड के घर से गुजरती हुई मिलिटरी अस्पताल और डाकघर से होकर चर्च की सीढ़ियों तक जाकर गुम हो जाती थी। जो मनोरंजन एक दुर्गम पहेली को सुलझाने में होता है, वही लतिका को बर्फ में खोये रास्तों को खोज निकालने में होता था।

"आप बहुत तेज चलती हैं, मिस लतिका" – थकान से ह्यूबर्ट का चेहरा कुम्हला गया था। माथे पर पसीने की बूँदें छलक आयी थीं।

"कल रात आपकी तबियत क्या कुछ खराब हो गयी थी ?"

"आपने कैसे जाना ? क्या मैं अस्वस्थ दीख रहा हूँ ?" ह्यूबर्ट के स्वर में हलकी-सी खीज का आभास था। सब लोग मेरी सेहत को लेकर क्यों बात शुरू करते हैं, उसने सोचा।

"नहीं, मुझे तो पता भी नहीं चलता, वह तो सुबह करीमुद्दीन ने बातों-ही-बातों में जिक्र छेड़ दिया था।" लतिका कुछ अप्रतिभ-सी हो आयी।

"कोई खास बात नहीं, वही पुराना दर्द शुरू हो गया था – अब बिल्कुल ठीक है।" अपने कथन की पुष्टि के लिए ह्यूबर्ट छाती सीधी करके तेज कदम बढ़ाने लगा।

"डाक्टर मुकर्जी को दिखलाया था ?"

"वह सुबह आये थे। उनकी बात कुछ समझ में नहीं आती। हमेशा दो बातें एक-दूसरे से उल्टी कहते हैं। कहते थे कि इस बार मुझे छह-सात महीने की छुट्टी लेकर आराम करना चाहिए, लेकिन अगर मैं ठीक हूँ, तो भला इसकी क्या जरूरत है ?"

ह्यूबर्ट के स्वर में व्यथा की छाया लतिका से छिपी न रह सकी। बात को टालते हुए उसने कहा – "आप तो नाहक चिन्ता करते हैं, मि. ह्यूबर्ट ! आजकल मौसम बदल रहा है, अच्छे भले आदमी तक बीमार हो जाते हैं।"

ह्यूबर्ट का चेहरा प्रसन्नता से दमकने लगा। उसने लतिका को ध्यान से देखा। वह अपने दिल का संशय मिटाने के लिए निश्चिन्त हो जाना चाहता था कि कहीं लतिका उसे केवल दिलासा देने के लिए ही तो झूठ नहीं बोल रही।

"यही तो मैं सोच रहा था, मिस लतिका ! डाक्टर की सलाह सुनकर तो मैं डर ही गया। भला छह महीने की छुट्टी लेकर मैं अकेला क्या करूँगा। स्कूल में तो बच्चों के संग मन ल ा रहता है। सच पूछो तो दिल्ली में ये दो महीनों की छुट्टियाँ काटना भी दूभर हो जाता है...।"

"मि. ह्यूबर्ट... कल आप दिल्ली जा रहे हैं... ?"

लतिका चलते-चलते हठात् ठिठक गयी। सामने पोलो-ग्राउण्ड फैला था, जिसके दूसरी ओर मिलिटरी की ट्रकें कण्टोनमेण्ट की ओर जा रही थीं। ह्यूबर्ट को लगा, जैसे लतिका की आँखें अधमुँदी-सी खुली रह गयी हैं, मानो पलकों पर एक पुराना भूला-सा सपना सरक आया है।

"मि. ह्यूबर्ट... आप दिल्ली जा रहे हैं" – इस बार लतिका ने प्रश्न नहीं दुहराया उसके स्वर में केवल एक असीम दूरी का भाव घिर आया।

"बहुत अर्सा पहले मैं भी दिल्ली गयी थी, मि ह्यूबर्ट ! तब मैं बहुत छोटी थी – न जाने कितने बरस बीत गये। हमारी मौसी का ब्याह वहीं हुआ था। बहुत-सी चीजें देखी थीं, लेकिन

अब तो सबकुछ धुँधला-सा पड़ गया है। इतना याद है कि हम कुतुब पर चढ़े थे। सबसे ऊँची मंजिल से हमने नीचे झाँका था – न जाने कैसा लगा था। नीचे चलते हुए आदमी चाभी भरे हुए खिलौनों-से लगते थे। हमने ऊपर से उन पर मूँगफलियाँ फेंकी थीं, लेकिन हम बहुत निराश हुए थे क्योंकि उनमें से किसी ने हमारी तरफ नहीं देखा। शायद माँ ने मुझे डाँटा था, और मैं सिर्फ नीचे झाँकते हुए डर गयी थी। सुना है, अब तो दिल्ली इतना बदल गया है कि पहचाना नहीं जाता… "

वे दोनों फिर चलने लगे। हवा का वेग ढीला पड़ने लगा। उड़ते हुए बादल अब सुस्ताने-से लगे थे, उनकी छायाएँ नन्दा देवी और पंचचूली की पहाड़ियों पर गिर रही थीं। स्कूल के पास पहुँचते-पहुँचते चीड़ के पेड़ पीछे छूट गये, कहीं-कहीं खुबानी के पेड़ों के आस-पास बुरुस के लाल फूल धूप में चमक जाते थे। स्कूल तक आने में उन्होंने पोलोग्राउण्ड का लम्बा चक्कर लगा लिया था।

"मिस लतिका, आप कहीं छुट्टियों में जाती क्यों नहीं – सरदियों में तो यहाँ सबकुछ वीरान हो जाता होगा ?"

"अब मुझे यहाँ अच्छा लगता है," लतिका ने कहा, "पहले साल अकेलापन कुछ अखरा था – अब आदी हो गयी हूँ। क्रिसमस से एक रात पहले क्लब में डान्स होता है, लाटरी डाली जाती है और रात को देर तक नाच-गाना होता रहता है। नये साल के दिन कुमाऊँ रेजीमेण्ट की ओर से परेड-ग्राउण्ड में कार्नीवाल किया जाता है, बर्फ पर स्केटिंग होती है, रंग-बिरंगे गुब्बारों के नीचे फौजी बैण्ड बजता है, फौजी अफसर फैन्सी ड्रेस में भाग लेते हैं – हर साल ऐसा ही होता है, मि. ह्यूबर्ट। फिर कुछ दिनों बाद विण्टर स्पोर्ट्स के लिए अंग्रेज टूरिस्ट आते हैं। हर साल मैं उनसे परिचित होती हूँ, वापिस लौटते हुए वे हमेशा वादा करते हैं कि अगले साल भी आयेंगे, पर मैं जानती हूँ कि वे नहीं आयेंगे, वे भी जानते हैं कि वे नहीं आयेंगे, फिर भी हमारी दोस्ती में कोई अन्तर नहीं पड़ता। फिर… फिर कुछ दिनों बाद पहाड़ों पर बर्फ पिघलने लगती है, छुट्टियाँ खत्म होने लगती हैं, आप सब लोग अपने-अपने घरों से वापिस लौट आते हैं – और मि. ह्यूबर्ट पता भी नहीं चलता कि छुट्टियाँ कब शुरू हुई थीं, कब खत्म हो गयीं… "

लतिका ने देखा कि ह्यूबर्ट उसकी ओर आतंकित भयाकुल दृष्टि से देख रहा है। वह सिटपिटाकर चुप हो गयी। उसे लगा, मानो वह इतनी देर से पागल-सी अनर्गल प्रलाप कर रही हो।

"मुझे माफ करना मि. ह्यूबर्ट, कभी-कभी मैं बच्चों की तरह बातों में बहक जाती हूँ।"

"मिस लतिका… " ह्यूबर्ट ने धीरे-से कहा। वह चलते-चलते रुक गया था। लतिका ह्यूबर्ट के भारी स्वर से चौंक-सी गयी।

"क्या बात है मि. ह्यूबर्ट ?"

"वह पत्र… उसके लिए मैं लज्जित हूँ। उसे आप वापिस लौटा दें, समझ लें कि मैंने उसे

कभी नहीं लिखा था।"

लतिका कुछ समझ न सकी, दिग्भ्रान्त-सी खड़ी हुई ह्यूबर्ट के पीले उद्विग्न चेहरे को देखती रही।

ह्यूबर्ट ने धीरे-से लतिका के कन्धे पर हाथ रख दिया।

"कल डाक्टर ने मुझे सबकुछ बता दिया। अगर मुझे पहले से मालूम होता तो··· तो" ह्यूबर्ट हकलाने लगा।

"मि. ह्यूबर्ट···" किन्तु लतिका से आगे कुछ भी नहीं कहा गया। उसका चेहरा सफेद हो गया था।

दोनों चुपचाप कुछ देर तक स्कूल के गेट के बाहर खड़े रहे।

मीडोज··· पगडण्डियों, पत्तों, छायाओं से घिरा छोटा-सा द्वीप, मानो कोई घोंसला दो हरी घाटियों के बीच आ दबा हो। भीतर घुसते ही पिकनिक के काले आग से झुलसे हुए पत्थर, अधजली टहनियाँ, बैठने के लिए बिछाये गये पुराने अखबारों के टुकड़े इधर-उधर बिखरे हुए दिखायी दे जाते हैं। अक्सर टूरिस्ट पिकनिक के लिए यहाँ आते हैं। मीडोज को बीच में काटता हुआ टेढ़ा-मेढा बरसाती नाला बहता है, जो दूर से धूप में चमकता हुआ सफेद रिबन-सा दिखायी देता है।

यहीं पर काठ के तख्तों का बना हुआ टूटा-सा पुल है, जिस पर लड़कियाँ हिचकोले खाते हुई चल रही हैं।

"डाक्टर मुकर्जी, आप तो सारा जंगल जला देंगे" – मिस वुड ने अपनी ऊँची एड़ी के सैण्डल से जलती हुई दियासलाई को दबा डाला, जो डाक्टर ने सिगार सुलगाकर चीड़ के पत्तों के ढेर पर फेंक दी थी। वे नाले से कुछ दूर हटकर चीड़ के दो पेड़ों से गुँथी हुई छाया के नीचे बैठे थे। उनके सामने एक छोटा-सा रास्ता नीचे पहाड़ी गाँव की ओर जाता था, जहाँ पहाड़ की गोद में शकरपारों के खेत एक-दूसरे के नीचे बिछे हुए थे। दोपहर के सन्नाटे में भेड़-बकरियों के गलों में बँधी हुई घण्टियों का स्वर हवा में बहता हुआ सुनायी दे जाता था।

घास पर लेटे-लेटे डाक्टर सिगार पीते रहे।

"जंगल की आग कभी देखी है, मिस वुड··· एक अलमस्त नशे की तरह धीरे-धीरे फैलती जाती है।"

"आपने कभी देखो है डाक्टर?" मिस वुड ने पूछा, "मुझे तो बड़ा डर लगता है।"

"बहुत साल पहले शहरों को जलते हुए देखा था।" डाक्टर लेटे हुए आकाश की ओर ताक रहे थे। "एक-एक मकान ताश के पत्तों की तरह गिरता जाता है। दुर्भाग्यवश ऐसे अवसर देखने में बहुत कम आते हैं।"

"आपने कहाँ देखा, डाक्टर?"

"लड़ाई के दिनों में अपने शहर रंगून को जलते हुए देखा था।"

मिस वुड की आत्मा को ठेस लगी, किन्तु फिर भी उनकी उत्सुकता शान्त नहीं हुई। "आपका घर – क्या वह भी जल गया था ?"

डाक्टर कुछ देर तक चुपचाप लेटा रहा।

"हम उसे खाली छोड़कर चले आये थे – मालूम नहीं बाद में क्या हुआ।" अपने व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी कहने में डाक्टर को कठिनाई महसूस होती है।

"डाक्टर, क्या आप कभी वापिस बर्मा जाने की बात नहीं सोचते ?" डाक्टर ने अँगड़ाई ली और करवट बदलकर औंधे मुँह लेट गये। उनकी आँखें मुँद गयीं और माथे पर बालों की लटें झूल आयीं।

"सोचने से क्या होता है मिस वुड... जब बर्मा में था, तब क्या कभी सोचा था कि यहाँ आकर उम्र काटनी होगी ?"

"लेकिन डाक्टर, कुछ भी कह लो, अपने देश का सुख कहीं और नहीं मिलता। यहाँ तुम चाहे कितने वर्ष रह लो, अपने को हमेशा अजनबी ही पाओगे।"

डाक्टर ने सिगार के धुएँ को धीरे-धीरे हवा में छोड़ दिया – "दरअसल अजनबी तो मैं वहाँ भी समझा जाऊँगा, मिस वुड। इतने वर्षों बाद मुझे कौन पहचानेगा ! इस उम्र में नये सिरे से रिश्ते जोड़ना काफी सिरदर्द का काम है... कम-से-कम मेरे बस की बात नहीं है।"

"लेकिन डाक्टर, आप कब तक इस पहाड़ी कस्बे में पड़े रहेंगे – इसी देश में रहना है तो किसी बड़े शहर में प्रैक्टिस शुरू कीजिए।"

"प्रैक्टिस बढ़ाने के लिए कहाँ-कहाँ भटकता फिरूँगा, मिस वुड। जहाँ रहो, वहीं मरीज मिल जाते हैं। यहाँ आया था कुछ दिनों के लिए – फिर मुद्दत हो गयी और टिका रहा। जब कभी जी ऊबेगा, कहीं चला जाऊँगा। जड़ें कहीं नहीं जमतीं, तो पीछे भी कुछ नहीं छूट जाता। मुझे अपने बारे में कोई गलतफहमी नहीं है मिस वुड, मैं सुखी हूँ।"

मिस वुड ने डाक्टर की बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। दिल में वह हमेशा डाक्टर को उच्छृंखल, लापरवाह और सनकी समझती रही हैं, किन्तु डाक्टर के चरित्र में उनका विश्वास है – न जाने क्यों, क्योंकि डाक्टर ने जाने-अनजाने में उसका कोई प्रमाण दिया हो, यह उन्हें याद नहीं पड़ता।

मिस वुड ने एक ठण्डी साँस भरी। वह हमेशा यह सोचती थीं कि यदि डाक्टर इतना आलसी और लापरवाह न होता, तो अपनी योग्यता के बल पर काफी चमक सकता था। इसलिए उन्हें डाक्टर पर क्रोध भी आता था और दुख भी होता था।

मिस वुड ने अपने बैग से ऊन का गोला और सलाइयाँ निकालीं, फिर उसके नीचे से अखबार में लिपटा हुआ चौड़ा कॉफी का डिब्बा उठाया, जिसमें अण्डों की सैण्डविचें और हैम्बर्गर दबे हुए थे। थर्मस से प्यालों में कॉफी उँडेलते हुए मिस वुड ने कहा – "डाक्टर, कॉफी ठण्डी हो रही है..."

डाक्टर लेटे-लेटे बुड़बुड़ाया। मिस वुड ने नीचे झुककर देखा, वह कोहनी पर सिर टिकाये सो रहा था। ऊपर का होंठ ज़रा-सा फैलकर मुड़ गया था, मानो किसी से मजाक करने से पहले मुस्करा रहा हो।

उसकी अँगुलियों में दबा हुआ सिगार नीचे झुका हुआ लटक रहा था।

"मेरी, मेरी, वाट डू यू वाण्ट, वाट डू यू वाण्ट..." दूसरे स्टैण्डर्ड में पढ़नेवाली मेरी ने अपनी चंचल, चपल आँखें ऊपर उठायीं – लड़कियों का दायरा उसे घेरे हुए कभी पास आता था, कभी दूर खिंचता चला जाता था।

"आई वाण्ट... आई वाण्ट ब्लू..." दोनों हाथों को हवा में घुमाते हुए मेरी चिल्लायी। दायरा पानी की तरह टूट गया। सब लड़कियाँ एक-दूसरे पर गिरती-पड़ती किसी नीली वस्तु को छूने के लिए भाग-दौड़ करने लगीं।

लंच समाप्त हो चुका था। लड़कियों के छोटे-छोटे दल मीडोज में बिखर गये थे। ऊँची क्लास की कुछ लड़कियाँ चाय का पानी गर्म करने के लिए पेड़ों पर चढ़कर सूखी टहनियाँ तोड़ रही थीं।

दोपहर की उस घड़ी में मीडोज अलसाया-ऊँघता-सा जान पड़ता था। हवा का कोई भूला-भटका झोंका... चीड़ के पत्ते खड़खड़ा उठते थे। कभी कोई पक्षी अपनी सुस्ती मिटाने झाड़ियों से उड़कर नाले के किनारे बैठ जाता था, पानी में सिर डुबोता था, फिर ऊबकर हवा में दो-चार निरुद्देश्य चक्कर काटकर दुबारा झाड़ियों में दुबक जाता था।

किन्तु जंगल की खामोशी शायद कभी चुप नहीं रहती। गहरी नींद में डूबी सपनों-सी कुछ आवाजें नीरवता के हल्के झीने परदे पर सलवटें बिछा जाती हैं... मूक लहरों-सी हवा में तिरती हैं... मानो कोई दबे पाँव झाँककर अदृश्य संकेत कर जाता है – "देखो मैं यहाँ हूँ..."

लतिका ने जूली के 'बाब हेयर' को सहलाते हुए कहा, "तुम्हें कल रात बुलाया था।"

"मैडम, मैं गयी थी – आप अपने कमरे में नहीं थीं।" लतिका को याद आया कि रात वह डाक्टर के कमरे के टैरेस पर देर तक बैठी रही थी – और भीतर ह्यूबर्ट पियानो पर शोपां का नौक्टर्न बजा रहा था।

"जूली, तुमसे कुछ पूछना था।" उसे लगा, वह जूली की आँखों से अपने को बचा रही है।

जूली ने अपना चेहरा ऊपर उठाया। उसकी भूरी आँखों से कौतूहल झाँक रहा था।

"तुम आफिसर्स मेस में किसी को जानती हो?"

जूली ने अनिश्चित भाव से सिर हिलाया। लतिका कुछ देर तक जूली को अपलक घूरती रही।

"जूली, मुझे विश्वास है, तुम झूठ नहीं बोलोगी।" कुछ क्षण पहले जूली की आँखों में जो कौतूहल था, वह भय में परिणत होने लगा।

लतिका ने अपनी जैकेट की जेब से एक नीला लिफाफा निकालकर जूली की गोद में फेंक दिया।

"यह किसकी चिट्ठी है ?"

जूली ने लिफाफा उठाने के लिए हाथ बढ़ाया, किन्तु फिर एक क्षण के लिए उसका हाथ काँपकर ठिठक गया – लिफाफे पर उसका नाम और होस्टल का पता लिखा हुआ था।

"थैंक यू मैडम, मेरे भाई का पत्र है, वह झाँसी में रहते हैं।" जूली ने घबराहट में लिफाफे को अपने स्कर्ट की तहों में छिपा लिया।

"जूली, ज़रा मुझे लिफाफा दिखलाओ।" लतिका का स्वर तीखा, कर्कश-सा हो आया।

जूली ने अनमने भाव से लतिका को पत्र दे दिया।

"तुम्हारे भाई झाँसी में रहते हैं?"

जूली इस बार कुछ नहीं बोली। उसकी उद्‌भ्रान्त उखड़ी-सी आँखें लतिका को देखती रहीं।

"यह क्या है ?"

जूली का चेहरा सफेद, फक पड़ गया। लिफाफे पर कुमाऊँ रेजीमेण्टल सेण्टर की मुहर उसकी ओर घूर रही थी।

"कौन है यह ..." लतिका ने पूछा। उसने पहले भी होस्टल में उड़ती हुई अफवाह सुनी थी कि जूली को क्लब में किसी मिलिटरी अफसर के संग देखा गया था, किन्तु ऐसी अफवाहें अक्सर उड़ती रहती थीं, और उसने उस पर विश्वास नहीं किया था।

"जूली, तुम अभी बहुत छोटी हो ..." जूली के होंठ काँपे – उसकी आँखों में निरीह याचना का भाव घिर आया।

"अच्छा अभी जाओ ... तुमसे छुट्टियों के बाद बातें करूँगी।"

जूली ने ललचाई दृष्टि से लिफाफे की ओर देखा, कुछ बोलने को उद्यत हुई, फिर बिना कुछ कहे चुपचाप वापिस लौट गयी।

लतिका देर तक जूली को देखती रही, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गयी। क्या मैं किसी खूँसट बुढ़िया से कम हूँ? अपने अभाव का बदला क्या मैं दूसरों से ले रही हूँ?

शायद ... कौन जाने ... शायद जूली का यह प्रथम परिचय हो, उस अनुभूति से, जिसे कोई भी लड़की बड़े चाव से सँजोकर, सँभालकर अपने में छिपाये रहती है, एक अनिर्वचनीय सुख, जो पीड़ा लिये है, पीड़ा और सुख को डुबोती हुई उमड़ते ज्वर की खुमारी ... जो दोनों को अपने में समो लेती है ... एक दर्द, जो आनन्द से उपजा है और पीड़ा देता है ...

यहीं इसी देवदार के नीचे उसे भी यही लगा था, जब गिरीश ने पूछा था – "तुम चुप क्यों हो ?" वह आँखें मूँदे सोच रही थी – सोच कहाँ रही थी, जी रही थी, उस क्षण को जो भय और विस्मय के बीच भिंचा था – बहका-सा पागल क्षण। वह अभी पीछे मुड़ेगी तो गिरीश की

'नर्वस' मुस्कराहट दिखायी दे जायेगी, उस दिन से आज दोपहर तक का अतीत एक दुःस्वप्न की मानिन्द टूट जायेगा। वही देवदार है, जिस पर उसने अपने बालों के क्लिप से गिरीश का नाम लिखा था। पेड़ की छाल उतरती नहीं थी, क्लिप टूट-टूट जाता था, तब गिरीश ने अपने नाम के नीचे उसका नाम लिखा था। जब कभी कोई अक्षर बिगड़कर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता था तब वह हँसती थी, और गिरीश का काँपता हाथ और भी काँप जाता था...

लतिका को लगा कि जो वह याद करती है, वही भूलना भी चाहती है, लेकिन जब सचमुच भूलने लगती है, तब उसे भय लगता है कि जैसे कोई उसकी किसी चीज को उसके हाथों से छीने लिये जा रहा है, ऐसा कुछ जो सदा के लिए खो जायेगा। बचपन में जब कभी वह अपने किसी खिलौने को खो देती थी, तो वह गुमसुम-सी होकर सोचा करती थी, कहाँ रख दिया मैंने। जब बहुत दौड़-धूप करने पर खिलौना मिल जाता, तो वह बहाना करती कि अभी उसे खोज ही रही है, कि वह अभी मिला नहीं है। जिस स्थान पर खिलौना रखा होता, जान-बूझकर उसे छोड़कर घर के दूसरे कोने में उसे खोजने का उपक्रम करती। तब खोई हुई चीज याद रहती, इसलिए भूलने का भय नहीं रहता था...

आज वह उस बचपन के खेल का बहाना क्यों नहीं कर पाती? 'बहाना'... शायद करती है, उसे याद करने का बहाना, जो भूलता जा रहा है... दिन, महीने बीत जाते हैं, और वह उलझी रहती है, अनजाने में गिरीश का चेहरा धुँधला पड़ता जाता है, याद वह करती है, किन्तु जैसे किसी पुरानी तसवीर के धूल भरे शीशे को साफ कर रही हो। अब वैसा दर्द नहीं होता, सिर्फ उसको याद करती है, जो पहले कभी होता था – तब उसे अपने पर ग्लानि होती है। वह फिर जान-बूझकर उस घाव को कुरेदती है, जो भरता जा रहा है, खुद-ब-खुद उसकी कोशिशों के बावजूद भरता जा रहा है...

देवदार पर खुदे हुए अधमिटे नाम लतिका की ओर निस्तब्ध निरीह भाव से निहार रहे थे। मीडोज के घने सन्नाटे में नाले पार से खेलती हुई लड़कियों की आवाजें गूँज जाती थीं...

वाट डू यू वाण्ट? वाट डू यू वाण्ट?

तितलियाँ, झींगुर, जुगनू... मीडोज पर उतरती हुई साँझ की छायाओं में पता नहीं चलता, कौन आवाज किसकी है? दोपहर के समय जिन आवाजों को अलग-अलग करके पहचाना जा सकता था, अब वे एकस्वरता की अविरल धारा में घुल गयी थीं। घास से अपने पैरों को पोंछता हुआ कोई रेंग रहा है। झाड़ियों के झुरमुट से परों को फड़फड़ाता हुआ झपटकर कोई ऊपर से उड़ जाता है... किन्तु ऊपर देखो तो कहीं कुछ भी नहीं है। मीडोज के झरने का गड़गड़ाता स्वर... जैसे अँधेरी सुरंग में झपाटे से ट्रेन गुजर गयी हो, और देर तक उसमें सीटियों और पहियों की चीत्कार गूँजती रही हो...

पिकनिक कुछ देर तक और चलती, किन्तु बादलों की तहें एक-दूसरे पर चढ़ती जा रही थीं। पिकनिक का सामान बटोरा जाने लगा। मीडोज के चारों ओर बिखरी हुई लड़कियाँ मिस

वुड के इर्द-गिर्द जमा होने लगीं। अपने संग वे अजीबोगरीब चीजें बटोर लायी थीं। कोई किसी पक्षी के टूटे पंख को बालों में लगाये हुए थी, किसी ने पेड़ की टहनी को चाकू से छीलकर छोटी-सी बेंत बना ली थी। ऊँची क्लास की कुछ लड़कियों ने अपने-अपने रूमालों में नाले से पकड़ी हुई छोटी-छोटी बालिश्त भर की मछलियों को दबा रखा था जिन्हें मिस वुड से छिपकर वे एक-दूसरे को दिखा रही थीं।

मिस वुड लड़कियों की टोली के संग आगे निकल गयीं। मीडोज से पक्की सड़क तक तीन-चार फर्लांग की चढ़ाई थी। लतिका हाँफने लगी। डाक्टर मुकर्जी सबसे पीछे आ रहे थे। लतिका के पास पहुँचकर वह ठिठक गये। डाक्टर ने दोनों घुटनों को जमीन पर टेकते हुए सिर झुकाकर एलिजाबेथयुगीन अंग्रेजी में कहा – "मैडम, आप इतनी परेशान क्यों नजर आ रही हैं···"

और डाक्टर की नाटकीय मुद्रा को देखकर लतिका के होंठों पर एक थकी-सी ढीली-ढीली मुस्कराहट बिखर गयी।

"प्यास के मारे गला सूख रहा है··· और यह चढ़ाई है कि खत्म होने में नहीं आती।"

डाक्टर ने अपने कन्धे पर लटकते हुए थर्मस को उतारकर लतिका के हाथों में देते हुए कहा – "थोड़ी-सी कॉफी बची है, शायद कुछ मदद कर सके।"

"पिकनिक में तुम कहाँ रह गये डाक्टर, कहीं दिखायी नहीं दिये ?"

"दोपहर भर सोता रहा – मिस वुड के संग। मेरा मतलब है, मिस वुड पास बैठी थीं।

"मुझे लगता है, मिस वुड मुझसे मुहब्बत करती हैं।" कोई भी मजाक करते समय डाक्टर अपनी मूँछों के कोनों को चबाने लगता है।

"क्या कहती थीं ?" लतिका ने थर्मस से कॉफी को मुँह में उँडेल लिया।

"शायद कुछ कहतीं, लेकिन बदकिस्मती से बीच में ही मुझे नींद आ गयी। मेरी जिन्दगी के कुछ खूबसूरत प्रेम-प्रसंग कम्बख्त इस नींद के कारण अधूरे रह गये हैं।"

और इस दौरान में जब दोनों बातें कर रहे थे, उनके पीछे मीडोज और मोटर रोड के संग चढ़ती हुई चीड़ और बाँज के वृक्षों की कतारें साँझ के घिरते अँधेरे में डूबने लगीं, मानो प्रार्थना करते हुए उन्होंने चुपचाप अपने सिर नीचे झुका लिये हों। इन्हीं पेड़ों के ऊपर बादलों में गिरजे का क्रास कहीं उलझा पड़ा था। उसके नीचे पहाड़ों की ढलान पर बिछे हुए खेत भागती हुई गिलहरियों से लग रहे थे, जो मानो किसी की टोह में स्तब्ध ठिठक गयी हों।

"डाक्टर, मि. ह्यूबर्ट पिकनिक पर नहीं आये ?"

डाक्टर मुकर्जी टार्च जलाकर लतिका के आगे-आगे चल रहे थे।

"मैंने उन्हें मना कर दिया था।"

"किसलिए ?"

अँधेरे में पैरों के नीचे दबे हुए पत्तों की चरमराहट के अतिरिक्त कुछ सुनायी नहीं देता

था। डॉक्टर मुकर्जी ने धीरे-से खाँसा।

"पिछले कुछ दिनों से मुझे सन्देह होता जा रहा है कि ह्यूबर्ट की छाती का दर्द शायद मामूली दर्द नहीं है।" डाक्टर थोड़ा-सा हँसा, जैसे उसे अपनी यह गम्भीरता अरुचिकर लग रही हो।

डाक्टर ने प्रतीक्षा की, शायद लतिका कुछ कहेगी। किन्तु लतिका चुपचाप उसके पीछे चल रही थी।

"यह मेरा महज शक है, शायद मैं बिल्कुल गलत होऊँ, किन्तु यह बेहतर होगा कि वह अपने एक फेफड़े का एक्सरे करा लें – इससे कम-से-कम कोई भ्रम तो नहीं रहेगा।"

"आपने मि. ह्यूबर्ट से इसके बारे में कुछ कहा है?"

"अभी तक कुछ नहीं कहा। ह्यूबर्ट ज़रा-सी बात पर चिन्तित हो उठता है, इसलिए कभी साहस नहीं हो पाता..."

डॉक्टर को लगा, उसके पीछे आते हुए लतिका के पैरों का स्वर सहसा बन्द हो गया है। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा, लतिका बीच सड़क पर अँधेरे में छाया-सी चुपचाप निश्चल खड़ी है।

"डाक्टर..." लतिका का स्वर भर्राया हुआ था।

"क्या बात है मिस लतिका... आप रुक क्यों गयीं?"

"डाक्टर – क्या मि. ह्यूबर्ट..."

डाक्टर ने अपनी टार्च की मद्धिम रोशनी लतिका पर उठा दी... उसने देखा लतिका का चेहरा एकदम पीला पड़ गया है और वह रह-रहकर पत्ते-सी काँप जाती है।

"मिस लतिका, क्या बात है, आप तो बहुत डरी-सी जान पड़ती हैं?"

"कुछ नहीं डाक्टर... मुझे... मुझे... कुछ याद आ गया था..."

वे दोनों फिर चलने लगे। कुछ दूर जाने पर उनकी आँखें ऊपर उठ गयीं। पक्षियों का एक बेड़ा धूमिल आकाश में त्रिकोण बनाता हुआ पहाड़ों के पीछे से उनकी ओर आ रहा था। लतिका और डाक्टर सिर उठाकर इन पक्षियों को देखते रहे। लतिका को याद आया, हर साल सर्दी की छुट्टियों से पहले ये परिन्दे मैदानों की ओर उड़ते हैं, कुछ दिनों के लिए बीच के इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा करते हैं, प्रतीक्षा करते हैं बर्फ के दिनों की, जब वे नीचे अजनबी, अनजाने देशों में उड़ जायेंगे...

क्या वे सब भी प्रतीक्षा कर रहे हैं? वह, डाक्टर मुकर्जी, मि. ह्यूबर्ट – लेकिन कहाँ के लिए, हम कहाँ जायेंगे।

किन्तु उसका कोई उत्तर नहीं मिला – उस अँधेरे में मीडोज के झरने के भुतैले स्वर और चीड़ के पत्तों की सरसराहट के अतिरिक्त कुछ सुनायी नहीं देता था।

लतिका हड़बड़ाकर चौंक गयी। अपनी छड़ी पर झुका हुआ डाक्टर धीरे-धीरे सीटी बजा रहा था।

"मिस लतिका, जल्दी कीजिए, बारिश शुरू होनेवाली है।"

होस्टल पहुँचते-पहुँचते बिजली चमकने लगी थी। किन्तु उस रात बारिश देर तक नहीं हुई। बादल बरसने भी नहीं पाते थे कि हवा के थपेड़ों से धकेल दिये जाते थे। दूसरे दिन तड़के ही बस पकड़नी थी, इसलिए डिनर के बाद लड़कियाँ सोने के लिए अपने-अपने कमरों में चली गयी थीं।

जब लतिका अपने कमरे में गयी, तो उस समय कुमाऊँ रेजीमेण्ट सेण्टर का बिगुल बज रहा था। उसके कमरे में करीमुद्दीन कोई पहाड़ी धुन गुनगुनाता हुआ लैम्प में गैस पम्प कर रहा था। लतिका उन्हीं कपड़ों में, तकिये को दुहरा करके लेट गयी। करीमुद्दीन ने उड़ती हुई निगाह से लतिका को देखा, फिर अपने काम में जुट गया।

"पिकनिक कैसी रही मेम साहब ?"

"तुम क्यों नहीं आये, सब लड़कियाँ तुम्हें पूछ रही थीं ?" लतिका को लगा, दिन-भर की थकान धीरे-धीरे उसके शरीर की पसलियों पर चिपटती जा रही है। अनायास उसकी आँखें नींद के बोझ से झपकने लगीं।

"मैं चला आता तो ह्यूबर्ट साहब की तीमारदारी कौन करता। दिन-भर उनके बिस्तर से सटा हुआ बैठा रहा... और अब वह गायब हो गये हैं।"

करीमुद्दीन ने कन्धे पर लटकते हुए मैले-कुचैले तौलिये को उतारा और लैम्प के शीशों की गर्द पोंछने लगा।

लतिका की अधमुँदी आँखें खुल गयीं। "क्या ह्यूबर्ट साहब अपने कमरे में नहीं हैं ?"

"खुदा जाने, इस हालत में कहाँ भटक रहे हैं। पानी गर्म करने कुछ देर के लिए बाहर गया था, वापिस आने पर देखता हूँ कि कमरा खाली पड़ा है।"

करीमुद्दीन बड़बड़ाता हुआ बाहर चला गया। लतिका ने लेटे-लेटे पलँग के नीचे चप्पलों को पैरों से उतार दिया।

ह्यूबर्ट इतनी रात कहाँ गये ? किन्तु लतिका की आँखें फिर झपक गयीं। दिन-भर की थकान ने सब परेशानियों, प्रश्नों पर कुंजी लगा दी थी; मानो दिन-भर आँखमिचौनी खेलते हुए उसने अपने कमरे में 'दय्या' को छू लिया था। अब वह सुरक्षित थी, कमरे की चहारदीवारी के भीतर उसे कोई नहीं पकड़ सकता। दिन के उजाले में वह गवाह थी, मुजरिम थी, हर चीज का उससे तकाजा था, अब इस अकेलेपन में कोई गिला नहीं, उलाहना नहीं, सब खींचातानी ख़त्म हो गयी है, जो अपना है, वह बिल्कुल अपना-सा हो गया है, जो अपना नहीं है, उसका दुख नहीं, अपनाने की फ़ुरसत नहीं...

लतिका ने दीवार की ओर मुँह घुमा लिया। लैम्प के फीके आलोक में हवा में काँपते परदों की छायाएँ हिल रही थीं। बिजली कड़कने से खिड़कियों के शीशे चमक-चमक जाते थे, दरवाजे चटखने लगते थे, जैसे कोई बाहर से धीमे-धीमे खटखटा रहा हो। कॉरीडोर से अपने-अपने

कमरों में जाती हुई लड़कियों की हँसी, बातों के कुछ शब्द – फिर सबकुछ शान्त हो गया, किन्तु फिर भी देर तक कच्ची नींद में वह लैम्प का धीमा-सा 'सी-सी' स्वर सुनती रही। कब वह स्वर भी मौन का भाग बनकर मूक हो गया, उसे पता न चला।

कुछ देर बाद उसको लगा, सीढ़ियों से कुछ दबी आवाजें ऊपर आ रही हैं, बीच- बीच में कोई चिल्ला उठता है, और फिर सहसा आवाजें धीमी पड़ जाती हैं।

"मिस लतिका, ज़रा अपना लैम्प ले आइये" – कॉरीडोर के ज़ीने से डाक्टर मुकर्जी की आवाज आयी थी।

कॉरीडोर में अँधेरा था। वह तीन-चार सीढ़ियाँ नीचे उतरी, लैम्प नीचे किया। सीढ़ियों से सटे जंगले पर ह्यूबर्ट ने अपना सिर रख दिया था, उसकी एक बाँह जंगले के नीचे लटक रही थी और दूसरी डाक्टर के कन्धे पर झूल रही थी, जिसे डाक्टर ने अपने हाथों में जकड़ रखा था।

"मिस लतिका, लैम्प ज़रा और नीचे झुका दीजिए... ह्यूबर्ट... ह्यूबर्ट..." डाक्टर ने ह्यूबर्ट को सहारा देकर ऊपर खींचा। ह्यूबर्ट ने अपना चेहरा ऊपर किया। व्हिस्की की तेज बू का झोंका लतिका के सारे शरीर को झिंझोड़ गया। ह्यूबर्ट की आँखों में सुर्ख डोरे खिंच आये थे, कमीज का कालर उलटा हो गया था और टाई की गाँठ ढीली होकर नीचे खिसक आयी थी। लतिका ने काँपते हाथों से लैम्प सीढ़ियों पर रख दिया और आप दीवार के सहारे खड़ी हो गयी। उसका सिर चकराने लगा था।

"इन ए बैक लेन ऑफ द सिटी देयर इज ए गर्ल हू लव्ज मी..." ह्यूबर्ट हिचकियों के बीच गुनगुना उठता था।

"ह्यूबर्ट प्लीज... प्लीज," डाक्टर ने ह्यूबर्ट के लड़खड़ाते शरीर को अपनी मजबूत गिरफ्त में ले लिया।

"मिस लतिका, आप लैम्प लेकर आगे चलिए..." लतिका ने लैम्प उठायाँ। दीवार पर उन तीनों की छायाएँ डगमगाने लगीं।

"इन ए बैक लेन ऑफ द सिटी, देयर इज ए गर्ल हू लव्ज मी..." ह्यूबर्ट डाक्टर मुकर्जी के कन्धे पर सिर टिकाये अँधेरी सीढियों पर उल्टे-सीधे पैर रखता चढ़ रहा था।

"डाक्टर, हम कहाँ हैं ?" ह्यूबर्ट सहसा इतनी जोर से चिल्लाया कि उसकी लड़खड़ाती आवाज सुनसान अँधेरे में कॉरीडोर की छत से टकराकर देर तक हवा में गूँजती रही।

"ह्यूबर्ट..." डाक्टर को एकदम ह्यूबर्ट पर गुस्सा आ गया, फिर अपने गुस्से पर ही उसे खीझ-सी हो आयी और वह ह्यूबर्ट की पीठ थपथपाने लगा।

"कुछ बात नहीं है ह्यूबर्ट डियर, तुम सिर्फ थक गये हो।" ह्यूबर्ट ने अपनी आँखें डाक्टर पर गड़ा दीं, उनमें एक भयभीत बच्चे की-सी कातरता झलक रही थी, मानो डाक्टर के चेहरे से वह किसी प्रश्न का उत्तर पा लेना चाहता हो।

ह्यूबर्ट के कमरे में पहुँचकर डाक्टर ने उसे बिस्तरे पर लिटा दिया। ह्यूबर्ट ने बिना किसी

विरोध के चुपचाप जूते-मोज़े उतरवा दिये। जब डाक्टर ह्यूबर्ट की टाई उतारने लगा, तो ह्यूबर्ट अपनी कुहनी के सहारे उठा, कुछ देर तक डाक्टर को आँखें फाड़ते हुए घूरता रहा, फिर धीरे-से उसका हाथ पकड़ लिया।

"डाक्टर, क्या मैं मर जाऊँगा?"

"कैसी बात करते हो ह्यूबर्ट!" डाक्टर ने हाथ छुड़ाकर धीरे-से ह्यूबर्ट का सिर तकिये पर टिका दिया।

"गुड नाइट ह्यूबर्ट..."

"गुड नाइट डाक्टर," ह्यूबर्ट ने करवट बदल ली।

"गुड नाइट मि. ह्यूबर्ट..." लतिका का स्वर सिहर गया।

किन्तु ह्यूबर्ट ने कोई उत्तर नहीं दिया। करवट बदलते ही उसे नींद आ गयी थी।

कॉरीडोर में वापिस आकर डाक्टर मुकर्जी रेलिंग के सामने खड़े हो गये। हवा के तेज झोंकों से आकाश में फैले बादलों की परतें जब कभी इकहरी हो जातीं, तब उनके पीछे से चाँदनी बुझती हुई आग के धुएँ-सी आस-पास की पहाड़ियों पर फैल जाती थी।

"आपको मि. ह्यूबर्ट कहाँ मिले?" लतिका कॉरीडोर के दूसरे कोने में रेलिंग पर झुकी हुई थी।

"क्लब की बार में उन्हें देखा था, मैं न पहुँचता तो न जाने कब तक बैठे रहते। डॉक्टर मुकर्जी ने सिगरेट जलायी। उन्हें अभी एक-दो मरीजों के घर जाना था। कुछ देर तक उन्हें टाल देने के इरादे से वह कॉरीडोर में खड़े रहे।

नीचे अपने क्वार्टर में बैठा हुआ करीमुद्दीन माउथ आर्गन पर कोई पुरानी फिल्मी धुन बजा रहा था।

"आज दिन भर बादल छाये रहे, लेकिन खुलकर बारिश नहीं हुई..."

"क्रिसमस तक शायद मौसम ऐसा ही रहेगा।" कुछ देर तक दोनों चुपचाप खड़े रहे। कॉन्वेन्ट स्कूल के बाहर फैले लॉन से झींगुरों का अनवरत स्वर चारों ओर फैली निस्तब्धता को और भी अधिक घना बना रहा था। कभी-कभी ऊपर मोटर रोड पर किसी कुत्ते की रिरियाहट सुनायी पड़ जाती थी।

"डाक्टर... कल रात आपने मि. ह्यूबर्ट से कुछ कहा था — मेरे बारे में?"

"वही जो सब लोग जानते हैं और... ह्यूबर्ट, जिसे जानना चाहिए था, नहीं जानता था..."

डाक्टर ने लतिका की ओर देखा, वह जड़वत अविचलित रेलिंग पर झुकी हुई थी।

"वैसे हम सबकी अपनी-अपनी जिद होती है, कोई छोड़ देता है, कोई आखिर तक उससे चिपका रहता है।" डाक्टर मुकर्जी अँधेरे में मुस्कराये। उनकी मुस्कराहट में सूखा-सा विरक्ति का भाव भरा था।

"कभी-कभी मैं सोचता हूँ मिस लतिका, किसी चीज को न जानना यदि गलत है, तो जान-बूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह उससे चिपटे रहना – यह भी गलत है। बर्मा से आते हुए मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी, मुझे अपनी जिन्दगी बेकार-सी लगी थी। आज इस बात को अर्सा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जी रहा हूँ, उम्मीद है कि काफी अर्सा और जीऊँगा। जिन्दगी काफी दिलचस्प लगती है, और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी न हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था – आज भी करता हूँ..."

"लेकिन डाक्टर..." लतिका का गला रुँध आया था।

"क्या मिस लतिका..."

"डाक्टर – सबकुछ होने के बावजूद वह क्या चीज है जो हमें चलाये चलती है, हम रुकते हैं तो भी अपने रेले में वह हमें घसीट ले जाती है।" लतिका को लगा कि वह जो कहना चाह रही है, कह नहीं पा रही, जैसे अँधेरे में कुछ खो गया है, जो मिल नहीं पा रहा, शायद कभी नहीं मिल पायेगा।

"यह तो आपको फादर एल्मण्ड ही बता सकेंगे मिस लतिका," डाक्टर की खोखली हँसी में उनका पुराना सनकीपन उभर आया था।

"अच्छा चलता हूँ, मिस लतिका, मुझे काफी देर हो गयी है," डाक्टर ने दियासलाई जलाकर घड़ी को देखा।

"गुड नाइट, मिस लतिका।"

"गुड नाइट, डाक्टर...।"

डाक्टर के जाने पर लतिका कुछ देर तक अँधेरे में रेलिंग से सटी खड़ी रही। हवा चलने से कॉरीडोर में जमा हुआ कुहरा सिहर उठता था। शाम को सामान बाँधते हुए लड़कियों ने अपने-अपने कमरे के सामने जो पुरानी कापियों, अखबारों और रद्दी के ढेर लगा दिये थे, वे सब अब अँधेरे कॉरीडोर में हवा के झोंकों से इधर-उधर बिखरने लगे थे।

लतिका ने लैम्प उठाया और अपने कमरे की ओर जाने लगी। कॉरीडोर में चलते हुए उसने देखा, जूली के कमरे में प्रकाश की एक पतली रेखा दरवाजे के बाहर खिंच आयी है। लतिका को कुछ याद आया। वह कुछ क्षणों तक साँस रोके जूली के कमरे के बाहर खड़ी रही। कुछ देर बाद उसने दरवाजा खटखटाया। भीतर से कोई आवाज नहीं आयी। लतिका ने दबे हाथों से हलका-सा धक्का दिया, दरवाजा खुल गया। जूली लैम्प बुझाना भूल गयी थी। लतिका धीरे-धीरे दबे पाँव जूली के पलँग के पास चली आयी। जूली का सोता हुआ चेहरा लैम्प के फीके आलोक में पीला-सा दीख रहा था। लतिका ने अपनी जेब से वही नीला लिफाफा निकाला और उसे धीरे-से जूली के तकिये के नीचे दबाकर रख दिया।

अँधेरे में

बीच की तीन पगडण्डियों को पार करके बानो आती थी। आते ही पूछती थी, "कुछ पता चला?" मेरा मन झूठ बोलने के लिए मचल उठता। सोचता, कह दूँ–"हाँ, पता चल गया˙˙˙ हम दिल्ली जा रहे हैं।" लेकिन बानो झूठ ताड़ जायेगी, इसलिए आँखें मूँदे रहता।

बानो मेरे माथे पर हाथ रखती। जब उसका हाथ ठण्डा लगता, मैं जान जाता कि अभी बुखार है, जब गरम लगता तो मन उल्लसित हो उठता। आँखें खोलकर पूछता–"कैसा लगता है बानो?" और बानो निराशा-भरे स्वर में कहती, "अभी तो कम है, लेकिन शाम तक जरूर चढ़ जायेगा।" बानो समझती थी कि जब तक बुखार रहेगा, हम उसके संग शिमले में ही रहेंगे–बुखार उतरने लगता, तो उसे निराशा होती। जब कभी बानो की आहट मिल जाती, मैं जान-बूझकर पास रखे ठण्डे पानी से अपना माथा रगड़ लेता। जब वह आती तो उसका हाथ अपने माथे पर रखकर पूछता, "देख तो बानो, कितना ठण्डा है।" बानो गुमसुम-सी खिड़की के बाहर देखती रहती।

खिड़की के बाहर नीले जंगल हैं, ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ हैं, पेड़ों के घने झुरमुट हैं। जब हवा का झोंका परदे को डुलाता हुआ भीतर आता है, दूर-दिगन्त की एक स्वप्निल-सी खुशबू कमरे में बिखर जाती है।

"इन पहाड़ों के पीछे दिल्ली है, है न बानो?" मैं पूछता।

बानो ने चुपचाप सिर हिला दिया–उसे दिल्ली की बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। कभी-कभी मुझे उस पर काफी तरस आता–उस बेचारी ने अब तक दिल्ली नहीं देखी थी। उसके अब्बा का दफ्तर बारहों महीने शिमले रहता था।

"मैं आज गयी थी–अपने घर," बानो ने कहा। जिस 'अपने घर' का नाम सुनकर मैं सबकुछ भूल जाता था, आज उसके प्रति मेरे मन में कोई उत्सुकता नहीं जगी।

"मेरे अलूचे तुम ले लेना˙˙˙ बानो," मैं आँखें मूँदे लेटा रहा।

"तुम्हारे गले-सड़े अलूचे कौन खायेगा, जब दिल्ली जाओगे, अपनी पोटली में बाँधकर ले जाना।" बानो खीजकर बाहर बरामदे में भाग गयी।

मुझे गुस्सा लगा। लेकिन बीमारी में गुस्सा भी टूटा-टूटा आता है, कोई भी भाव अन्त

तक नहीं पहुँच पाता, बीच रास्ते में ही सूख जाता है। जब रोने को जी करता है, तो रोना नहीं आता, आँखें ही बिफरी-सी रह जाती हैं। जब खुशी होती है, तो दिल तेजी से नहीं धड़कता, केवल होंठ काँपकर रह जाते हैं।

इन दिनों मेरे कमरे में आने से पहले बानो की तलाशी ली जाती थी कि कहीं वह खट्टे अलूचे और कच्ची खूबानियाँ लुक-छिपकर भीतर न ले आये। उसके दुपट्टे के सिरे में नमक-मिर्च की पुड़िया बँधी रहती—बीमारी से पहले अलूचों को उनमें भिगोकर हम चटनी बनाया करते थे।

बानो ने जिसे अभी 'अपने घर' कहा था, वह पड़ोस में एक भुतहा मकान था, जो बारहों महीने खाली-उजाड़ पड़ा रहता था। कहते थे, वहाँ एक मेम ने अपने हाथों से अपने को जान से मार लिया था। उस मकान का एक कमरा गुसलखाने से खुलता था—वहीं मैं और बानो अपनी कच्ची-पक्की खूबानियों और अलूचों का खजाना छिपाकर रखते थे। यह एक गुप्त व्यापार था, जिसकी खबर अभी तक किसी तीसरे व्यक्ति के कान में नहीं पड़ी थी।

बानो बाहर बरामदे में देर तक झूला झूलती रही। जब वह झोटा लेकर झूला ऊपर लाती है, उसकी सलवार गुब्बारे-सी फूल जाती है। झूले को ऊपर-नीचे घूमता देखते हुए मेरी आँखें झपकने लगीं। कब आँख लग गयी, याद नहीं आता। सपना आया था। दुपहर को सोते हुए जो सपना आता है, वह मुझे हमेशा याद रहता है। दफ्तर से बाबू का टिफिन लेने के लिए चपरासी आया है। उसने हँसते हुए बताया है कि हम दिल्ली जा रहे हैं। भुतहा मकान के कमरे की खिड़की से बानो मेरे अलूचों को बाहर फेंक रही है, और दूर पहाड़ियों में कालका-शिमला की रेल में वही मेम बैठी है, जिसने आत्महत्या की थी। बानो जो अलूचे बाहर फेंकती है, रेल के डिब्बे से वही मेम खिड़की से हाथ बाहर निकालकर उन्हें पकड़ती जा रही है।

जब मेरी आँख खुली तो बानो कब की जा चुकी थी।

शाम को माँ चाय लेकर आयी, तो मैंने पूछा—"चपरासी आया था ?" माँ ने हैरान होकर कहा, "हाँ आया था, क्यों ?" "कुछ कहता था ?" मैंने पूछा। माँ ने कहा, "नहीं—क्यों क्या बात है ?" मैं कुछ नहीं बोला और तकिये के सहारे अधलेटा-सा चाय पीने लगा।

माँ ने थर्मामीटर लगाकर देखा, फिर झटक दिया। पहले मैं अपना बुखार पूछ लिया करता था, किन्तु जब देखा कि माँ झूठ बताती हैं, तो पूछना छोड़कर केवल उनके चेहरे को पढ़ने की कोशिश किया करता था। कभी-कभी माँ मेरे गम्भीर चेहरे को देखकर कहतीं—"जल्दी ठीक हो जाओ, फिर दिल्ली चलेंगे।" वह इस निश्छल, हल्के ढंग से कहतीं, मानो ठीक होना मेरे बस की बात है, जैसे मैं जान-बूझकर जिद किये हुए बीमार पड़ा हूँ और वह मुझे ठीक होने के लिए फुसला-मना रही हैं। इससे मुझे गुस्सा आता और मैं करवट बदलकर खिड़की की ओर मुँह मोड़ लेता। किन्तु उन्हें काफी देर तक पता नहीं चला कि मैं गुस्सा किये हूँ। मैं अपने पाँव ऐंठ लेता, दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बन्द कर लेता और दाँतों को भींचता हुआ जोर-जोर से साँस

लेने लगता। माँ जो खिड़की से बाहर देख रही होतीं,एकदम घबरा उठतीं। मेरे चेहरे को देखतीं, फिर एक ठण्डी साँस लेकर सिरहाने बैठ जातीं। न जाने मैं कैसे जान लेता कि वह मेरे अभिनय को भाँप गयी है। किन्तु ऊपर से वह कुछ नहीं बतलातीं··· धीरे-से आलमारी से कैडबरी चॉकलेट निकालकर मेरे तकिये के नीचे रख देतीं। "बाबू को मत बताना," उन्होंने मेरे बालों को अपनी अँगुलियों से सहलाते हुए कहा। दूसरे क्षण वह मुझे भूल गयीं। उनकी अँगुलियों के अनिश्चित, अर्ध-सोये स्पर्श से मुझे पता चल जाता है कि वह स्वयं मुझसे कोसों दूर खो गयी हैं। चॉकलेट जो मुझे दी है, वह मुझे रिझाने को नहीं, बल्कि मुझसे छुटकारा पाने के लिए, जिससे वह बिना किसी विघ्न-बाधा के अपने में सिमटी रह सकें। ऐसे क्षणों में मैं चुपचाप उनकी ओर देखता रहता। वह नहीं जानतीं कि मैं उनकी ओर देख रहा हूँ। उनके चेहरे के बल ढीले पड़ जाते, सब उतार-चढ़ाव मिट जाते और एक शून्य-सी समतलता बिछ जाती। मुझे लगता जैसे उनकी आँखों में सूखी तपिश की गरमायी-सी फैल गयी है, किन्तु दूसरे क्षण ही भ्रम होता कि उनमें धुँधला-सा गीलापन है जो चमक रहा है। मुझे अक्सर यह खुशफहमी होती कि वह मेरी बीमारी के सम्बन्ध में सोच रही है—हालाँकि भीतर-ही-भीतर मुझे मालूम था कि ऐसे क्षणों में उनके खयालों से मेरा दूर का भी वास्ता नहीं है।

तब मैंने धीरे-से उनके हाथ पर अपना हाथ रख दिया। वह एकदम हड़बड़ाकर चौंक गयीं। मुझे लगा जैसे मैं उन्हें जबर्दस्ती कहीं बहुत दूर से खींच लाया हूँ। वह मुझे कुछ देर तक घूरती रहीं। फिर अचानक मेरे होंठों को चूम लिया। मैंने कमीज की बाँह से अपने होंठों को पोंछा, वह मुस्कराने लगीं।

"बच्ची, एक बात पूछूँ?"

"क्या?"

"अगर मैं कहीं चली जाऊँ, तो क्या तुम मुझे समझोगे?"

माँ अपलक, एकटक मुझे देख रही हैं।

"क्या मैं भी तुम्हारे संग चलूँगा?"

"न"—उन्होंने सिर हिलाया।

"बाबू के संग जाओगी?"

"न।"

"फिर··· ?" मैं विस्मित-सा उनकी ओर देखता रहा।

वह हँसने लगीं और मेरे संग पलँग पर लेट गयीं।

मैंने अपने गाल उनके गालों से सटा लिये। माँ बहुत खूबसूरत हैं। घर में सब उनसे डरते हैं; मुझे कभी-कभी काफ़ी आश्चर्य होता है कि उनमें कौन-सी ऐसी बात है जो सबको इतना आतंकित किये रहती है। वैसे डर मुझे भी लगता है—उनकी आँखों से, जब वह मेरे पास बैठकर मुझे देखती हैं।

मैं बहुत दिन पहले बाबू के संग उनके एक मित्र के घर गया था। वापिस आते हुए हमें पहाड़ी नाले के संग-संग ऊपर चढ़ना पड़ा था। ऊपर आकर हम पेड़ों के घने अँधेरे झुरमुट के बीच कुछ देर के लिए सुस्ताने खड़े हो गये थे। मैं उस जगह की वीरान चुप्पी से डर गया था।

आज जब कभी मैं माँ की आँखों को देखता हूँ, तो न जाने क्यों मुझे उस रात जंगल के झुरमुट का घना-घना-सा अँधेरा याद आ जाता है।

संगमरमर-सी चिकनी सफेद उनकी बाँहें हैं, जिन्हें मैं शरमाते-शरमाते छूता हूँ। वह अपने बालों को बहुत कसकर बाँधती हैं, इसलिए उनका माथा इतना चौड़ा दिखायी देता है। बालों के बीचोबीच सीधी माँग है—जिसे देखकर अक्सर मैं उदास हो जाता हूँ। उनके कान बहुत छोटे-छोटे हैं, गुड़िया के कानों-से – जिन्हें वे अपने बालों के भीतर छिपाये रखती हैं। जब कभी वे मुझसे सटकर लेटती हैं, तो मैं उनके कानों को बालों के भीतर से निकाल लेता हूँ। मुझे बानो की बात याद आती है, और मेरे सारे शरीर में एक हल्की-सी झुरझुरी फैलने लगती है। "जिनके कान छोटे होते हैं," बानो ने एक दिन कहा था, "वे लोग बहुत जल्दी मर जाते हैं।" मैंने यह बात माँ को नहीं बतायी है, सोचता हूँ जब वह मरने लगेंगी तो कह दूँगा कि वह अपने छोटे-छोटे कानों की वजह से ही मर रही हैं।

कभी-कभी मुझे लगता है कि उन्हें मेरी बीमारी की विशेष चिन्ता नहीं है। मुझे लगता है कि वह यह भी भूल जाती हैं कि मैं बीमार हूँ। एक दिन जब मैंने केक खाने की इच्छा प्रकट की, तो उन्होंने बुआ अथवा बाबा की तरह मेरी नाजायज माँग का कोई विरोध नहीं किया। चुपचाप आलमारी से केक का एक टुकड़ा तश्तरी पर रखकर मेरे सामने धर दिया और खुद आँखें मूँदकर कुर्सी पर लेटी रहीं। मुझे कुछ बुरा लगा और केक खाने की मेरी इच्छा उसी क्षण मर गयी। मुझे भय था कि कुछ भी खा लेने से बीमारी लम्बी हो जायेगी, और तब दिल्ली जाने का दिन और भी पीछे टल जायेगा।

मुझे मालूम है—माँ दिल्ली नहीं जाना चाहतीं। इसका कारण मुझे आज भी समझ में नहीं आता, किन्तु एक बार उन्होंने यह बात बीरेन चाचा से कही थी।

कभी-कभी चोरी-चुपके से मैं माँ के कमरे में जाता हूँ। पिछले कुछ महीनों से माँ और बाबू अलग-अलग, अपने-अपने कमरे में सोते हैं। पहले मुझे यह बात कुछ अजीब-सी लगी थी – किन्तु कुछ चीजें हैं, जिन्हें मैं किसी से नहीं पूछता, मन का एक कोना है, जिसमें सबकी आँखों से छिपाकर उन्हें दबा देता हूँ।

माँ का कमरा छज्जे के अन्तिम सिरे पर है। मुझे अपने कमरे से उनके कमरे की दो खिड़कियाँ दिखायी देती हैं—खिड़कियों के बीच दीवार का छोटा-सा टुकड़ा है, जिस पर पत्तों की जालीदार छाया हर शाम सिमट आती है। कभी-कभी खिड़की का नीला परदा उड़कर दीवार से चिपक जाता है, तब पत्तों की जाली दीवार से उठकर परदे पर मँडराने लगती है। खुली खिड़की से माँ का सिर दिखायी देता है। जब वह सिर जरा ऊपर उठाती हैं, तो धूप में उनका

जूड़ा सुनहरा-सा होकर चमक उठता है। मैं समझ जाता हूँ, माँ खिड़की के पास कुर्सी पर बैठी पढ़ रही हैं।

मैं कई बार माँ के कमरे में गया हूँ—सोफे पर, उनके पलँग पर तकिये के पास, पलँग के नीचे किताबें बिखरी रहती हैं। माँ को शायद बहुत कम नींद आती है—रात को अनेक बार मैंने उनके कमरे में बत्ती का प्रकाश देखा है। सोचता हूँ, वह इन्हीं किताबों को पढ़ती रहती होंगी।

एक बार मैंने कोई किताब खोली थी, उस पर छोटे-छोटे, टेढ़े-नीले अक्षरों में बीरेन चाचा का नाम लिखा था—मैं मन्त्रमुग्ध-सा उन अक्षरों में खो गया था। बाद में वह नाम मैंने माँ के कमरे में रखी अनेक किताबों पर देखा था।

मुझे बीरेन चाचा की छोटी-सी कॉटेज याद आती है, जहाँ एक दिन मैं माँ के संग गया था। एक बड़े कमरे में छत तक किताबें चुनी रखी थीं। हर शेल्फ के नीचे छोटी-छोटी सीढ़ियाँ खड़ी थीं, जिन पर चढ़कर किताबों को उतारना पड़ता था। दूसरे कमरे में टेढ़ी-मेढ़ी बेडौल शक्लों के अजीब चित्र टँगे थे, जिन्हें देखकर मैं स्तम्भित-सा खड़ा रह गया था। बाबू बताते हैं कि लड़ाई से पहले बीरेन चाचा ने इन चित्रों को योरोप में खरीदा था। मुझे बीरेन चाचा पर कभी अचम्भा होता, कभी दया आती—वह बारहों महीने सर्दी, गर्मी में इस निर्जन, अकेले मकान में कैसे रह पाते होंगे?

बाबू के मित्रों में शायद बीरेन चाचा का स्थान सबसे अलग है। बाबू केवल उनके संग मेरे कमरे में चाय पीते हैं—उनके अन्य मित्र बाहर बैठक में बैठते हैं। जब वह आते हैं, उस शाम मुझे जल्दी सोने के लिए मजबूर नहीं किया जाता—देर तक मेरे कमरे में ही बातचीत होती है। मेरे लिए ये रातें बहुत सुखद होती हैं।

एक शाम बीरेन चाचा जब हमारे घर आये, तो उनकी वेश-भूषा देखकर उन्हें एकदम नहीं पहचान सका। घुटनों तक लम्बे बूट, कन्धे पर खाकी थैला, दूसरे पर कैमरा और सिर पर सोला हैट—इस पोशाक में उनकी छोटी-सी दाढ़ी बड़ी बेमेल और कृत्रिम लग रही थी। पैण्ट की दोनों जेबों में किताबें ठूँस रखी थीं।

वह मेरे पलँग के पास आये और मुझसे हाथ मिलाया। वह मुझसे ऐसे पेश आते हैं जैसे मैं बीमार हूँ ही नहीं, और न कभी मेरी तबीयत ही पूछते हैं।

माँ पास की कुर्सी पर बैठी बुन रही थीं—एक बार उन्होंने बीरेन चाचा को देखा और फिर सिर झुका लिया।

उन्होंने बताया कि वह एक रात के लिए कुफ़्री जा रहे हैं, रेस्ट हाउस में ही ठहरेंगे और अगले दिन शाम तक वापिस लौट आयेंगे।

"कहते हैं, रेस्ट हाउस का चौकीदार बड़ा काबिल आदमी है। वह पिछले तीस साल से कुफ़्री में रह रहा है—उससे शायद कुफ़्री के बारे में बहुत-सी बातें मालूम होंगी," बीरेन चाचा ने कहा।

माँ के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान सिमट आयी, मानो उनकी आँखों में बीरेन चाचा की बात रत्ती भर मूल्य नहीं रखती।

"इस तरह के इण्टरव्यू तुम कितने बरसों से ले रहे हो।" माँ ने आँखें झुकाये बुनते हुए कहा।

"ओह, तुम्हें विश्वास नहीं होता—लेकिन तुम्हें मेरे नोट्स देखने चाहिए।" बीरेन चाचा की नीली आँखें चमक उठीं। वह जब कभी अपनी किताब 'शिमला का इतिहास' का जिक्र छेड़ते हैं, माँ ऐसे ही हँसती हैं।

"कभी-कभी इस किताब के सिलसिले में खोज करते हुए अजीब चीजें मिल जाती हैं।"

"कैसी चीज़ें, बीरेन चाचा," मैं बीरेन चाचा की किताब के बारे में काफी उत्सुकता दिखलाता हूँ। मुझे मालूम है, इससे उन्हें काफी प्रसन्नता होती है।

"एक बहुत पुरानी फोटो मिली थी—किसी अंग्रेज ने ली होगी।"

"क्या था फोटो में ?" इस बार माँ की आँखें सलाइयों से ऊपर उठ जाती हैं।

"रेस-कोर्स की भीड़ दिखायी गयी है... बहुत-से लोग भीड़ में खो गये हैं, लेकिन एक अंग्रेज लड़की का चेहरा बिलकुल साफ दिखता है—वह पवेलियन के पास छाता लिये खड़ी है—जबकि और सब लोगों की आँखें भागते हुए घोड़ों पर जमी हैं... वह गहरी उत्सुक आँखों से पीछे की ओर देख रही है—उसका इस तरह पीछे मुड़कर देखना मुझे काफी अजीब-सा लगा।"

बीरेन चाचा अचानक चुप हो गये—माँ के हाथों में सलाइयाँ चलती-चलती ठहर गयीं।

"फोटो के नीचे लिखा था—'ऐननडेल, शिमला, 1903'... पचास साल गुजर गये और वह वैसे ही छाता लिये पीछे मुड़कर देख रही है...।"

बीरेन चाचा धीरे-से हँसने लगे, मानो उन्हें अपनी बात काफी बेतुकी-सी जान पड़ी हो। माँ गुमसुम-सी उनकी ओर देख रही है और मुझे आश्चर्य होता है कि बीरेन चाचा कभी-कभी इस प्रकार की अर्थहीन-सी बातें क्यों करते हैं।

"कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि लोगों की अपेक्षा शहरों की कहानी लिखना बहुत कठिन है—मेरे पास शिमला के बारे में इतने पुराने फोटो नोट्स, किताबें, टूरिस्टों के यात्रा-लेख जमा हैं, किन्तु मुझे लगता है कि मैं किताब शायद कभी नहीं लिख पाऊँगा।"

"क्यों ?" माँ ने पूछा।

"शहर... हर शहर—अपने में हमेशा इतना चुप जो रहता है।" बीरेन चाचा उठ खड़े हुए—धीरे से उन्होंने मेरा माथा छुआ।

"रास्ते में डाक्टर मिले थे—कहते थे, दो-चार दिनों में तुम घूमने-फिरने लगोगे" उन्होंने तनिक झुककर मुझसे कहा।

"ज़रा बैठ जाओ—देखूँ, तुम्हारा फोटो कैसा आता है !" उन्होंने अपने कन्धे से कैमरा

उतार लिया। मेरा फोटो लेने के बाद वह अपनी छड़ी उठाकर जाने लगे।

"कब वापिस लौटोगे ?" माँ ने पहली बार सीधे उनकी ओर देखा।

"शायद कल शाम तक—कुछ देर के लिए आऊँगा," बीरेन चाचा जब माँ की ओर देखते हैं, तो उनकी आँखें चौंधिया-सी जाती हैं—और वह अपना मुँह दूसरी ओर मोड़ लेते हैं।

"बीरेन चाचा··· " मैं बुरी तरह शरमा रहा हूँ।

"क्या बच्ची ?" उन्होंने आश्चर्य से मेरी ओर देखा।

"एक फोटो मैं खींचूँगा।"

बीरेन चाचा ने मुस्कराकर कैमरा मेरे हाथों में थमा दिया।

माँ की ओर देखता हूँ···

"नहीं बच्ची, मेरी नहीं ।" माँ एकदम झुँझला-सी उठती हैं।

"सिर्फ तुम नहीं··· बीरेन चाचा भी रहेंगे।" मैंने कहा। बीरेन चाचा का चेहरा क्षण-भर के लिए म्लान-सा हो उठा—वह माँ की ओर देखते हैं। माँ ने इस बार विरोध नहीं किया, वह कुर्सी से उठ खड़ी हुईं, "बच्ची, तुम बहुत ज़िद्दी हो," उन्होंने कहा।

"बीरेन चाचा, तुम जंगले के पास खड़े हो ज़ाओ, वहाँ धूप आ रही है, और माँ, तुम इधर दायीं तरफ।" मैं पलँग से उतरकर दीवार के सहारे खड़ा हो गया हूँ। मेरा सिर चकरा रहा है, लेकिन फोटो ठीक आता है। आज भी वह फोटो मेरे पास है···

कमरे में शाम का धुँधलका कब चुपके से घिर आया, पता नहीं चला। बीरेन चाचा बहुत पहले जा चुके थे। माँ मेरे पलँग के पास कुर्सी पर बैठी है—जब से बीरेन चाचा गये हैं, तब से वह वैसे ही चुपचाप बिना हिले-डुले उस कुर्सी पर अधलेटी-सी पड़ी हैं। मैं बत्ती नहीं जलाता, मुझे कमरे में अँधेरे का धीरे-धीरे आना अच्छा लगता है।

मेरी आँखों के सामने बहुत दिन पहले की एक शाम घूम जाती है—तब मैं बीमार नहीं पड़ा था। माँ उस शाम मुझे बीरेन चाचा के घर ले गयी थीं।

हमें देखकर बीरेन चाचा हैरान से हो गये थे। फाटक खोलकर वह माँ के सामने ठिठक गये।

"पोनो—तुम··· " एक क्षण के लिए वह खोये से खड़े रहे। पहली बार उन्होंने मेरे सामने माँ को उनके नाम से पुकारा था। उनके मुँह से माँ का नाम सुनकर मुझे बहुत अजीब-सा लगा था। माँ हँसने लगीं और न जाने क्यों मुझे माँ की वह हँसी अच्छी नहीं लगी—एक घुटा-घुटा-सा डर मेरे मन में समा गया।

"यूँ ही सैर को निकले थे, सोचा तुमसे मिलते चलें।" माँ ने कहा। पहली बार मैंने माँ को झूठ बोलते देखा था।

बीरेन चाचा की नीली आँखों में हल्का-सा विस्मय घिर आया। उन्होंने मेरी अँगुली पकड़ी और चुपचाप कॉटेज के भीतर चले आये।

वहीं मैंने पहली बार उनकी लायब्रेरी देखी थी। उन्होंने मुझे अपनी अलबमों में शिमले की पहाड़ियों, घाटियों और झरनों के फोटो दिखलाये, जो उन्होंने अपनी किताब के लिए जमा किये थे। मेज पर ढेर-सी किताबों के पास हल्के रंग के शेड से ढका टेबिल-लैम्प जल रहा था। उन्होंने जब दो चॉकलेटें मुझे दीं, तो मैं कुछ हैरान-सा हो गया। उन्होंने हँसते हुए कहा–"मेरे पास बहुत-सी रखी हैं, बर्फ के दिनों में बाहर जाना नहीं होता, इसलिए जमा कर रखता हूँ।" मैं क्षण-भर उन्हें देखता रह जाता हूँ। बीरेन चाचा बाबू से कितने अलग हैं–उनमें वह तनाव, बोझिल गम्भीरता अथवा भारीपन नहीं है, जो मैं बाबू में देखता हूँ। हर चीज पर उनका स्पर्श एक स्निग्ध कोमलता लिये रहता है। उनकी छोटी-सी दाढ़ी के ऊपर जो आँखें हैं, उन्हें देखकर मुझे हमेशा लगता है, जैसे वह धीमे-धीमे कुछ कह रही हों, मानो जिस वस्तु पर वे टिक जायेंगी, वह अपने आप सँवर-निखर जायेगी।

"तुमने कभी बहुत पास से किसी पहाड़ी की चोटी पर बर्फ देखी है ?" उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने सिर हिला दिया।

"वहाँ से बर्फ का रंग बिल्कुल नीला दीखता है। मैंने एक कलर्ड फोटो लिया है ..." वह उस फोटो को लाने के लिए दूसरे कमरे में चले गये। मैं मेज पर रखी अलबमों को उलटने-पलटने लगा। हर फोटो में शिमले का कोई-न-कोई दृश्य था : ग्लैन, जाखू, चैटविक फॉल। मैंने इन सब स्थानों को आसानी से पहचान लिया। कुछ देर बाद जब बीरेन चाचा नहीं आये, तो मैं ऊब गया। पास किताबों के शेल्फ पर एक छोटा-सा अलबम कोने में रखा था, मैंने उसे खोला और खोलते ही एक क्षण के लिए मुझे लगा–यह चेहरा मैंने कहीं देखा है, किन्तु दूसरे ही क्षण मेरी आँखें स्तब्ध-सी स्थिर हो गयीं। फोटो माँ का था।

क्या माँ कभी ऐसी थीं ? मेरे भीतर कहीं एक गहरा-सा साँस उखड़ आया। वही चौड़ा-सा माथा, किन्तु उस पर छोटी-सी बिन्दी लगी थी, जो माँ अब नहीं लगातीं, दोनों चोटियाँ कन्धे के नीचे लटक रही थीं, पूरे स्लीव का स्वेटर पहन रखा था और बालों के भीतर वही छोटे-छोटे कान छिपे थे। सहसा मुझे आभास हुआ कि इस चेहरे में कुछ ऐसा है, जिसका मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं, बाबू से कोई सम्बन्ध नहीं।

फोटो माँ का था, लेकिन उसमें माँ कहाँ थीं ?

अचानक मुझे बीरेन चाचा के पैरों की आहट सुनायी दी। न जाने मेरे भीतर क्या चोर छिपा था कि मैंने डरकर झटपट वह अलबम किताबों में छिपा दी।

जब हम वापिस लॉन में आये तो हल्का, फीका-फीका-सा अँधेरा छाने लगा था। माँ शाल में दुबकी हुई पत्थर की बेंच पर बैठी थीं।

"इतनी देर कहाँ लगा दी ?" उन्होंने मुझे खींचकर अपने से सटा लिया। बीरेन चाचा माँ के पैरों के निकट घास पर बैठ गये। मेरी आँखें माँ के चेहरे पर टिकी रहीं, मानो मैं कुछ खोज रहा हूँ, माँ की आँखें, मुँह, माथा हर चीज अलग-अलग देखो तो वैसी ही थी, किन्तु आपस में

मिलकर जो भाव बनता था, वह उस चेहरे से बिल्कुल अलग था, जो मैंने अभी कुछ देर पहले बीरेन चाचा की अलंबम में देखा था।

जो अन्तर है—उसे समझा नहीं सकता, उस पर अँगुली नहीं रख पाता··· वह कैसा भाव था जो किसी लम्बी दूरी को हमारे पास ले आता है, लेकिन अपने को दूर ही रहने देता है।

"बच्ची क्या बात है— ?" माँ मेरे बालों को धीरे-धीरे अपनी अँगुलियों में उलझाने लगीं।

मैंने सिटपिटाकर मुँह फेर लिया।

माँ ने आगे कुछ नहीं पूछा। हम तीनों इसी तरह अपने-अपने में सिमटे चुप बैठे रहे। जब से हम आये थे, बीरेन चाचा ने माँ से कोई बात नहीं की थी। मुझे शुरू-शुरू में कुछ आश्चर्य-सा हुआ था, किन्तु मैंने उस पर अधिक ध्यान नहीं दिया।

लॉन पर नीला-नीला-सा अँधेरा घिर आया। दूर पहाड़ियों के बीच छोटे-छोटे जुगनुओं-सी बत्तियाँ बिखरी थीं—और अँधेरे में पहाड़ियों के छिप जाने से लगता था कि आकाश बहुत नीचे सरक आया है, कभी-कमी तो पता भी नहीं चलता कि तारों और बत्तियों में कौन-सी बत्तियाँ और कौन-से तारे हैं।

बीमारी के दिनों में मुझे अक्सर वह शाम याद आ जाती है—हालाँकि उस शाम कोई भी ऐसी बात नहीं हुई थी, जिसे याद रखा जाता। जब हम वापिस लौटने लगे, तो बीरेन चाचा कुछ दूर हमारे संग आये थे। फिर माँ के कहने पर कि हम खुद चले जायेंगे, वापिस मुड़ गये थे। मैं और माँ कुछ दूर ऊपर की सड़क पर चुपचाप चढ़ते रहे। मैं तेज कदमों से माँ के आगे-आगे चल रहा था। कुछ दूर चलने के बाद सहसा मेरे पाँव ठिठक गये। मुझे लगा, माँ मेरे पीछे नहीं आ रही हैं। मैं वापिस मुड़कर पीछे की ओर चलने लगा। अँधेरे में मेरा दिल जोर-जोर से धड़क रहा था।

कुछ दूर नीचे उतरकर अचानक मेरे पाँव रुक गये—मैं अँधेरे में आँखें फाड़ता हुआ हतबुद्धि-सा खड़ा रहा। माँ सड़क के मोड़ पर खड़ी थीं, किनारे पर लगी तार पर झुकी हुई—उनकी साड़ी का आँचल हवा से उड़कर कन्धे पर आ गिरा था—अपने में बिल्कुल खोयी-सी वह अपलक नीचे देख रही थीं···

उतराई के नीचे थी—बीरेन चाचा की कॉटिज, जो शाम के धुँधलके में बिल्कुल सूनी और निर्जन दिखायी दे रही थी। लाइब्रेरी की खिड़की से आती हुई मंद्धिम-सी प्रकाश-रेखा में लॉन की घास झिलमिला रही थी।

कुछ देर तक शाम के झुटपुटे में हम बिल्कुल खामोश खड़े रहे, फिर माँ अचानक आगे मुड़कर चलने लगीं—उनकी चाल इतनी धीमी थी कि एक क्षण मुझे लगा, मानो वह सोते हुए चल रही हों।

वह मेरे पास आ गयीं—आँखें ऊपर उठाकर एक लम्बे क्षण तक अपनी आकुल, विवश निगाहों से मुझे निहारती रहीं, फिर झपटकर उन्होंने मुझे अपने पास घसीट लिया और बार-बार अपने ठण्डे, सूखे होंठों से मुझे चूमने लगीं।

कुछ दिनों बाद एक सुबह मुझे अपने मुँह का स्वाद अच्छा-सा लगा। अंगों में एक हल्की-सी स्फूर्ति का आभास हुआ। पहले मैं धूप से बचने के लिए खिड़की बन्द किये रहता था, अँधेरे कमरे में आँखें मूँदकर लेटना भला लगता था। अब मैंने खिड़की खोलकर परदों को उठा दिया। बाहर की गर्म, ऊनी धूप मेरे पलँग को चारों ओर से घेर लेती है। मैं बिस्तर से उतरकर मेज के सहारे खड़ा हो जाता हूँ। सिर पहले की तरह नहीं चकराता, मैं पायदान की ओर कुछ कदम बढ़ाता हूँ, और मुझे लगता है, मानो मैंने जिन्दगी में पहली बार अपने आप चलना सीखा हो।

मैं चुपके से बाहर बरामदे में आ जाता हूँ। कुछ दूर पर बुआ गीली धोती काठ के जंगले पर सुखा रही है—मैं उनकी आँख बचाकर बाबू के कमरे के पीछेवाले छज्जे पर चला जाता हूँ। कमरे के दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द हैं, भीतर के लाल परदे नीचे गिरे हुए हैं। जब माँ मौसी के घर चली जाती हैं, तो बाबू उस कमरे को बन्द कर देते हैं। अपनी सारी चीजें ऊपर छत पर 'स्टडी' में ले जाते है और रात को वहीं सोते हैं।

छज्जा निपट सूना है। नीचे 'आउट-हाउस' के क्वार्टरों की छतों के चौड़े नीले टिन के पटरों पर बड़ियाँ चमक रही हैं, जो पहाड़ी खानसामा की औरत हीरा ने सुखाने रख छोड़ी है। सामने मदरसे के छोटे-से मैदान में लड़के बस्ता घुमाते हुए चार-चार की पाँत में खड़े नकियाते, अलसाये स्वर में प्रार्थना कर रहे हैं—"लब पे आयी है दुआ बन के तमन्ना तेरी।"

उनकी तीखी-रूखी आवाज को सुनकर जब मैं ऊब जाता हूँ, तो मेरी आँखें खड्ड के ऊपर मेम के उस रहस्यमय बँगले पर टिक जाती है जहाँ हम कच्चे अलूचे छिपाकर रखते थे। उससे ज़रा दूर पेड़ों और झाड़ियों से घिरी हुई एक पगडण्डी साँप की तरह बल खाती हुई बानो के मकान के ऊबड़-खाबड़ अहाते में जाकर गुम हो गयी है। मैं अपने कमरे से बाबू की पुरानी छड़ी ले आता हूँ, जिसके सिरे पर मैंने माँ की लाल साड़ी का चीथड़ा बाँध रखा है। मैं जंगले से बाहर गर्दन निकालकर छडी को हवा में दायें-बायें घुमाता हूँ—लाल रेशम की झण्डी हवा में फरफराती है। बानो ने मेरी लाल झण्डी को देख लिया है—उसने हाथ उठाकर कुछ कहा है, जिसे मैं कुछ भी सुन-समझ नहीं पाता। यह मेरा और बानो का पुराना और प्रिय खेल है। हमारे और उसके मकान के बीच ढलान पर कई कोठियाँ और दूकानें हैं, किन्तु ऊँचाई पर होने के कारण हम एक-दूसरे को छज्जे से देख पाते हैं—हालाँकि हम चाहे कितना भी चिल्लाकर क्यों न बोलें, एक-दूसरे की बात नहीं सुन पाते। इसीलिए इशारों से बात करने के लिए मैं बाबू की छड़ी से सिगनल का उपयोग करता हूँ।

बानो अपनी अम्मी को भीतर से बरामदे में खींच लायी है—अम्मी ने हाथ उठाकर मुझे बुलाया है। अम्मी मुझे इतनी दूर से नहीं देख पातीं, फिर भी मैं शरमा जाता हूँ और छड़ी को बरामदे में फेंककर अपने कमरे में भाग आता हूँ।

कमरे की देहरी पर सहसा मेरे पाँव ठिठक गये—बाबू का स्वर सुनायी दिया। नौकर ने आकर बताया कि बाबू अपने कमरे में मुझे बुलाते हैं।

मेरे दिल में खुशी की लहर-सी दौड़ गयी। ऐसा बहुत कम होता है कि बाबू मुझे अपने कमरे में बुलाकर मुझसे बातें करें—अक्सर वह हाल-चाल पूछने मेरे कमरे में ही आ जाते हैं। मैं झटपट अपने नाखून दाँतों से काट लेता हूँ क्योंकि बाबू हमेशा सबसे पहले मेरे दोनों हाथों को देखते हैं। आँखों को गीले तौलिये से पोंछ लेता हूँ और हाथों को मुँह पर रखकर फूँक मारता हूँ, और फिर उन्हें सूँघता हूँ—यह देखने के लिए कि मुँह साफ है या नहीं। फिर शीशे में मुँह देखकर कंघी करता हूँ (माँ के न होने से पिछले कुछ दिनों से मुझे ये सब काम खुद करने पड़ते हैं) और जब कंघे से अपने बालों को झरता हुआ देखता हूँ, तो न जाने क्यों मुझे अपने ऊपर गहरी-सी दया आने लगती है, और मेरी आँखों में आँसू भर आते हैं।

ड्राइंग रूम (जिसे उन दिनों हम हॉल कहते थे—क्योंकि वह हमारे घर का सबसे बड़ा कमरा था) के कालीन पर पैरों की आहट नहीं होती, फिर भी मैं बहुत हौले-हौले दबे पाँवों से बाबू के कमरे की ओर जाता हूँ। सुबह मैं ठीक था, किन्तु अब सिर चकराता है, मानो कनपटियों से धुएँ की दो लकीरें ऊपर उठती हुई सिर के बीचोबीच मिलने की चेष्टा कर रही हों और बीच में रुई का एक घुटा-घुटा-सा बादल इन दोनों के बीच आकर अड़ गया हो।

मैं उनके कमरे की देहरी पर खड़ा हूँ—परदों के रिंग हाथ लगाने से धीरे-धीरे बजते हैं। वह बिना मेरी ओर देखे मुझे भीतर बुलाते हैं। मैं और आगे खिसक आता हूँ। बाबू के कमरे को पहचानना कितना आसान है—सिगार के धुएँ की गर्म-गर्म-सी गन्ध, चारों ओर फैली गहरी बोझिल-सी चुप्पी, एक अजीब धुँधली-सी रोशनी, जो दिन और रात दोनों समय एक-सी रहती है। और एक खट्टी और भीनी-सी बू, जो मेरी दवा की बू से मिलती हुई भी कहीं दूर जाकर उससे अलग हो जाती है। उसके बारे में मैं कभी तय नहीं कर पाता कि वह मुझे अच्छी लगती है या बुरी—लगता है, वह बू नहीं है, महज एक हल्का-सा रंग है जो बाबू के कमरे की हवा में तिरता रहता है।

"बाहर क्या कर रहे थे !" मैं उनकी आवाज पहचानता हूँ, उसमें गुस्सा नहीं है।

"बानो को देख रहा था—" और मैं सकुचाकर चुप हो जाता हूँ।

"बाबू⋯"

उनकी आँखें ऊपर उठ आयीं।

"आज मैं ठीक हूँ⋯ बुखार नहीं है।"

बाबू ने मेरे दोनों हाथों को अपनी गोद में रख लिया। "अभी कुछ दिन तुम्हें बिस्तर पर लेटना होगा⋯" उन्होंने मेरे हाथ को एक-दूसरे के ऊपर रख दिया, और उन्हें अपने खुरदरे; बालों से भरे हाथों में समेट लिया।

"बाबू—हम दिल्ली कब जा रहे हैं !" जब कभी मुझे उनसे बात करने का मौका मिलता है, मैं हर बार उनसे यह प्रश्न करता हूँ।

उन्होंने सिगार को मुँह से निकालकर अँगुलियों में थाम लिया। वह कुछ देर तक चुपचाप

दीवार के बेल-बूटोंवाले कागज को देखते रहे मानो उस पर कुछ लिखा है, जिसे वह बड़े गौर से पढ़ रहे हों।

"बच्ची, तुम्हें डर तो नहीं लगता ?"

"डर ?" मैं विस्मित-सा होकर उनकी ओर देखने लगा। उनकी आँखें दीवार से उतरकर मुझ पर टिक गयीं।

"माँ घर में नहीं हैं··· शायद इसलिए···"

"लेकिन वह तो कुछ दिनों में आ जायेंगी ?" मैं चाहता था कि बाबू मेरी बात का समर्थन करें, किन्तु वह चुपचाप मेरी ओर देखते रहे।

"हाँ—वह आयेंगी," बाबू का स्वर इतना धीमा, इतना सोया-सा था मानो वह यह बात मुझसे न कहकर अपने से कह रहे हों।

"बच्ची··· ?"

"क्या बाबू ?"

"तुम क्या उन्हें देखना चाहोगे ?"

बाबू का स्वर एकदम भारी-सा हो आया। उनका यह प्रश्न मुझे काफी विचित्र और निरर्थक-सा लगा था—सोचा, कह दूँ, हाँ··· उनके पास जाऊँगा ; और दूसरे ही क्षण मुझे लगा कि बाबू मुझसे इस उत्तर की आशा नहीं कर रहे हैं, जैसे वह सच जानते हुए भी जान-बूझकर मुझसे झूठ कहलवाना चाह रहे हों।

मैंने 'नहीं' में सिर हिला दिया। हैरत-भरी दृष्टि से वह मुझे देखते रहे—फिर धीरे-से उन्होंने मेरे हाथों को अपनी गोद से हटा दिया।

"अच्छा, अब अपने कमरे में जाओ—अभी दो-तीन दिन तक बाहर खेलने मत जाना।"

वह कुर्सी से उठ खड़े हुए और मेरी ओर से मुँह मोड़कर खिड़की से बाहर देखने लगे।

कुछ देर तक मैं वहाँ चुपचाप खड़ा रहा। मेरे मन में अचानक बाबू के प्रति भीगी-भीगी-सी सहानुभूति उमड़ने लगी। माँ के संग मेरा सम्बन्ध अधिक सहज और सीधा था। बाबू के संग जो संकोच और तनाव रहता है, वह माँ के संग बिल्कुल नहीं है। वह कोई भी प्रतिवाद किये बिना मेरी हर फरमायश को चुपचाप मान लेती है—किन्तु इतना सब करने पर भी वह मुझसे हमेशा दूर रहती हैं, कभी न मिटनेवाला एक अलगाव बनाये रखती हैं। उनके सामने मुझे लगता है कि मैं एक बहुत ही छोटा, बेडौल और निरर्थक-सा प्राणी बन गया हूँ। किन्तु बाबू की बात दूसरी है। मैं उनसे डरता हूँ, कोई भी फरमायश करते समय मेरा दिल धड़कने लगता है, कभी खुलकर उनसे मैंने अपने मन की बात नहीं की—इसके बावजूद वह मुझे अपने अधिक निकट और जाने-पहचाने लगते हैं। कुछ ऐसा है, जो हम दोनों को माँ से अलग कर देता है, इसीलिए माँ को चाहते हुए भी उन पर कभी सहानुभूति नहीं होती और बाबू से डरते हुए भी उन्हें देखकर कभी-कभी मेरे भीतर कुछ रुआँसा हो जाता है।

बाबू ने पीछे मुड़कर मुझे देखा और एकटक देखते रहे। मुझे लगा जैसे वह कुछ देर के लिए मेरी उपस्थिति बिल्कुल भूल गये थे और अब सहसा मुझे अपने सम्मुख देखकर समझ न पा रहे हों कि मैं कौन हूँ, उनके कमरे में कैसे खड़ा हूँ।

मैं कमरे से बाहर चला आया। कुछ देर तक बड़े कमरे की दीवार से सटकर बाबू के कमरे की देहरी पर खड़ा रहा। सोचा था, बाबू बाहर आकर मुझसे कुछ कहेंगे, किन्तु यह मेरा भ्रम था। उनके कमरे में सिर्फ सन्नाटा था – एक घना गहरा-सा सन्नाटा जो हमारे सारे घर पर घिर आया था।

और तब उस क्षण मुझे लगा कि मैं बहुत अकेला हूँ, बाबू भी अपने में बहुत अकेले हैं। माँ के बिना हर कमरा साँय-साँय सा करता प्रतीत होता है।

मैं दीवार से सटकर आँखें मूँद लेता हूँ।

जिस दिन माँ मौसी के घर मुझसे मिले बिना चली गयीं, उससे एक दिन पहले आधी रात को मेरी आँख खुल गयी थी।

कमरे में अँधेरा था। हवा से खिड़की का परदा मेरे तकिये के ऊपर जोर-जोर से फड़फड़ा उठता था। कुछ देर तक मेरे मन में एक अजीब-सा भ्रम मँडराता रहा। मुझे लगा कि इस कमरे में–जहाँ मैं लेटा हूँ–हर चीज अपने पुराने स्थान को छोड़कर नये कोनों में उठ आयी है। मुझे लगा कि जो खिड़की मेरे बायीं ओर होती थी, वह अँधेरे में चुपचाप खिसककर बिल्कुल मेरे सामने आ गयी है। मेरे पलँग से दो गज की दूरी पर जहाँ पहले दीवार थी, वहाँ दरवाजा सिमट आया है। दरवाजा आधा खुला हुआ था। उसके भीतर से बाबू के कमरे की रोशनी थर्मामीटर की चमकती हुई पारे की रेखा-सी फर्श पर खिंच आयी थी–इतनी महीन, इतनी म्लान मानो हाथ से छूते ही टूट जायेगी, चारों ओर पानी-सी बिखर जायेगी।

अचानक वह दरवाजा दोनों बड़े-बड़े काले पंखों-सा फड़फड़ाता हुआ खुल गया, प्रकाश की पतली-सी रेखा फर्श पर तेजी से लपकती हुई सामने की दीवार पर चढ़ गयी। दरवाजे के पीछे छोटे-से गलियारे में कोई जोर-जोर से हाँफ रहा था। पहले क्षण मुझे लगा था कि दरवाजा हवा के झोंके से खुल गया है–किन्तु माँ उसे बन्द करने आयी हैं। किन्तु कुछ देर तक कोई भीतर नहीं आया। दरवाजे के पीछे गलियारे में उखड़ी हुई साँसों का एक हल्का-सा बवण्डर उठता था और फिर दब जाता था। कुछ सहमे हुए शब्द सुनायी देते थे–कभी दूर से–इतने दूर से कि शब्दों के बजाय आहट ही मुझ तक पहुँच पाती थी, कभी पास से, इतने पास से मानो कोई मेरे कानों में फुसफुसा रहा हो।

"नहीं, तुम भीतर नहीं जाओगी," मैंने बाबूजी का स्वर पहचान लिया।

एक पतली-सी चीख चमकीले काँच के टुकड़े-सी अँधेरे को छील गयी। माँ को क्या हो गया है ? वह इस अजीब ढंग से चीख क्यों रही है ?"

"छोड़ो ... मेरा हाथ छोड़ दो।"

"पोनो ... तुम भीतर नहीं जाओगी।"

"कौन हो तुम मुझे रोकनेवाले–छिः, शर्म नहीं आती ?"

"पोनो ... वह सो रहा है ... इस तरह मत चिल्लाओ।"

"मैं चिल्लाऊँगी नहीं, मुझे भीतर जाने दो।"

"नहीं ... इस वक्त नहीं।"

"तुम समझते हो, मैं पागल हूँ ... उसे सबकुछ बता दूँगी ?"

"पोनो ... अपने कमरे में चलो ... यहाँ मैं कुछ नहीं सुनूँगा। इस वक्त तुम होश में नही हो।"

किन्तु बाबू अपनी बात पूरी नहीं कह पाये–बीच में ही किसी ने झपटकर परदा हटा दिया–गलियारे की रोशनी में मेरा बिस्तर चमक उठा, पलँग और खिड़की के बीच की दीवार अँधेरे से बाहर निकल आयी।

मैंने देखा–संगमरमर-सी सफेद दो बाँहें परदे के बाहर हवा में फैली हैं। पीछे एक छाया है, भूखी, फटी-फटी-सी दो आँखें हैं ... परदे को नोचती हुई लम्बी-पतली काँपती अँगुलियाँ हैं और बिजली में चमचमाती नाक की लौंग, जो बार-बार फड़फड़ाते होंठों के ऊपर तारे-सी टिकी है ... यह सबकुछ मैंने एक छोटे-से क्षण मे देखा था – दूसरे क्षण मुझे लगा मानो परदा अपनी जगह वापिस खींच लिया गया है, सिर्फ एक भर्रायी-सी आवाज सुनायी दे जाती है, जो ऊपर उठने से पहले ही दबा दी जाती है, मानो किसी ने अपने हाथ से उसे भींच रखा हो।

तब जो मैंने सुना, उस पर एकाएक विश्वास नहीं हो पाया। मुझे लगा परदे के पीछे कोई धीरे-धीरे हँस रहा है। नहीं, यह माँ नहीं हो सकती। माँ को जब कभी फिट आता है, तब केवल उनके दाँत कटकटाते हैं। मैंने उन्हें इतने विचित्र ढंग से हँसते हुए कभी नहीं सुना। फिर भी मैं जानता था कि यह माँ की ही आवाज है–मैं आगे कुछ भी नहीं सुन पाता–लगता है मानो कमरे का अँधेरा कमरे से अलग होकर एक मैले चीथड़े की तरह मेरी आँखों के चारों ओर घूम रहा है। संगमरमर-सी सफेद दो बाँहें काली झील से ऊपर उठी हैं–कातर-सी होकर मुझे बुलाती हैं–बार-बार अपनी ओर खींचती हैं।

उस रात देर तक मैं बिस्तर पर बैठा-बैठा काँपता रहा। एक अजीब-सी आवाज हवा के संग खिड़की से भीतर आती थी और मेरे चेहरे को छूती-सहलाती धीरे-धीरे हँसने लगती थी।

बानो टैरेस के नीचे गिरी हुई खूबानियाँ बीन रही है।

बानो ...

मैं हौले से कहता हूँ ... बानो।

शिमले की एक दुपहर–जब मैं टैरेस पर लेटा हूँ–बीमारी के बाद के दिन हैं, जब हमें कोई

नहीं पूछता। सब निश्चिन्त से हो गये हैं, बाबू अब मेरे कमरे में हर शाम नहीं आते, बीरेन चाचा एक लम्बे अर्से से दिखायी नहीं दिये। मेरे ठीक होने पर अगर दुख है तो शायद बानो को—मैं अगर बीमार बना रहता, तो दिल्ली जाने के दिन टलते रहते।

टैरेस के पीछे दो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ खुली हुई कैंची की तरह आकाश की ओर उठी है—उनके बीच पेड़ों की लम्बी श्रृंखला दूर तक चली गयी है। जब कभी कालका जानेवाली ट्रेन वहाँ से गुजरती है, तो धुएँ की एक लट आकाश के चेहरे पर उड़ जाती है।

बानो··· हम दिल्ली जा रहे हैं।

दिल्ली ! इस एक शब्द में कितनी स्मृतियाँ छिपी हैं— शिमला-कालका का साँप-सी बल खाती टेढ़ी-मेढ़ी लाइन, लम्बी-लम्बी अँधेरी सुरंगें और रेल के डिब्बे की खिड़की से बाहर हवा में फिसलती तारें··· शाम हो जाती और मैं ऊँघ जाता। माँ कन्धा झकझोरकर जगातीं, "बच्ची, उठो !" मैं हड़बड़ाकर बैठता। बाहर अँधेरे मैदान में दूर-दूर तक कालका की झिलमिल-झिलमिल-सी रोशनियों को देखकर लगता मानो ढेर से तारे आकाश से उतरकर जमीन पर बिखर गये हों···

बानो सीढ़ियाँ चढ़कर कब टैरेस पर आ गयी, मुझे पता नहीं लगा। उसने अपनी फ्रॉक को ऊपर उठाकर झोला बना लिया है, जिसमें ठसाठस खूबानियाँ भरी हैं। नंगे पेट के चारों ओर जाँघिये के नेफे के निशान जहाँ-तहाँ छोटी-छोटी मछलियों से उभर आये हैं।

वह फ्रॉक नीची करके खूबानियाँ बिखेर देती है—कच्ची, पक्की खूबानियाँ हैं, हरी, पीली, कुछ-कुछ लाल···

"लो खाओ।" वह एक पकी हुई पीले रंग की खूबानी मेरे आगे कर देती है।

मैंने सिर हिला दिया। बाबू ने बाहर की कोई भी चीज खाने से मना किया है।

"यह कच्ची नहीं है, इससे कुछ नहीं होगा," किन्तु उसने मेरी स्वीकृति की प्रतीक्षा नहीं की और जो खूबानी वह मुझे दे रही थी, उसे निश्चिन्त होकर खुद खाने लगी।

खाने को खूबानी खा लेता, बाबू का तो बहाना है। असली कारण दूसरा है, जो कोई नहीं जानता, बानो बेचारी तो बिल्कुल नहीं जानती। जब से बुखार उतरा है, मुझे लगता है, जैसे मैं सब लोगों से भिन्न हूँ, अलग हूँ। कमजोरी के कारण जब कभी सिर चकराता है, पाँव काँपते हैं तो अच्छा लगता है, मन में अजीब-सी खुशी होती है, अपने पर गर्व होता है, लगता है मुझमें एक अद्‌भुत परिवर्तन हो गया है और मैं असाधारण हूँ। पहले—बीमारी से पहले, माँ के मौसी के घर जाने से पहले—मेरा अपना घेरा था, जिसमें बानो और माँ, बीरेन चाचा और बाबू सब कोई थे। न मालूम, बीमारी के इस लम्बे अर्से में कौन-सा क्षण आया था, जब यह घेरा टूट गया था। पिछले कुछ दिनों से मैं जिस चीज को जैसे देखता हूँ, वैसे शायद कोई नहीं देखता। पहले मैं हर चीज को दूसरों की आँखों से देखता था—और निश्चिन्तता थी। अब उनके पीछे एक रहस्य है, डर है जो मेरा अपना है, और जिसे कोई नहीं जानता।

टैरेस के पास पवेलियन की छत पर खटखटाहट होती है। लगता है जैसे टपाटप बूँदें गिर रही हों। मैं जंगले के बाहर हाथ निकालकर देखता हूँ–बारिश नहीं है, केवल कुछ पहाड़ी चिड़ियाँ हैं जो छत पर एक कोने सं दूसरे कोने तक फुदक-फुदककर उड़ती हैं।

बानो खूबानी को गाल के भीतर लट्टू की तरह घुमाती है– उसका कहना है कि इस तरह मुँह का सारा थूक खूबानी के भीतर जाकर रस बन जाता है।

"दिल्ली जाना पक्का हो गया ?"

"माँ आ जायें, तब !"

"कहाँ गयी हैं तुम्हारी माँ ?"

"मौसी के घर।"

"तुम्हें पक्का मालूम है कि वह मौसी के घर गयी हैं ?" बानो ने रहस्य-भरी आँखों से मेरी ओर देखा।

मैं विस्मय से बानो की ओर देखता हूँ–"क्या बात है बानो ?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही पूछा था," बानो ने थूक में भीगी खूबानी को होंठों पर रगड़ते हुए कहा।

"अम्मी ने मना किया है–कहा है तुमसे कुछ न कहूँ।"

मैं चुपचाप लापरवाही से मुस्कराता हूँ। बानो पर मुझे बेहद गुस्सा है। मुझे जब बहुत गुस्सा आता है, तो मैं हमेशा मुस्कराता हूँ ताकि कोई यह न समझे कि मेरा मन इतना कच्चा और छोटा है।

सुर्मई रंग के बादल नीचे झुके आ रहे हैं। टैरेस के पीछे पहाड़ियाँ काली, भूरी-सी हो गयी हैं। जब कभी बादलों की ओर से सूरज का मुँह बाहर निकलता है, तो पतली-दुबली छायाएँ पूर्व से पश्चिम की ओर भागने लगती हैं।

टैरेस पर–चारों ओर आस-पास अब सन्नाटा है। बरसों पहले एक मेम यहाँ रहती थी। उसके मर जाने के बाद अब यहाँ कोई नहीं रहता बारहों महीने–गर्मी, सर्दी–कमरे बन्द रहते हैं, बरामदा और उसके आगे लम्बा गलियारा सूना पड़ा रहता है। हम गेस्ट हाउस के पिछवाड़े सीढ़ियाँ चढ़कर पवेलियन पर चोरी-चुपके चले जाते हैं और वहीं एक कोने में अपने अलूचे और खूबानियों का खजाना जमा करते हैं।

कौन-सी बात है, जो बानो मुझसे छिपा रही है, क्या सचमुच उसकी अम्मी ने मना किया है, या वह सिर्फ मुझे चिढ़ाने के लिए बहका रही है।

मैं टैरेस पर लेटे-लेटे अधमुँदी आँखों से अपने घर की छत देखता हूँ। दायीं ओर छज्जे के सिरे पर माँ के कमरे की खिड़की दिखायी देती है–माँ जब घर में नहीं होतीं, तो वह हमेशा बन्द रहती है। वह अभी तक वापिस क्यों नहीं लौटीं ? मौसी के घर वह इतने दिन कभी नहीं रही थीं। क्या वह जानती हैं कि मैं अब चल-फिर लेता हूँ और बाबू ने मुझे अब यहाँ–मेम के मुतहे

मकान तक आने की अनुमति दे दी है?

उस रात से मैंने उन्हें नहीं देखा जब वह चीखती हुई मेरे दरवाजे तक आयी थीं और बाबू ने उन्हें भीतर आने से रोक दिया था। मैं निश्चय नहीं कर पाता कि क्या ऐसा सचमुच हुआ था, या मैंने सिर्फ कोई सपना देखा है।

"दिल्ली पहाड़ों के ऊपर है या नीचे?" बानो ने पूछा।

"दिल्ली मैदान में है—वहाँ जाने के लिए नीचे उतरना पड़ता है," मैंने सुनी-सुनायी बात बड़े गर्व से कह दी।

बानो ने अविश्वास-भरी दृष्टि से मुझे देखा।

"नीचे तो ऐननडेल का मैदान है और उसके नीचे खड्ड है—दिल्ली क्या खड्ड के नीचे है?"

बानो कभी दिल्ली नहीं गयी, मुझे उस पर हमेशा तरस आता है। मैं उसकी जिज्ञासा को शान्त करने का कोई प्रयत्न नहीं करता, और लापरवाही से सिर फेर लेता हूँ।

बानो ने खूबानियों की गुठलियाँ पवेलियन के पीछे गेस्ट-रूम में फेंक दीं और वहीं कुछ देर तक दरवाजे से सटकर खड़ी रही।

हवा से खूबानी के पेड़ की शाखाएँ छतों पर झुकती हैं। खूबानियाँ झरती हैं—कुछ जमीन पर, कुछ पवेलियन की छत पर—खट-खट...

दुपहर और शाम के बीच सारा शिमला चुप हो जाता है, बस केवल खूबानियों की खट-खट आवाज पहाड़ी हवा में गूँजती है...

बानो ने हाथ के इशारे से मुझे अपने पास बुलाया है। गेस्ट-रूम के दरवाजे का एक शीशा टूटा हुआ था, उसी में अपना सिर डालकर वह कमरे के भीतर झाँक रही थी। उसके सिर के ऊपर जो जरा-सी खाली जगह बच गयी थी, वहीं मैंने खींचतान करके अपना सिर अड़ा दिया।

कमरा बिल्कुल खाली था। दीवार के बेल-बूटेदार कागजों का रंग फीका पड़ गया था। छत के एक कोने में मकड़ी का जाला धीरे-धीरे फैल रहा था। बासी हवा की गन्ध चारों ओर फैली थी। फर्श के बीचोबीच मैली-सी रोशनी जम गयी थी, जो कभी पीली हो जाती थी, कभी फीकी-फीकी-सी सफेद। कमरे के धुँधलके में यह सफेद धब्बा बड़ा अजीब और भयावह-सा लग रहा था।

"वह मेम यहाँ रहती होगी।" बानो ने धीमे स्वर में कहा।

"और शायद यहीं मरी होगी।" मैंने कहा, और मेरे सारे शरीर में एक हल्की-सी झुरझुरी फैल गयी। मुझे लगा, सामने दीवार के कटे-फटे, उखड़े पलस्तर पर एक बेडौल-सा चेहरा उभर आया है—जिसके जबड़े खुले हैं, फटी-फटी-सी आँखें हैं और जो मेरी ओर देखता हुआ हँस रहा है। मुझे लगता है कि वह चेहरा उस मेम का रहा होगा जो बरसों-पहले उस कमरे में न जाने क्यों अपने-आप मर गयी थी... और वह हँसी, उस रात जैसे दरवाजे के पीछे माँ हँस रही थीं...

टूटे हुए शीशे के भीतर झाँकता हुआ मेरा चेहरा बानो के सिर पर टिका है। मेरे मुँह के

ज़रा नीचे बानो के अखरोटी रंग के बाल है, उन बालों की गन्ध पानी में भीगी मिट्टी की गन्ध से मिलती है। बालों के बीच छोटी-सी माँग है—माँ की माँग-जैसी, किन्तु माँ की माँग ज़रा लम्बी थी और हमेशा बहुत उदास दीखती थीं।

"बानो···" मेरे होंठों पर सफेद कागज-सा थूक जम गया।

"क्या ?"

"अम्मी ने क्या तुमसे माँ के बारे में कुछ कहा था ?"

"तुमसे क्या ?" बानो ने ढीठ बनकर कहा।

हवा चलने से सूने, खाली मकान के दरवाजे खड़खड़ा उठते हैं। फर्श पर सिमटा हुआ सफेद धब्बा धीरे-धीरे सरक रहा है।

"बानो··· जब मैं बीमार था, तो कभी-कभी बड़ा अजीब-सा लगता था···"

"कैसा··· बच्ची ?"

"लगता था जैसे मैं भी माँ की तरह हूँ— जैसे उनकी कोई बात मुझमें भी है।"

"कैसी बात ?"

"जिसे सब छिपाते हैं।"

बानो का सिर सिहर जाता है।

"एक सफेद छाया है बानो—जैसे बर्फ से लिपटी हो। वह अँधेरे में भी चमकती है और संगमरमर से सफेद उसके हाथ हैं, जो हमेशा हवा में खुले रहते हैं। कभी-कभी मुझे लगता है कि पीछे से चुपचाप आकर उसने मुझे अपने में ओढ़ लिया है, और मैं अपने से ही अलग हो गया हूँ—सच बानो—लगता है जैसे मैं अपने से ही अलग हो गया हूँ···"

मुझे लगा कि बानो पत्ते-सी काँप रही है, भय से उसकी आँखें फैल गयी हैं।

मैं हँसने लगता हूँ।

"डर गयी बानो··· ?"

बानो चुप है, उसकी गर्म साँस मेरे सूखे होंठों को छूती है।

"बानो सच—मैं तुम्हें बहका रहा था—जो मैंने कहा वह बिल्कुल झूठ है।" बानो कुछ नहीं कहती, वह दरवाजे को छोड़कर तेजी से टैरेस की सीढ़ियाँ उतरने लगती है।

"बानो···" मैंने एक-दो बार उसे बुलाया, किन्तु उसने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

बूँदें आती हैं, पवेलियन की छत टप-टप करती है··· और मैं समझ नहीं पाता कि मेरे गालों पर जो बूँदें हैं, वे बादलों से आयी हैं—या पहले से ही वहाँ थीं···

घर का सामान बाँधा जा चुका है। सन्दूकों, थैलों और बिस्तरों पर लेबल चिपकाये जा रहे हैं जिन पर मोटी-मोटी सुर्खियों में 'शिमला-दिल्ली' और उसके नीचे बाबू का नाम लिखा है। घर

में बड़ी चहल-पहल मची है—नौकर, जमादार, कुली और बाबू के दफ्तर के चपरासी सब इधर से उधर भागते हुए दिखायी देते हैं।

माँ ऊपरवाले कमरे में हैं। वह इस बार कुछ काम नहीं कर रहीं—उनकी तबीयत शायद ठीक नहीं है, बाबू ने मुझे उनके पास जाने से मना किया है। जब से वह मौसी के घर से आयी हैं, मैंने उन्हें नहीं देखा, वह शायद रात को आयी थीं, जब मैं सो रहा था।

सब अपने काम में जुटे थे। मैं ही अकेला एक ऐसा था जिसे कोई काम नहीं था। कभी छज्जे में जाता था, कभी बरामदे में, किन्तु हर जगह अपनी व्यर्थता महसूस होती थी। खाली-खाली से कमरे, नंगी दीवारें, कोनों में कूड़े के ढेर ... मेरा दम घुटने-सा लगा और मैं बाबू की आँख बचाकर बाहर चला आया।

पगडण्डी से उतरकर मैं खड्ड के ऊपर नाले के किनारे-किनारे चलने लगा। कभी-कभी खड्ड के भीतर कोई बड़ा, मोटा-सा गेला मिल जाता तो उसे उठाकर जेब में रख लेता। रेल की खिड़की से मैं इन गेलों को छोटे-छोटे तालाबों में फेंका करता था। जब दोनों जेबें भर चुकीं तो देखा कि मैं घर से काफी दूर निकल आया हूँ। सूरज ढलने लगा था हालाँकि दूर की पहाड़ियों पर धूप अब भी थकी-माँदी-सी रेंग रही थी। मैं बीच रास्ते में मुड़ गया और एक छोटी-सी पगडण्डी से घर की ओर चलने लगा।

कुछ दूर चला हूँगा कि अचानक पाँव ठिठक गये। दायीं ओर नीचे की तरफ बीरेन चाचा की काटेज दिखायी दे रही थी। पेड़ों के झुरमुट में चारों ओर झार-झंखाड़ से घिरे उस घर को देखकर मुझे सहसा वह शाम याद आ गयी जब मैं माँ के संग यहाँ आया था। माँ भूली-सी, खोयी-सी नीचे देख रही थीं, और मैं चुपचाप उनके पीछे खड़ा था। जब से माँ मौसी के घर गयी थीं, बीरेन चाचा हमारे घर नहीं आये थे। एक बार उनके बारे में बाबू से पूछा था, किन्तु बाबू का चेहरा इतना कठोर, इतना भावहीन-सा हो आया था कि आगे उनसे कुछ भी पूछने का साहस नहीं हुआ।

ढलती धूप में कॉटेज की ढलुआँ छत लाल चमक रही थी। मैं धीरे-धीरे सड़क के किनारे लगी तार के संग नीचे उतरने लगा।

फाटक खुला है। मैं दबे कदमों से भीतर चला आया हूँ। हवा आती है तो लॉन की घास पर छोटी-बड़ी सलवटें पड़ जाती हैं, झाड़ियों की सरसराहट आस-पास की नीरवता को और भी अधिक घनी बना जाती है। लॉन के किनारे वही पत्थर का बेंच है, जहाँ उस दिन माँ बैठी थीं।

सोचता हूँ वापिस लौट जाऊँ, लेकिन पाँव बजरी की सड़क पर बँधे से खड़े रह जाते हैं।

दरवाजा खटकाता हूँ—धीरे-धीरे। "बीरेन चाचा ... बीरेन चाचा"—मुझे अपनी आवाज उस अकेली, निस्तब्ध काटेज में गूँजती-सी सुनायी देती है। लगता है यह कोई अजनबी आवाज है, जो मेरी आवाज के पीछे-पीछे दौड़ रही है।

"बच्ची, भीतर आ जाओ, दरवाजा खुला है।" बीरेन चाचा का स्वर सुनायी दिया।

मेरे पाँव देहरी के भीतर जाते ही एक क्षण के लिए रुक गये हैं, टेबल लैम्प का मद्धिम-सा प्रकाश मेज पर बिखरे कागजों, किताबों पर गिर रहा है। एक-दो मिनट तक मैं बेवकूफ-सा देहरी पर खड़ा रहा--और तब सहसा आभास हुआ कि कमरा खाली नहीं है, कोने में ईजी चेयर पर बीरेन चाचा बैठे हैं। जहाँ वह बैठे थे, वहाँ अँधेरा था, इसलिए कमरे में घुसते ही वह मुझे एकदम दिखायी नहीं पड़े थे।

उन्होंने मुझे अपने पलँग पर बैठने के लिए कहा और अपनी कुर्सी मेरे नजदीक खींच ली।

"इतनी दूर अकेले आये हो ?" उन्होंने मेरे हाथ को अपने हाथ में ले लिया और मुस्कराने लगे।

मेरी आँखें अनायास अपने निकट की फूली हुई जेबों पर टिक गयीं। संकोच से मेरा मुँह लाल हो गया।

"क्या भर रखा है इनमें–गेले है ?"

मैंने चुपचाप सिर हिला दिया।

"क्या करोगे इनका ?"

"रेल के लिए रखे है।" मैंने अटपटा-सा उत्तर दे दिया।

"रेल के लिए ?" बीरेन चाचा की प्रश्न-भरी दृष्टि मुझ पर टिक गयी। और तब सहसा मुझे ख्याल आया कि बीरेन चाचा को कुछ भी नहीं मालूम है। मुझे भीतर-ही-भीतर बहुत खुशी हुई कि मैं पहला व्यक्ति हूँ जिससे उन्हें यह खबर मिलेगी।

"बीरेन चाचा–आज रात हम दिल्ली जा रहे हैं।"

वह कुछ देर तक अपलक मेरी ओर देखते रहे,मानो उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी। फिर वह कुर्सी से उठे और मेरी ओर कोई ध्यान दिये बिना खिड़की से बाहर देखने लगे।

कुछ देर तक कमरे में घुटा-घुटा-सा सन्नाटा छाया रहा। मुझे लगा मानो बीरेन चा ा को यह बात पहले से ही मालूम थी, तभी शायद उन्होंने कोई कौतूहल नहीं दिखाया।

तभी वह खिड़की से मुड़े। भूरी दाढ़ी के ऊपर उनकी नीली आँखें चमक रही थीं।

"तुमने उस दिन जो फोटो लिया था–वह धुल गया है··· देखोगे ?"

उन्होंने आलमारी से एक छोटा-सा लिफाफा निकालकर मेरे हाथ में रख दिया।

"तुम्हारा हाथ बहुत सधा हुआ है, फोटो बिल्कुल साफ आया है।"

मैंने फोटो निकाला और मुझे लगा मानो बहुत अर्से पहले की एक घड़ी–जिसे मैं बिल्कुल भूल चुका था–मेरी आँखों के सामने हू-ब-हू वैसी ही वापिस लौट आयी है।

छज्जे के पीछे जंगले पर माँ की साड़ी सूख रही है–उसके पीछे पहाड़ियों की धुँधली-सी रेखा है, बिजली के तार हैं, कोने में सिमटा आकाश का एक टुकड़ा है। आगे के हिस्से में बीरेन चाचा जंगले से सटे खड़े हैं। उनकी एक बाँह माँ की साड़ी से छू भर गयी है और माँ··· न जाने क्यों उनकी आँखें मुँद-सी गयी है, दोनों होंठ मरी हुई तितली के परों के समान अधखुले रह गये

है, मानो वे कुछ कहते-कहते अचानक रुक गये हों।

मैं न जाने कितनी देर तक फोटो को निहारता रहा।

अचानक ध्यान आया कि मुझे बहुत देर हो गयी है। स्टेशन जाने का समय पास सरक आया था। बाबू देर से मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।

मैं झटपट पलँग से उतर आया।

"अच्छा बीरेन चाचा..." मुझसे आगे और कुछ नहीं कहा गया।

"बीरेन चाचा ने मुझे देखा—एकटक देखते रहे, फिर धीरे-से मेरे पास आये, अपने हाथों से मेरे बालों को छुआ और धीरे-से मेरे माथे को चूम लिया—बिल्कुल वैसे ही जैसे उस रात माँ ने मुझे चूमा था।

उन्होंने दरवाजा खोला और हम बाहर बरामदे में आ गये।

"मैं तुम्हारे संग चलूँ—तुम्हें डर तो नहीं लगेगा?"

मैंने सिर हिलाकर मना कर दिया, मुझे घर का रास्ता मालूम था।

कुछ देर तक हम बरामदे में चुपचाप खड़े रहे।

"बच्ची..." बीरेन चाचा का स्वर सुनकर मैं चौंक-सा गया। मैंने उनकी ओर देखा।

"माँ ने एक किताब माँगी थी—मुझे याद नहीं रहा—" वह झिझकते हुए चुप हो गये।

"आप मुझे दे दीजिए—मैं दे दूँगा।"

किताब देते हुए मुझे लगा मानो वह कुछ कहना चाह रहे हैं, किन्तु वह चुप रहे और मैं तेजी से फाटक की ओर चल पड़ा।

कॉटेज बहुत पीछे छूट गयी है। मैं एक सँकरी-सी सुनसान सड़क पर चल रहा हूँ। सामने पहाड़ी के ऊपर पेड़ों की एक लम्बी कतार चली गयी है। उसके पीछे डूबते सूरज की पीली, गुलाबी, सोनाली छायाएँ आकाश पर खिंच आयी हैं। चारों ओर एक हल्की, हरी-सी धुन्ध फैल गयी है। घर से कुछ दूर मैं लैम्प पोस्ट के नीचे खड़ा हो गया और किताब खोलकर देखने लगा।

मैंने देखा—पन्नों के बीच में वही फोटोवाला लिफाफा रखा था।

किताब बहुत पुरानी थी—आज भी उसके जर्द, भुरभुरे पन्ने याद आते हैं—फ्लाबेज लेटर्स टु जार्ज साँ।" उन दिनों न मैं फ्लाबे को जानता था, न जार्ज साँ को। बरसों बाद जब मैंने उसे पढा तो माँ नहीं थीं और बीरेन चाचा एक लम्बे अर्से से इटली में जाकर बस गये थे।

किन्तु उस दिन मेरे लिए उस पुस्तक का कोई महत्त्व नहीं था। उसे हाथ में लिये मैं देर तक अँधेरे में खड़ा रहा—अपने घर के ऊपरवाले कमरे की ओर देखता रहा।

माँ के कमरे की खिड़की बन्द थी, सफेद-पीली रोशनी खिड़की के शीशे पर बुझी-बुझी-सी झिलमिला रही थी।

वह शिमले में हमारी आखिरी शाम थी।

माया दर्पण

छज्जे पर भूरी, जलती रेत की परतें जम गयी है। हवा चलने पर अलसाये-से धूल-कण धूप में झिलमिल-से नाचते रहते हैं। लड़ाई के दिनों में जो बैरक बनाये गये थे, वे अब उखाड़े जा रहे हैं। रेत और मलबे के ढूह ऐसे खडे हैं, मानो कच्ची सड़क के माथे पर गोमड़े निकल आये हों।

खिड़की से सबकुछ दीखता है। दिन और शाम के बीच कितने विचित्र रंगों की छायाएँ टीलों पर फिसलती रहती हैं !

दूर से निरन्तर सुनायी देता है, पत्थर तोड़ने की मशीन का शोर, दैत्य के घुर्राटों की तरह ... घुर्र-घुर्र-घुर्र ...

दोपहर की नींद के कच्चे कगारों पर ये आवाज़ें लहरों-जैसी थप-थप टकराती है। ... तरन अकबकाकर जाग गयी। हाथ माथे पर गया तो लगा, पसीने की बूँदों पर बाल चिपक गये हैं, बिन्दी की रोली दोनों भौंहों के बीच फैल गयी है। उसे लगा, मानो वह अब तक जाग रही थी। सचमुच जागने पर पता चला था कि सोते समय भी वह यही बराबर सोच रही थी। दुपहर की नींद जो ठहरी, आधी आँखों में, आधी बाहर।

आँखें धोयीं, बिन्दी पोंछ दी, पम्प के पानी को चुल्लू में लेकर आँखों में छिड़का। गुसलखाने की खुली खिड़की से मैदान का वह हिस्सा दीखता था, जहाँ बैरकों को ढहाया जा रहा था। आधी टूटी इमारतें, सूखे-भग्न कंकालों-सी खड़ी थीं। सूखी रेत के कण तितीरी धूप में मोतियों-से झिलमिला उठते थे। तरन को लगा, मानो उसके दाँतों के भीतर भी रेत चरमरा रही हो।

– देख तो, तरन, बाबू उठ गये हों, तो हुक्का उनके कमरे में रख आ। – बुआ ने रसोई से सटी कोठरी से आवाज़ दी। इतनी उम्र में भी बुआ को सबकुछ याद रहता है। लगता है, जैसे उठते-बैठते, सोते-जागते उनकी चेतना की डोर बाबू की दिनचर्या से जुड़ी रहती है। अपनी कोठरी की देहरी पर ऊँघती रहती हैं बुआ, आसपास के कार्य-कलाप से सर्वथा निर्लिप्त। इस पर भी उन्हें बाबू की हर ज़रूरत का आभास कैसे हो जाता है, तरन के लिए यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।

शाम होते ही दीवान साहब अधीर आतुरता से मेहमानों की प्रतीक्षा करने लगते हैं। थोड़ी देर के लिए कुछ दूर छोटी लाइन के स्टेशन पर टहलने निकलते हैं, तो भी जल्दी वापस लौट आते हैं, ताकि कोई अचानक उनकी अनुपस्थिति में घर न आ जाये। आते ही बुआ से पूछते हैं कि उनके पीछे कोई आया तो नहीं था ? बुआ 'ह-न' के अलावा कोई उत्तर नहीं दे पातीं। बरसों बाद आज भी उन्हें दीवान साहब से विचित्र अज्ञात-सा भय लगा रहता है। छोटी थी, तो भी भाई के सामने सिर झुका रहता था, विधवा होने पर दीवान साहब ने कुछ रुपये महीने बाँध दिये थे। अब इस उम्र में, मालकिन के न रहने पर आयी हैं, वह भी इसलिए कि इतने बड़े घर में तरन अकेली है। तरन न होती तो क्षण-भर के लिए भी उनका इस उजाड़ अकेले घर में रहना दूभर हो जाता।

धूप मिटते ही बरामदे में जमघट लग जाता है। सरकारी सुपरवाइज़र मिस्टर दास से लेकर बड़े ठेकेदार मेहरचन्द तक काम खत्म होने पर दीवान साहब के बरामदे में कुछ देर के लिए सुस्ताने आ बैठते हैं। और है भी क्या इस उजाड़ बस्ती में, जहाँ दिन की थकान उतारी जा सके ? अहीरों के मिट्टी के झोंपड़े, इक्की-दुक्की पान-बीड़ी की दुकानें, ढाबे और ऊपर टीले पर काल-भैरव का मन्दिर। ले-देकर एक दीवान साहब का ही तो घर है, जहाँ दूर शहरों से आये प्रवासी भद्र लोग घड़ी-दो-घड़ी हँस-बोलकर जी हल्का कर लेते हैं।

– देख तो, तरन, ज़रा चिलम तो भर लाना दास बाबू के लिए। –दरवाजे की ओर मुँह मोड़कर बाबू ने कहा। उनके चेहरे की मुस्कान में अब ऊब का भाव डूबने लगा था। दास बाबू आये हैं, तो और लोग भी आते होंगे।

– आज़ इतनी देर कैसे हो गयी ? भोंपू तो कब का बज चुका।

दास बाबू का थुल-थुल गेंद-सा शरीर आरामकुर्सी में धँस गया। बोले, तो नकली पीले दाँत कटकटा गये – नहर-पार ज़मीन देखने गया था। वापस लौटते हुए नया पेट्रोल-पम्प देखने रुक गया। अब यहाँ पेट्रोल की दिक्कत नहीं रहेगी, दीवान साहब !

तरन भीतर से हुक्का लेकर आयी, तो दास बाबू सिमट गये अपने में। पचास से ऊपर उनकी उम्र लाँघ गयी है, किन्तु किसी स्त्री के सामने आज भी घबरा-से जाते हैं।

तरन के पाँव पीछे मुड़े, तो वह तनिक स्वस्थ हुए। गले को साफ़ किया, फिर भी जब बोले, तो आवाज़ खँखारती रही – कुछ दिनों के लिए हरिद्वार-ऋषिकेश क्यों नहीं घूम आते, दीवान साहब ? न हो, बिटिया का मन ही बहल जायेगा। दिन-रात अकेले में क्या ऊब नहीं जाती होगी ?

दास बाबू तरन का नाम नहीं ले पाते। वह ज़रा उम्र में छोटी होती, तो उसके सम्मुख इतना घना-सा संकोच न घिर आता ; ज़रा उम्र में छोटी होती, तो नाम सहज-स्वाभाविक हो जाता। किन्तु इन दो सीधी, स्पष्ट सीमाओं के बीच आयु की धुरी समय के जिस दलदल में फँसी रह गयी है, उम्र जहाँ न बढ़ती है, न घटती है, उसे क्या कहकर सम्बोधित करें, दास बाबू कभी समझ नहीं पाते।

·बाबू कुछ भी न कहकर चुप बैठे रहे। वह अपने इन मित्रों से हँस-बोल लेते हैं, यह बात और है ; किन्तु मन में हमेशा उन्हें अपने से छोटा समझते हैं। इतनी घनिष्ठता के बावजूद उन्होंने अपने और दूसरों के बीच कहीं एक लकीर खींच रखी है, जिसका उल्लंघन करने का दुस्साहस कोई भी नहीं कर पाता।

तरन के पाँव, जो दास बाबू की बात पर सहसा देहरी पर ठिठक गये थे, फिर आगे बढ़ गये। दूसरे कमरे में बुआ पुराने कपड़े सी रही थीं। उनकी आँख बचाकर वह अपने कमरे में चली आयी। दरवाज़ा बन्द करके भी देर तक दरवाज़े के आगे खड़ी रही। बरामदे की आवाज़ों को नहीं सुनती, सुनती है उस निर्भेद्य मौन कों, जो सारे घर में छाया है, जिसके भीतर ये आवाजें परायी, अपरिचित, भयावह-सी जान पड़ती हैं।

खिड़की से बरामदा दीखता है। जब किसी शाम बाबू के मित्र नहीं आते, तो वह अकेले आँखें मूँदे कुर्सी पर बैठे रहते हैं। ऐसे क्षणों में कितना गहन-सा मौन बाबू के इर्द-गिर्द घिर जाता है ! उसने कई बार सोचा है कि ऐसे में वह बरामदे में उनके पास जाकर बैठ जाये, इधर-उधर की बातें करे। आख़िर इस घर में अब वे दो ही तो रह गये हैं, जो विगत दिनों की स्मृतियों में एक-दूसरे के साझीदार हो सकें। किन्तु इतने पर भी कभी पाँव नहीं उठते, सिर्फ़ खिड़की से हीं वह चुपचाप उन्हें देखती रही है।

हवा चलती है, दुपहर-शाम, साँय-साँय। मैदानों के टीलों-ढूहों से मिट्टी, रेत के गरम रेले बार-बार दरवाज़े खटखटाते हैं और रास्ता न पाकर आँगन में बिखर जाते हैं।

कभी-कभी सड़क को समतल बनाने के लिए बारूद से चट्टानों को फोड़ा जाता। विस्फोट होते ही कँपकँपाता-सा धमाका होता, आर-पार धरती हिल जाती, दूर-दूर तक ख़तरे की लाल झण्डियाँ हवा में लहराती रहतीं।

ऊँघती हुई तरन अचानक अचकचाकर चौंक-सी गयी. मानो किसी ने झटका देकर उसे झिंझोड दिया हो। शाम का बुझा-बुझा-सा पीलापन चुपके-से सारे मैदान में फैल गया था।

बुआ कमरे में आयीं। उसे खिड़की के पास ऊँघते देखा, तो झिड़ककर कहा – कितनी बार कहा है, दोनों वक्त मिलते समय अँधेरे कमरे में नहीं बैठते। शम्भु को लेकर तनिक बाहर क्यों नहीं घूम आती ?

किन्तु उसी समय सीढ़ियों पर भारी पदचाप सुनायी दी। तरन की आँखें अनायास खिड़की की ओर उठ गयीं, इंजीनियर बाबू आये थे।

यह इंजीनियर बाबू भी अजीब हैं ! इस तरह धम-धम करते आते हैं कि सारा घर हिल उठता है।

चार-पाँच महीने पहले इधर सरकारी आर्किटेक्ट होकर आये थे, किन्तु यहाँ सब उन्हें 'इंजीनियर बाबू' के नाम से ही सम्बोधित करते हैं। उनकी चाल-ढाल और बातचीत से ऐसा जान पड़ता है, मानो बरसों से यहाँ रहते आये हों। वह बाबू के रोज़मर्रा आनेवाले मित्रों में नहीं हैं, बाबू के मित्र हैं, यह कहना भी कठिन है, शायद इसलिए कि उम्र में वह बाबू से आधे हैं और

कोशिश करने पर भी बाबू उनसे हँस-खुलकर बातचीत नहीं कर पाते।

तरन ने हड़बड़ाकर बालों को समेट लिया, दो-तीन बार जल्दी-जल्दी कंघी से उन्हें कहीं धीरे-से दबाया, कहीं हल्के-से उठाया। पाउडर लगाया तो आँखे फड़फड़ा उठीं। माँग के नीचे, माथे के बीचोबीच बिन्दी लगाते हुए तरन का हाथ क्षण-भर के लिए ठिठक-सा गया। सोचा, क्या यह भ्रम है ? न, अपने लिए उसे कोई भ्रम नहीं था। चेहरे का आकर्षण, चाहे जिसमें जैसा होता हो, वह जानती थी कि उसमें नहीं है। उसके लिए अब मन क्लान्त नहीं होता। बरसों पहले सड़क पर चलते हुए कोई उसकी ओर देखता, तो तन-मन सिहर उठता था। वह दौड़कर वापस आती थी, घण्टों आईने के सामने खड़ी रहती थी। क्या देखते हैं लोग उसमें ? यह प्रश्न कितना विचित्र था और इसका उत्तर पाने के लिए कितनी देर तक दिल धौंकनी की तरह चलता रहता था !

आज जब कभी लोग देखते हैं, तो उसे स्वयं अपने पर आश्चर्य होता है। लगता है, जैसे वह अपने को छोड़कर उसके संग मिल गयी है, उन्हीं की कौतूहल-भरी दृष्टी से अपने को देख रही है...

– आप अभी तक यहीं बैठी हैं ?

तरन एकाएक चौंक-सी गयी। दरवाज़े पर इंजीनियर बाबू खड़े थे।

– मैं अभी बरामदे में आ रही थी। आप चाय पी चुके ?

– चाय फिर किसी दिन पीने आऊँगा, जब आपको बरामदे में आने की फुरसत होगी !... इस वक्त तो झटपट घर पहुँचना है।

तरन ने उनके सामने चौकी रख दी।

– ठहरिए, कुछ खाकर जाइए ! अभी तो आप आये हैं !

तरन रसोई की ओर जाने लगी, किन्तु इंजीनियर बाबू ने उसे बीच में ही रोक दिया – देखिए, इस वक्त यह झंझट रहने दीजिए। अभी-अभी शहर से लौट रहा हूँ। रास्ते में धूल-गर्द खायी है, उससे बिल्कुल पेट भर गया है।

जब कभी इंजीनियर बाबू हँसते हैं, तरन को हमेशा यह महसूस होता है कि इस बस्ती के लोग चाहे आदर-भाव से उन्हें 'इंजीनियर बाबू' कहकर पुकारें, उम्र में वह उससे छोटे ही हैं। पहले-पहल जब उसने उन्हें दीवान साहब की मित्र-मण्डली के बीच बरामदे में देखा था, तो गहरा आश्चर्य हुआ था। इतने बड़े बुजुर्गों के बीच कॉलेज के छात्र-से दीखनेवाले यह इंजीनियर बाबू ठीक से फिट नहीं बैठते थे।

– आप उस तरफ़ आयीं नहीं, मोण्टू आपके बारे में रोज़ पूछता है।

मोण्टू इंजीनियर बाबू का नौकर है, जब कभी तरन रेलवे लाइन के पार टहलने जाती है, वह उसे हमेशा मिलता है।

– इस बार आऊँगी। आप रहेंगे ?

– अगले हफ्ते आइयेगा। चार-पाँच दिन के लिए एकदम बहुत काम आ पड़ा है।

इंजीनियर बाबू जाने से पहले एक क्षण रुके, रूमाल से अपनी ऐनक का शीशा साफ़ किया।

तरन की आँखें चुपचाप ऊपर उठ गयीं और देर तक उसी रिक्त स्थान पर टिकी रहीं, जहाँ कुछ क्षण पहले इंजीनियर बाबू खड़े थे।

कैसे हैं यह इंजीनियर बाबू !··· खट-खट करके जब सीढ़ियाँ उतरते हैं तो सारा घर हिल उठता है।

खिड़की के परे रेलवे लाइन के ऊपर डूबता सूरज खून की लम्बी-सी रेखा खींच गया था। ऊँची-नीची चट्टानों के बीच मज़दूरों के खोखल, शाम की पीली धूप में छोटे-छोटे लकड़ी के बक्सों-से दिखायी देते थे। काली देवी के मन्दिर के आस-पास फीके गुलाबी धुएँ का बादल क्षण-प्रतिक्षण गाढ़ा होने लगा था।

तरन खिड़की से उठकर पलँग के पास चली आयी। अधलिखा पत्र तकिये के नीचे अब भी दबा था। सुबह से भाई को पत्र लिखने बैठी है, किन्तु अभी तक मुश्किल से पाँच-छः सतरें ही लिख सकी है। जब-जब लिखने की कोशिश करती है, भाई का चेहरा समय की बुझी-बासी परतों को काटता हुआ आँखों के सामने घूम जाता है – वह चेहरा नहीं, जो भाई बाबू से लड़कर घर छोड़ते समय अपने संग ले गये थे। उसकी तो विकृत, भयावह मुद्रा, इतने बरसों के बाद आज भी जब कभी याद आ जाती है, तो दिल काँप उठता है ;न, वह चेहरा नहीं, एक और शक्ल है, बहुत सादी, बहुत उदास··· तब माँ नहीं रही थी। शुरू से ही बाबू का इतना डर था कि जी भरकर रोने में भी झिझक होती थी। और तब भाई आये थे।···

– देखती नहीं तरन, बाबू कितने अकेले रह गये हैं !– उन्होंने काँपते होंठों से कहा था – हमें उनके संग रहना होगा।··· कुछ दिनों में फिर सबकुछ पहले-जैसा ही हो जायेगा।

और आज तरन सोचती है, कहाँ हो पाया सबकुछ पहले-जैसा ? उन दिनों वह काफ़ी छोटी थी। भाई क्यों चले गये और बाबू उन्हें क्यों नहीं रोक पाये, तब कुछ भी समझ में नहीं आया था। आज लगता है, माँ एक कड़ी थीं परिवार और बाबू के बीच, उनके जाते ही वे एक घर में रहते हुए भी सहसा एक-दूसरे के लिए अजनबी-से बन गये थे।

बुआ उसे भोजन के लिए बुलाने आयी। तरन के हाथ में कागज़ देखकर पूछा – क्या कोई चिट्ठी आयी है ?

– भाई को लिख रही थी। कल से उनका पत्र आया पड़ा है।

– क्या कुछ आने के लिए लिखा है ?

– लिखा है, कुछ दिनों के लिए मैं उनके पास चली जाऊँ··· क्यों बुआ, चली जाऊँ तो कैसा रहेगा ?

बुआ विस्मय से आँखें फाड़ते हुए तरन को देखती रही। इतनी दूर आसाम तरन अकेली

जायेगी, इसकी कल्पना करना भी पागलपन लगता है।

बहन के लिए इतनी मोह-ममता होती, तो इतने बरसों में क्या एक बार भी वह देखने नहीं आता ? – बुआ बोलीं – बाप से लड़ाई है, तो क्या सबसे किनारा कर लेना चाहिए ?

दमा के कारण बुआ से अधिक नहीं बोला जाता। जितने शब्द मुँह से बाहर निकलते हैं, उनसे कहीं ज़्यादा चढ़ती साँस के भँवर में डूब जाते हैं। बुआ की आँखों में आँसू देखकर तरन एकाएक निश्चय नहीं कर सकी कि वे उसके भाई के लिए हैं, अथवा खाँसी के कारण खुद-ब-खुद उमड़ आये हैं।

– तुम चलो बुआ, मैं अभी आती हूँ। – कमरे में बोझिल-सा सन्नाटा छा जाता है। बरामदे में चहलकदमी करते हुए बाबू की थकी, अनिश्चित-सी पदचाप सुनायी दे जाती है। खिड़की के बाहर मैदान के अँधेरे में मिट्टी के लम्बे-लम्बे ढूहों की पतली छायाएँ फीकी चाँदनी में उघड़ आयी हैं।

एक धुँधली-सी तस्वीर उभर आती है। ढलवाँ घाटियों पर दूर-दूर तक ऊपर-नीचे चाय के बाग फैले हैं ˙˙ इन्हीं बागों के बीच पेड़ों के झुरमुट के पीछे कहीं भाई रहते होंगे। कहते हैं, वहाँ स्टीमर पर जाना पड़ता है ˙˙˙ जाने स्टीमर पर बैठकर कैसा लगता होगा !

तरन उस छोटे-से स्टेशन के सिग्नल की बत्ती देखती रही। पास आती ट्रेन के पहियों की गड़गड़ाहट मकान की दीवारों, मैदान में दूर खड़े घट्टों और टीलों को झिंझोड़-सी जाती है। कुछ देर के लिए पत्थर तोड़ने की मशीन की भयावह घुर्र-घुर्र ट्रेन के पहियों-तले डूब जाती है। इंजन की हेडलाइट के घूमते प्रकाश-वृत्त में आस-पास खड़े झाड़-झंखाड़ झिलमिला उठते हैं ˙˙˙ और फिर वही पहले-जैसी घनी, बोझिल चुप्पी चारों ओर फैल जाती है।

उस रात बुआ तरन के कमरे में आयीं और देर तक बैठी रहीं। तरन की ओर कभी-कभी देख लेतीं और फिर एक लम्बी गहरी साँस लेकर सुपारी कतरने लगतीं।

– सो गयी, तरन ? – बुआ कभी-कभी शंकित स्वर में सिर उठाकर पूछ लेतीं।

– न बुआ, अभी नहीं।

तरन समझ जाती कि बुआ कोई बात शुरू करने से पहले रास्ता टटोल रही हैं। वह चुपचाप आँखें मूँदकर प्रतीक्षा करती रहती।

– आज तेरी माँ के कमरे में गयी थी, – बुआ कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोलीं –मैं तो देखकर हैरत में आ गयी, तरन -!˙ न जाने कितने बरसों से उसने ये सब चीज़ें जोड़-जोड़कर जमा की हैं ! उसने ब्याह की साड़ी तक सन्दूक में अभी तक सँभालकर रखी है।

तरन के मन में हल्का-सा कौतूहल जाग उठा, माँ का भी ब्याह हुआ होगा, इस पर कभी-कभी विश्वास नहीं होता।

– तेरे बाबू उन दिनों नये-नये दीवान बने थे। ˙˙˙ बड़ी धूमधाम से उनका ब्याह हुआ था।

सिखों के दरबार में एक वही तो हिन्दू दीवान थे, जो बेरोक-टोक राजा से मिलने जाया करते थे।

बुआ की आँखों में एक बहुत पुराना, कभी न मिटनेवाला सपना तिर आया, हाथ का सरौता चलते-चलते रुक गया – एक दिन रियासत के अंग्रेज़ रेज़िडेण्ट उनसे मिलने आये थे। मुहल्ले के सब लोग आश्चर्य में अपने-अपने घरों से निकलकर हमारे घर के सामने जमा हो गये थे। किन्तु तेरे बाबू अपने नेम-धर्म के इतने पक्के थे कि उनके जाने के बाद उन्होंने स्नान किया और सब बर्तनों को दुबारा धुलवाया था।

तरन उठकर पलँग पर बैठ गयी। कितनी बार उसने बुआ के मुँह से ये सब बातें सुनी हैं, किन्तु हर बार मन में नये सिरे से उत्सुक हो उठती है। लगता है, जैसे वह चोरी-चुपके, दबे पाँवों किसी विचित्र, मायावी प्रदेश में चली आयी है...

– बुआ, तुमने तो उन दिनों बाबू को देखा होगा। क्या तब भी तुम्हें उनसे आज की तरह डर लगता था?

– अरे, कौन नहीं डरता था तेरे बाबू से? – बुआ के होंठों पर एक म्लान महीन-सी मुस्कराहट सिमट आयी – उन दिनों का डर ही तो आज तक चला आता है।... तेरी माँ को तो मुझसे भी ज्यादा डर लगता था। वह तो बस टुकुर-टुकुर उन्हें देखती ही रहती थी। जिन दिन तेरे बाबू दरबार जाते थे, मैं और वह झरोखे में खड़े होकर लुक-छिपकर उन्हें देखा करती थीं। चूड़ीदार चमचमाता पाजामा, सफ़ेद रेशमी अचकन और सिर पर राजसी, प्याज़ी रंग की पगड़ी... हमारी आँखें उन पर से उठती ही न थीं।

बुआ के हाथ सरौते पर टिके रहे, आँखे शून्य के न जाने किस कोने में जाकर अटक गयीं।

– सोचती हूँ जब आज बाबू तेरे लिए ऊँची जात और बड़े घराने की बात चलाते हैं, तो क्या यह ठीक है? वह बात आज कहाँ रही, जो वर्षों पहले थी? आज अपनी कौन इज्ज़त रह गयी है, जो बड़े घर-घराने का लड़का मिले! लेकिन उन्हें यह बात समझाये कौन?

बुआ की आँखों में एक घना, अभेद्य-सा आश्चर्य घिर जाता है, मानो वह खुद न समझ पा रही हों कि जो नहीं रहा, आज भी कैसे जोंक की तरह चिपटा है। मान-गौरव नहीं रहा, ज़मीन-ज़ायदाद कब की बिक-लुट गयी, बाप-दादा की विरासत के नाम पर बचा रह गया है एक यह मकान और समय की धूल में लदा-फँदा फटे-चीथड़े-सा 'दीवान' का ख़िताब, जिसे चाहे ओढ़ लो, चाहे बिछा लो, पर जो नहीं है, उसे कोई कब तक मानेगा?

बुआ का कण्ठ भारी हो उठता है, आँखों के आगे गीला-सा झिलमिला तैर जाता है, किन्तु मुस्कराहट उनके होंठों पर तब भी जमी रहती है, मानो वह उसे मिटाना भूल गयी हों।

किन्तु तरन को बात का यह पहलू अब बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। अच्छा लगता था पहले, जब माँ हँसी-हँसी में वे गहने दिखाया करती थीं, जो उसे ब्याह पर दिये जायेंगे। तब हल्की-सी गुदगुदी होती, ब्याह के लिए नहीं, गहनों के लिए नहीं, बल्कि उस अजीब, अनजानी खुशी के लिए, जो उसकी अपनी थी, जिसमें वह बिल्कुल अकेली थी।

तरन फिर लेट गयी। खिड़की से सिग्नल की लाल बत्ती दीखती है, दूर अँधेरे में। नहर के पीछे बैरकें हैं, जिन पर रात चुपचाप झुक आयी है। इन्हीं बैरकों की किसी सँकरी अँधेरी कोठरी में इंजीनियर बाबू रहते होंगे, तरन ने सोचा और आँखे मूँद लीं।

उस पल उसे कुछ भी महसूस नहीं हुआ। यह भी याद नहीं रहा कि बुआ ने उससे कुछ कहा है। टाँगों पर एक हल्की मीठी-सी थकान उतर आयी। बरसों पहले की एक धुँधली-सी अनुभूति कहीं भीतर धीमे-से उमड़ आयी है। लगता है, जैसे वह टब के पानी में अपनी नंगी देह पसारे लेटी है। बीच में कुछ भी नहीं है, कोई घटना नहीं घटी है। जो बीता है, जो कुछ भी घटा-बढ़ा है, वह सब पानी के ऊपर है...

– सो गयी, तरन? – बुआ ने पूछा।

इस बार तरन स्वयं निश्चय नहीं कर सकी कि वह नींद के इस तरफ है या दूसरी तरफ़... पानी के ऊपर छायाएँ तिरती हैं, किन्तु उसके नीचे कितना ढेर-सा मौन बिखरा है...!"

फिर अनेक दिन ऐसे आते हैं, जब दीवान साहब अपने कमरे से बाहर नहीं निकलते। बरामदा सूना पड़ा रहता। ख़ाली कुर्सियों पर सूखी गरम रेत और चूने की परतें इकट्ठी होती रहतीं। बुआ कई बार बाबू के कमरे तक गयी हैं और चुपचाप वापस लौट आयी हैं। खाना भी वह अपने कमरे में मँगवा लेते। आते-जाते कभी सामने पड़ जाती थी, तो देखते भी नहीं, देख भी लेते तो इस तरह से मानो उसे पहचान पाने में दुबिधा हो रही हो। उनकी कोशिश यही रहती कि जहाँ वह बैठी हो, वहाँ न जाना हो, अकस्मात् मुठभेड़ भी हो जाये, तो दूसरी तरफ़ देखने लगें, या रास्ता बचाकर निकल जायें।

तरन समझती है, बाबू उससे दूर-दूर क्यों रहने लगे हैं, क्यों घर में तनाव रहने लगा है। पहले, बहुत दिन गुस्सा आता था... अब वह भी नहीं आता, केवल रूखी-सी रिक्तता मन में भर जाती है। कभी-कभी वह सोचती है कि यदि बाबू को उससे इतनी विरक्ति है, तो क्यों नहीं उससे छुटकारा पा लेते? कई बार बुआ ने ज़ोर डालकर बाबू से पत्र लिखवाये हैं, बातचीत आगे भी बढ़ी है, उसकी फोटो और जन्म-पत्री बाहर भेजी गयी है, किन्तु हर बार बीच में ही सबकुछ रुक जाता है, क्यों रुक जाता है, आज तक तरन की समझ में नहीं आया है...

आज भी तरन जब उस रात की घटना पर सोचती है, तो सारी देह में झुरझुरी-सी दौड़ जाती है...

उस रोज आधी रात से कुछ पहले बुआ उसके कमरे में आयी थीं। वह जाग रही थी। अँधेरे में बुआ की पदचाप धीरे-धीरे उसके पलँग के पास सरकती सुनायी दी थी। वह साँस रोके लेटी रही थी।

– बुआ, तुम हो?

बुआ का स्वर काँप रहा था – तूने कुछ सुना?

तरन उठकर बैठ गयी। आँखे फाड़ते हुए अँधेरे में धुएँ की काली छाया को देखा।

– क्या बात है, बुआ ?

– मुझसे अब इस घर में नहीं रहा जायेगा।

– क्या बात है, बुआ ?

– कहना अब कुछ बाकी रहा है, तरन ? – बुआ का गला रुँध-सा-गया।

तरन स्तब्ध आँखों से अँधेरे के उस भाग को देखती रही, जहाँ बुआ खड़ी थीं।

– तुमसे कुछ बात हुई थी ? – तरन ने पूछा।

– मैं तो कमरे में ही बैठी रही थी, वह खुद आये थे।˙˙˙ मैं कहती हूँ कि जो कुछ उन्हें कहना है, तुझसे क्यों नहीं कहते ?˙˙˙ तू अब बच्ची तो नहीं रही˙˙˙ नाहक मुझे बीच में क्यों घसीटते हैं ?

– क्या कहते थे, बुआ ? – तरन के स्वर में एक अजीब-सा खोखलापन उभर आया।

– उनकी बात मुझे कुछ समझ में नहीं आती।˙˙˙ कहते थे, माँ के सामने सबकुछ हो जाता, तो ठीक रहता। फिर देर तक चुपचाप कमरे में घूमते रहे।˙˙˙ मैंने मौका देखकर कहा कि ऊँचे खानदान को लेकर आजकल कौन बैठा रहता है ? अच्छा लड़का मिले तो सबकुछ है। लेकिन मेरी बात सुनते ही वह एक मिनट भी कमरे में नहीं ठहरे। तेजी से अपने कमरे में गये और फटाक से दरवाज़ा बन्द कर लिया। कुछ देर बाद जब बाहर आये, तो एकाएक उन्हें पहचान नहीं सकी। आँखें सुर्ख हो रही थीं, माथे पर बाल बिखरे थे, तेरी माँ के मरने के बाद मैंने उन्हें कभी इस रूप में नहीं देखा। हाथ में एक पोटली थी, जो उन्होंने मेरे सामने फेंक दी˙˙˙

- इसकी माँ के गहने इसमें रखे हैं, इन्हें लेकर वह जहाँ जाना चाहे, चली जाये। लड़का चला गया, तो मर नहीं गया ; यह चली जायेगी, तो भी मुझे कुछ नहीं होगा।˙˙˙ मैं तो भौचक्की रह गयी, तरन ! क्या अपनी लड़की के लिए कोई ऐसे कहता है ?

उस रात बुआ का प्रश्न अँधेरे में भटकता रहा था। वह कुछ भी नहीं समझ पायी थी कि बाबू उससे क्या चाहते हैं। उसे अपने से ही डर लगने लगा था। लगा, जैसे बाबू को उस पर सन्देह है, मानो वह भी भाई की तरह किसी-न-किसी दिन उन्हें धोखा देकर चली जायेगी।˙˙˙ पहले उसने कभी ऐसा नहीं सोचा था, किन्तु उस रात बाबू के सन्देह ने उसके मन को भी अस्थिर कर दिया। क्या सचमुच वह इस घर में रहना चाहती है ? उसने बार-बार अपने से पूछा था और उसे लगा था कि शायद बाबू का सन्देह सही हो, शायद उसे उस घर से, घर के साँय-साँय करते कमरों से डर लगता है, जिसे आज तक वह छिपाती आयी है – क्या यह सच है ?

यह कैसा प्रश्न था, सीधा-सादा सहज, किन्तु उन हजारों प्रश्नों में एक, जिनका शायद कोई उत्तर नहीं होता, तरन यह नहीं जानती थी और तभी वह रात-भर तकिये में मुँह छिपाकर थर-थर काँपती रही थी।

उस रात तरन ने अचानक निश्चय कर लिया कि वह कुछ दिनों के लिए भाई के पास जाकर रहेगी...

दूसरे दिन तरन चाहने पर भी बाबू से अपने जाने की बात कहने का साहस न कर पायी। कई बार उनके कमरे तक गयी, किन्तु बिना कुछ कहे-सुने उल्टे पाँव वापस लौट आयी। उसे बाबू से एक विचित्र-सा भय लगता था, जिसे मिटाना कभी सम्भव नहीं हो पाता। उसने बुआ से कहा कि वह बाबू से जाकर कह दे।

बुआ विस्मित-सी उसकी ओर देखती रही थीं। किन्तु बाद में जब उन्होंने उस पर विचार किया, तो लगा कि शायद तरन का चले जाना ही बेहतर है।

उस शाम बाबू ने उसे अपने कमरे में बुलाया था। दरवाजे की देहरी पर तरन के पाँव सहसा ठिठक गये थे, साँस घुटने-सी लगी थी।

– आ जाओ, इधर बैठो। – बाबू का भारी, धीमा-सा स्वर सुनायी दिया।

दीवार के संग तकिये का सहारा लेकर बाबू बैठे थे, चुप, निश्चल। एक बार विचार आया कि जैसे वह दबे पाँव आयी है, वैसे ही वापस लौट जाये, किन्तु उसके पाँव फ़र्श से चिपके रहे।

– सुना है, तुम कुछ दिनों के लिए बाहर जाना चाहती हो।

तरन चुपचाप बैठी रही। उसे लगा, मानो बाबू भाई का नाम उसके सामने नहीं लेना चाहते, उसने कभी बाबू के मुँह से भाई की चर्चा नहीं सुनी। जब कभी उनकी चिट्ठी आती है, बाबू बिना पढ़े उसे उनके पास भिजवा देते हैं।

– यहाँ मन नहीं लगता, तरन ? – बाबू के स्वर में एक निरीह, अबोध-सी जिज्ञासा थी, मानो उन्होंने पहली बार इस सम्बन्ध में सोचा हो।

तरन की आँखें एक पल के लिए ऊपर उठीं। उसके भीतर एक अजीब-सी उथल-पुथल होने लगी। शायद बाबू उसे रोक लेंगे, शायद उसके बिना उन्हें भी अकेलापन महसूस होता होगा। उसका दिल तेजी से धड़कने लगा। यदि एक बार भी बाबू उसे रुकने के लिए कहेंगे, तो वह एकदम अपना इरादा बदल देगी। फिर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

किन्तु बाबू चुप बैठे रहे। तरन की आँखें नीचे झुक गयीं। कमरे की नीरवता फिर बोझिल-सी बन आयी।

– अच्छा है, जाना चाहती हो, तो चली जाओ।... मेरी ओर से चिन्ता मत करना। – बाबू का स्वर बिल्कुल स्थिर और भावहीन था।

कमरे से बाहर जाते हुए तरन के पाँव एक बार देहरी पर ठिठके थे, सोचा था, शायद बाबू कुछ कहेंगे, किन्तु कमरे में सन्नाटा घिरा रहा...

शायद कुछ भी कहना शेष नहीं रहा था। उस दुपहर तरन अपने कमरे में ही लेटी रही। इतने दिनों से अगर कोई एक इच्छा होती है, तो यही कि जब इच्छा करे, तभी, उसी क्षण नींद आ जाये। कभी-कभी तो लगता है कि इतने बरसों में जागने के, आँखें खोलकर चारों ओर

देखने के जो क्षण आये हैं, वे भी जैसे ग़लत हों, अवास्तविक हों ;लगता है, जैसे वे भी पूरी तरह से उसके पास न आये हों, नींद की ड्योढ़ी पर खड़े-खड़े वापस लौट गये हों।

शाम को तरन अपने कमरे से बाहर आयी। दुपहर-भर लेटे रहने के कारण शरीर भारी लग रहा था। बाहर दिन-भर रेत उड़ी थी, आकाश पर पीली, मटियाली धूल की तहें जम-सी गयी थीं। मैदान के चारों ओर टीलों और मिट्टी के ढूहों पर फीकी, बुझी-बुझी-सी धूप चमक रही थी। तरन ने देखा, बाबू अभी बरामदे में नहीं आये हैं। उनके कमरे का दरवाजा अब भी बन्द पड़ा था।

बुआ अपनी कोठरी में खाँस रही थीं और मन-ही-मन कुछ बुड़बुड़ाती जाती थीं। जब कभी हवा का झोंका आता था, उस सूने मकान के दरवाजे खटखटा उठते थे...

तरन ने जल्दी-जल्दी चप्पल पहनी। भीतर बुआ से कह आयी कि वह कुछ देर टहलने के लिए बाहर जा रही है। न जाने बुआ ने उसकी बात सुनी या नहीं, सीढ़ियाँ उतरते हुए भी तरन को उनकी खाँसी का खँखराता स्वर सुनायी दे जाता था।

दूर-दूर तक रेतीली ज़मीन फैली थी। अस्त होने से पहले सूरज की पीली किरणें कच्चे सोने की-सी रेत पर बिखर गयी थीं। नयी सड़क के दोनों ओर रोड़ी-पत्थरों के ढेर छोटे-छोटे पिरामिड-जैसे खड़े थे। उन्हीं के संग-संग चलती हुई तरन पानी के टैंक तक पहुँच गयी थी।

सबकुछ कितना दूर और फिर भी कितना अपना था, तरन ने सोचा। कितने वर्षों से वह इन्हें देखती आयी है ! लड़ाई के दिनों में जब बैरक बनाये जा रहे थे, और मिलिट्री ट्रकें गर्द उड़ाती हुई जब शहर से आती थीं, तब भी वह यहाँ थी, आज...बरसों बाद जब भीमकाय चट्टानों को तोड़कर नयी सड़क खोदी जा रही है, बैरकों को ढाया जा रहा है, यह भी वह सुबह-शाम कमरे की खिड़की से देखती आयी है...

तरन को यह सोचकर हल्की-सी खुशी हुई कि अब कुछ दिनों के लिए वह इनसे छुटकारा पा लेगी। उसे लगा, मानो उसके भीतर का तनाव बह गया है, और जब उसने दूर से कच्ची सड़क पर इंजीनियर बाबू को आते देखा, तो वह बिना मुस्कुराये न रह सकी।

इंजीनियर बाबू टैंक के पास आकर रुक गये। उनके सिर पर सोला हैट धूप में चमक रहा था, कमीज़ की बाँहें ऊपर चढ़ी थीं, जिनके नीचे नंगी बाँहों के बाल धूल-रेत में सने थे। गले के बटन खुले थे और गले के निचले हिस्से पर पसीने की दो-चार बूँदें दिखायी दे जाती थीं। उनके हाथ में एक लम्बा-चौड़ा-सा बोर्ड था। ऐनक के पीछे आँखें वैसी ही चंचल, बेचैन, किन्तु निहायत गम्भीर दिखायी देती थीं।

—आप यहाँ कैसे खड़ी हैं ?

—यों ही ज़रा टहलने की सोच रही थी। घर में तो उमस के मारे बैठा नहीं जाता।... आपको मैंने दूर से ही देख लिया था, इंजीनियर बाबू, हालाँकि सोला हैट में आपको पहचानना मुश्किल था।

इंजीनियर बाबू हँस पड़े। तरन को याद आया कि जब वह शुरू-शुरू में दरवाज़े के पीछे खड़ी होकर बरामदे में इंजीनियर बाबू की हँसी सुनती थी, तो उसे लगता था कि वह उम्र में उससे काफ़ी छोटे हैं।

— इधर शहर जाना हुआ, इंजीनियर बाबू ?

— कैसे होगा ? — इंजीनियर बाबू अपनी परेशानियों को कुछ इस ढंग से कहते हैं कि तरन को लगता है, मानो उन्हें उनसे काफ़ी सुख अनुभव हो रहा हो।

— कैसे होगा ? तीन दिन से कोई लारी नहीं गयी है। उतनी दूर न मैं जा सकता हूँ, न बेचारा मोण्टू।

— लारी नहीं गयी है ? — तरन आश्चर्य से उन्हें देखने लगी — फिर खाने-पीने का सामान कौन लाता होगा ? यहाँ तो कोई अच्छा होटल भी नहीं है।

— आप मोण्टू को नहीं जानतीं, — इंजीनियर बाबू ठहाका मारकर हँस पड़े — शहर जाने में हम दोनों को ही आलस लगता है, इसलिए उसने यहाँ एक अच्छा-सा ढाबा खोज निकाला है, वहीं से अपने और मेरे लिए दोनों जून खाना ले आता है।

तरन ने इंजीनियर बाबू को देखा। बड़ा विचित्र-सा लगा। कैसे हैं यह इंजीनियर बाबू ? अपने शहर, अपने घर को छोड़कर इतनी दूर चले आये हैं। नौकर के अलावा कोई भी तो नहीं है इस उजाड़ प्रान्त में, जिसे वह अपना कह सकें।

— चलिए, आप टहलने आयीं हैं न !

ऊँची-नीची, ऊबड़-खाबड़ कच्ची सड़क पर वे दोनों चुपचाप चलने लगे। जब कभी हवा का झोंका आता, आँखें मुँद जातीं, मुँह में रेत करकराने लगती, आँखों के आगे सफ़ेद परदा-सा खिंच जाता। मज़दूरों के खोखलों और झाड़-फूँस के छप्परों के ऊपर काली देवी के मन्दिर का दीया जल गया था, हालाँकि धूप अभी तक आस-पास खड़ी चट्टानों और मिट्टी के ढूहों पर रेंग रही थीं।

चलते-चलते अचानक इंजीनियर बाबू रुक गये।

— आपने वे टीले देखे हैं, उन खोखलों के पीछे ? — इंजीनियर बाबू की दृष्टि कहीं दूर जाकर अटक गयी थी।

तरन जिज्ञासा-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

— सड़क बनने के बाद उन सबको गिरा दिया जायेगा। रेलवे लाइन के सामने आप जो बंजर भूमि देखती हैं, उसे जोता जायेगा। नहर के इस तरफ़ कारखाने बनेंगे। आपके देखते-देखते सबकुछ बदल जायेगा।

इंजीनियर बाबू का स्वर एकदम बहुत उत्साहपूर्ण हो गया था। शाम की धूप में उनके चश्मे का शीशा बार-बार झिलमिला उठता था।

और भी न जाने इंजीनियर बाबू ने कैसी-कैसी अजीब बातें कही थीं। तरन विस्मय से

देखती रही थी, सोचती रही थी, कि देखने में चाहे इंजीनियर बाबू कालेज के छात्र-से लगते हों, जानते बहुत-कुछ हैं। उसे हँसी केवल इस बात पर आयी थी कि वह इतना उत्तेजित होकर क्यों बोल रहे हैं, वह कोई उनका विरोध थोड़े ही कर रही है !

रेलवे लाइन के फाटक के पास आकर वे रुक गये। इंजीनियर बाबू एकाएक चुप हो गये थे, मानो शाम के घिरते अँधियारे का सूनापन उन्हें भी छू गया हो। आकाश पर हँसिया चाँद उग आया था, टीलों की ऊँची-नीची रेखाएँ, जो दुपहर के समय तीखी और सख्त दिखाई देती थीं, सन्ध्या के फीके आलोक में बेहद नरम और हल्की पड़ गयी थीं, मानो अपना अलगाव छोड़कर वे चुप एक-दूसरे के पास सरक आयी हों।

– इंजीनियर बाबू ! आप कभी आसाम गये हैं ?

– आसाम ? नहीं तो ! क्यों, वहाँ क्या है ?

– कुछ नहीं, ऐसे ही याद आ गया। वहाँ हमारे भाई रहते हैं, आप ही की उम्र के हैं।

– ओह ! इंजीनियर बाबू चुपचाप दूसरी ओर देखने लगे थे।

तरन को यहाँ से लौट जाना था, किन्तु वह चुपचाप खड़ी रही थी। हवा का वेग अचानक कम हो गया था। पानी के टैंक के पीछे छोटे-छोटे घरों की नीली छतें शाम की ढलती धूप में चमक रही थीं।

– अब आप वापस लौट जाइए, अँधेरा होने लगा है। कहिए तो मोन्टू को साथ भेज दूँ ?

– नहीं, मैं चली जाऊँगी, दूर ही कितना है !

इंजीनियर बाबू रेल की पटरी पार करके धीरे-धीरे मैदान की दूसरी ओर चलने लगे थे। तरन देर तक उनकी ओर देखती रही। डूबते सूरज के रंग का अन्तिम आभास भी मिटने लगा था।

वापस लौटते हुए तरन एक बार रुकी थी। उसे लगा था, जैसे बरसों बाद उसके पास एक रहस्यमय, अनिर्वचनीय सुख आया है। चारों ओर घिरते अन्धकार की स्निग्ध छाया के बीच उसे अपनी सब चिन्ताएँ निरर्थक-सी जान पड़ी थीं। वह समझ न पायी कि उसे अब तक जो इतना डर लगता रहा था, वह किसलिए था, किससे था ? ज़िन्दगी में केवल एक बार जीना होता है और उसे उसके अलावा कोई और नहीं जियेगा। इंजीनियर बाबू को ही देखो, अपना घर-बार छोड़कर इतनी दूर आये हैं, भला किसलिए, उन्हें कैसा लगता होगा ?

मैदान के अन्धेरे ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलते हुए तरन को लगा था, जैसे बीते बरसों का बासीपन धुल गया है। उसकी नस-नस में आनन्द की लहर दौड़ गयी थी।

– नहीं, अब वह इस घर में कभी वापस नहीं आयेगी... वह अपनी ज़िन्दगी स्वयं जियेगी... उसे यहाँ अब रहने के लिए किसी का मोह पीछे नहीं खींचेगा...

सीढ़ियाँ चढ़ते हुए तरन ने ऊपर देखा, बरामदे में निपट अँधेरा था। सारे घर में सन्नाटा फैला था। केवल रसोई की बत्ती जल रही थी, जिसकी रोशनी की एक धूमिल, फीकी-सी रेखा

बाबू के कमरे के दरवाजे पर खिंच आयी थी।

दरवाज़ा खुला था। तरन का दिल तेज़ी से धड़कने लगा। क्या बाबू अकेले अँधेरे कमरे म बैठे हैं ?

वह दबे पाँव दरवाज़े के पास गयी, काँपते हाथों से दरवाजे को हल्के-से पीछे ठेल दिया। आँखें अँधेरे में पहले कुछ भी न पकड़ पायीं, इधर-उधर भटकती रहीं, फिर एक कोने में वे सहसा ठहर गयीं।

एकटक देखती रही तरन। निद्रा में चलते मरीज़ की तरह बाबू कमरे में घूम रहे थे। कभी-कभी अकस्मात् कमरे के बीच खड़े हो जाते थे, मानो किसी भूली हुई चीज़ को याद कर रहे हों। फिर अचानक उनके पाँव मुड़ जाते और वह कोने की ताख में रखी हुई बरसों पुरानी तस्वीर के सामने आ खड़े होते। उभरी हुई नीली नसों से भरे, काँपते, बूढ़े हाथों से वह फ्रेम पर जमी हुई धूल की परतों को साफ़ करते। धूल कहाँ साफ़ हो पाती है ! केवल उनकी उँगलियों की छाप तस्वीर के पुराने, ज़र्द शीशे पर उभर आती है।

कोई शक्ल है, जो अतीत के धूमिल परदे पर दीये की लौ-सी झिलमिला जाती है। जार्ज पंचम के सिल्वर जुबली के समारोह के अवसर पर··· बरसों पहले जो फोटो लिया गया था, बाबू मन्त्रमुग्ध होकर अपलक उसे देख रहे थे। रियासत के अंग्रेजी रेज़ीडेंट और अन्य राज्याधिकारियों के बीच जहाँ दीवान साहब बैठे हैं, फोटो के उस कोने पर बाबू की आँखें स्थिर, स्तम्भित-सी जमी रह गयीं हैं, मानो वह अपने को ही पहचान पाने का प्रयास कर रहे हों।

क्षण-भर के लिए भ्रम होता है, क्या बाबू सचमुच वहाँ हैं, जहाँ खड़े दीखते हैं ? क्या इस घड़ी उनके संग कोई नहीं है ?

दरवाज़े के पास दीवार से सटकर तरन पत्थर-सी खड़ी रही। आँखों पर एकाएक विश्वास नहीं हुआ। पहली बार तरन ने बुढ़ापे को ऐसी निरावृत्त अवस्था में देखा था और वह बिना हिले-डुले सुन्न-सी खड़ी रही थी।··· बाबू के रूखे-सफ़ेद बाल, पतले, लकड़ी-से हाथों पर नीली नसें, चेहरे की असंख्य उदास झुर्रियाँ, क्या यह सबकुछ उसकी आँखों के सामने, उसके देखते-देखते हो गया है ?

—बाबू !—तरन के होंठ फड़फड़ा उठे। वह अँधेरे कमरे में बाबू के सामने आकर खड़ी हो गयी। जीवन में पहली बार उसने बाबू के इतने निकट जाने का साहस किया था।

बाबू ने धीरे-से सिर ऊपर उठाया, तरन को देखा,··· और देखते रहे।

तुम यहाँ क्यों आयीं, तरन ?—उनका गला भर्रा-सा आया, आँखों में कातरता छलछला उठी।

तरन कमरे से बाहर चली आयी। देर तक अँधेरे बरामदे में खड़ी रही। एक भयावह-सा विचार उसके मस्तिष्क में धीरे-धीरे रेंगता रहा। बाबू उसे कभी नहीं छोड़ेंगे और वह उनसे कभी अलग नहीं हो सकेगी···

वह अकेली रहेगी; किन्तु बाबू की छाया से बँधी हुई।··· और बाबू का अकेलापन हमेशा, ज़िन्दगी-भर उससे जुड़कर रहेगा।

वह क्षण, जो आज शाम आया था, रेलवे लाइन के सामने, जब वह इंजीनियर बाबू के संग खड़ी थी, वह शायद गलत था, अपने सम्बन्ध में एक सुखद भ्रम से अधिक कुछ नहीं··· वह क्षण फिर उसके जीवन में कभी नहीं आयेगा।

रात-भर बुआ के कमरे में खाँसने का स्वर सुनायी देता रहा। आधी रात के समय तरन बाबू के कमरे तक गयी थी और न जाने कितनी देर तक अँधेरे में दरवाज़े से सटकर खड़ी रही थी। उसे लगा था, मानो माँ उस रात दुबारा मर गयी हो और जो आँसू बचपन में नहीं बह सके थे वे इतने बरसों से इसी रात की प्रतीक्षा कर रहे थे···

अपने कमरे में वापस आकर तरन चुपचाप खुली खिड़की के आगे खड़ी रही थी। दूर-दूर तक मैदान में फीकी-सी चाँदनी बिखरी थी। रेलवे लाइन के परे तीन-चार बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं। इन्हीं के आसपास कहीं इंजीनियर बाबू रहते होंगे, तरन ने सोचा। उसे उस क्षण इंजीनियर बाबू की बात याद हो आयी कि कुछ वर्षों में सबकुछ बदल जायेगा।··· क्या इंजीनियर बाबू सच कह रहे थे ? क्या सचमुच सब बदल जायेगा ? और तरन के होंठों पर एक रूखी-सी मुस्कराहट फैल गयी थी···

खिड़की से हटकर तरन अपने पलँग पर लेट गयी। थकान के मारे पलकें भारी हो गयी थीं, फिर भी देर तक सोना नहीं हो सका। एक बार बीच में कच्ची नींद का हल्का-सा झोंका आया था, तो लगा था जैसे सामने भाई खड़े हों··· वैसी ही शक्ल थी, वही उदास-सी आँखें··· और तरन देर तक भाई के बारे में सोचती रही थी। कितने बरसों से उन्हें नहीं देखा है !··· अब तक तो शायद वह बिल्कुल बदल गये होंगे···

एक धुँधली-सी तस्वीर आँखों के सामने उभर जाती है, कहीं बहुत दूर, चाय के बागों के झुरमुट में उनका बँगला छिपा होगा। कहते हैं, वहाँ स्टीमर पर जाना पड़ता है। न जाने, स्टीमर में बैठकर कैसा लगता होगा !

दूसरी दुनिया

बहुत पहले मैं एक लड़की को जानता था। वह दिन-भर पार्क में खेलती थी। उस पार्क में बहुत-से पेड़ थे, जिनमें मैं बहुत कम को पहचानता था। मैं सारा दिन लायब्रेरी में रहता था और जब शाम को लौटता था, तो वह उन पेड़ों के बीच बैठी दिखायी देती थी। बहुत दिनों तक हम एक-दूसरे से नहीं बोले। मैं लन्दन के उस इलाके में सिर्फ कुछ दिनों के लिए ठहरा था। उन दिनों मैं एक जगह से दूसरी जगह बदलता रहता था, सस्ती जगह की तलाश में।

वे काफी गरीबी के दिन थे।

वह लड़की भी काफी गरीब रही होगी, यह मैं आज सोचता हूँ। वह एक आधा-उधड़ा स्वेटर पहने रहती, सिर पर कत्थई रंग का टोप, जिसके दोनों तरफ उसके बाल निकले रहते। कान हमेशा लाल रहते और नाक का ऊपरी सिरा भी – क्योंकि वे अक्तूबर के अन्तिम दिन थे – सर्दियाँ शुरू होने से पहले के दिन और ये शुरू के दिन कभी-कभी असली सर्दियों से भी ज्यादा क्रूर होत थे।

सच कहूँ तो ठण्ड से बचने के लिए ही मैं लायब्रेरी आता था। उन दिनों मेरा कमरा बर्फ हो जाता था। रात को सोने से पहले मैं अपने सब स्वेटर और जुराबें पहन लेता था, रजाई पर अपने कोट और ओवरकोट जमा कर लेता था – लेकिन ठण्ड फिर भी नहीं जाती थी। यह नहीं कि कमरे में हीटर नहीं था, किन्तु उसे जलाने के लिए उसके भीतर एक शिलिंग डालना पड़ता था। पहली रात जब मैं उस कमरे में सोया था, तो रात-भर उस हीटर को पैसे खिलाता रहा – हर आध घण्टे बाद उसकी जठराग्नि शान्त करनी पड़ती थी। दूसरे दिन, मेरे पास नाश्ते के पैसे भी नहीं बचे थे। उसके बाद मैंने हीटर को अलग छोड़ दिया। मैं रात-भर ठण्ड से काँपता रहता, लेकिन यह तसल्ली रहती कि वह भी भूखा पड़ा है। वह मेज पर ठण्डा पड़ा रहता – मैं बिस्तर पर – और इस तरह हम दोनों के बीच शीत-युद्ध जारी रहता।

सुबह होते ही मैं जल्दी-से-जल्दी लायब्रेरी चला आता। पता नहीं, कितने लोग मेरी तरह वहाँ आते थे – लायब्रेरी खुलने से पहले ही दरवाजे पर लाइन बनाकर खड़े हो जाते थे। उनमें से ज्यादातर बूढ़े लोग होते थे, जिन्हे पेंशन बहुत कम मिलती थी, किन्तु सर्दी सबसे ज्यादा लगती

थी। मेजों पर एक-दो किताबें खोलकर वे बैठ जाते। कुछ ही देर बाद मैं देखता, मेरे दायें-बाये सब लोग सो रहे हैं। कोई उन्हें टोकता नहीं था। एक्र-आध घण्टे बाद लायब्रेरी का कोई कर्मचारी वहाँ चक्कर लगाने आ जाता, खुली किताबों को बन्द कर देता और उन लोगों को धीरे-से हिला देता, जिनके खुर्राटे दूसरों की नींद या पढ़ाई में खलल डालने लगे हों।

ऐसी ही एक ऊँघती दोपहर में मैंने उस लड़की को देखा था – लायब्रेरी की लम्बी खिड़की से। उसने अपना बस्ता एक बेंच पर रख दिया था और खुद पेड़ों के पीछे छिप गयी थी। वह कोई धूप का दिन न था, इसलिए मुझे कुछ हैरानी हुई थी कि इतनी ठण्ड में वह लड़की बाहर खेल रही है। वह बिलकुल अकेली थी। बाकी बेंचें खाली पड़ी थीं। और उस दिन पहली बार मुझे यह जानने की तीव्र उत्सुकता हुई थी कि वे कौन-से खेल हैं, जिन्हें कुछ बच्चे अकेले में खेलते हैं।

दोपहर होते ही वह पार्क में आती, बेंच पर अपना बस्ता रख देती और फिर पेड़ों के पीछे भाग जाती। मैं कभी-कभी किताब से सिर उठाकर उसकी ओर देख लेता। पाँच बजने पर सरकारी अस्पताल का गजर सुनायी देता। घण्टे बजते ही, वह लड़की जहाँ भी होती, दौड़ते हुए अपनी बेंच पर आ बैठती। वह बस्ते को गोद में रखकर चुपचाप बैठी रहती, जब तक दूसरी तरफ से एक महिला न दिखायी दे जाती। मैं कभी उस महिला का चेहरा ठीक से न देख सका। वह हमेशा नर्स की सफेद पोशाक में आती थीं। और इससे पहले कि बेंच तक पहुँच पातीं – वह लड़की अपना धीरज खोकर भागने लगती और उन्हें बीच में ही रोक लेती। वे दोनों गेट की तरफ मुड़ जाते और मैं उन्हें उस समय तक देखता रहता, जब तक वे आँखों से ओझल न हो जाते।

मैं यह सब देखता था, हिचकॉक के हीरो की तरह, खिड़की से बाहर, जहाँ यह पैण्टोमिम रोज दुहराया जाता था। यह सिलसिला शायद सर्दियों तक चलता रहता, यदि एक दिन अचानक मौसम ने करवट न ली होती।

एक रात सोते हुए मुझे सहसा अपनी रजाई और उस पर रखे हुए कोट बोझ जान पड़े। मेरी देह पसीने से लथपथ थी, जैसे बहुत दिनों बाद बुखार से उठ रहा हूँ। खिड़की खोलकर बाहर झाँका, तो न धुन्ध, न कोहरा ;लन्दन का आकाश नीली मखमली डिबिया-सा खुला था, जिसमें किसी ने ढेर-से तारे भर दिये थे। मुझे लगा, जैसे यह गर्मियों की रात है और मैं विदेश में न होकर अपने घर की छत पर लेटा हूँ।

अगले दिन खुलकर धूप निकली थी, मैं अधिक देर तक लायब्रेरी में नहीं बैठ सका। दोपहर होते ही मैं बाहर निकल पड़ा और घूमता हुआ उस रेस्तराँ में चला आया, जहाँ मैं रोज खाना खाने जाया करता था। वह एक सस्ता यहूदी रेस्तराँ था। वहाँ सिर्फ डेढ़ शिलिंग में कोशर गोश्त, दो रोटियाँ और बीयर का एक छोटा गिलास मिल जाता था। रेस्तराँ की यहूदी मालकिन, जो युद्ध से पहले लिथूनिया से आयी थीं, एक ऊँचे स्टूल पर बैठी रहतीं। काउण्टर पर

एक कैश-बाक्स रखा रहता और उसके नीचे एक सफेद सियामी बिल्ली गाहकों को घूरती रहती। मुझे शायद वह थोड़ा-बहुत पहचानने लगी थी, क्योंकि जितनी देर मैं खाता रहता, उतनी देर वह अपनी हरी आँखों से मेरी तरफ टुकुर-टुकुर ताकती रहती। गरीबी और ठण्ड और अकेलेपन के दिनों में बिल्ली का सहारा भी बहुत होता है, यह मैं उन दिनों सोचा करता था। मैं यह भी सोचता था कि किसी दिन मैं भी ऐसा ही हिन्दुस्तानी रेस्तराँ खोलूँगा और एक-साथ तीन बिल्लियाँ पालूँगा।

रेस्तराँ से बाहर आया, तो दोबारा लायब्रेरी जाने की इच्छा मर गयी। लम्बी मुद्दत बाद उस दिन घर से चिट्ठियाँ और अखबार आये थे। मैं उन्हें पार्क की खुली धूप में पढ़ना चाहता था। मुझे हल्का-सा आश्चर्य हुआ, जब मेरी नजर पार्क के फूलों पर गयी। वे बहुत छोटे फूल थे, जो घास के बीच अपना सिर उठाकर खड़े थे। इन्हीं फूलों के बारे में शायद जीसस ने कहा था, लिलीज़ ऑफ द फ़ील्ड, ऐसे फूल, जो आनेवाले दिनों के बारे में नहीं सोचते।

वे गुजरी हुई गर्मियों की याद दिलाते थे।

मैं घास के बीच उन फूलों पर चलने लगा।

बहुत अच्छा लगा। आनेवाले दिनों की दुश्चिन्ताएँ झरने लगीं। मैं हल्का-सा हो गया। मैंने अपने जूते उतार दिये और घास पर नंगे पाँव चलने लगा। मैं बेंच के पास पहुँचा ही था कि मुझे अपने पीछे एक चीख सुनायी दी। कोई तेजी से भागता हुआ मेरी तरफ आ रहा था। पीछे मुड़कर देखा, तो वही लड़की दिखायी दी। वह पेड़ों से निकलकर बाहर आयी और मेरा रास्ता रोककर खड़ी हो गयी।

"यू आर कॉट," उसने हँसते हुए कहा, "अब आप जा नहीं सकते।"

मैं समझा नहीं। जहाँ खड़ा था, वहीं खड़ा रहा।

"आप पकड़े गये···" उसने दोबारा कहा, "आप मेरी जमीन पर खड़े हैं।"

मैंने चारों तरफ देखा, घास पर फूल थे, किनारे पर खाली बेंचें थीं, बीच में तीन एवरग्रीन पेड़ और एक मोटे तनेवाला ओक खड़ा था। उसकी जमीन कहीं दिखायी न दी।

"मुझे मालूम नहीं था," मैंने कहा और मुड़कर वापस जाने लगा।

"नहीं, नहीं··· आप जा नहीं सक़ते," बच्ची एकदम मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। उसकी आँखें चमक रही थीं, "वे आपको जाने नहीं देंगे।"

"कौन नहीं जाने देगा ?" मैंने पूछा।

उसने पेड़ों की तरफ इशारा किया, जो अब सचमुच सिपाही-से दिखायी दे रहे थे, लम्बे हट्टे-कट्टे पहरेदार। मैं बिना जाने उनके अदृश्य फन्दे में चला आया था।

कुछ देर तक हम चुपचाप आमने-सामने खड़े रहे। उसकी आँखें बराबर मुझ पर टिकी थीं – उत्तेजित और सतर्क। जब उसने देखा, मेरा भागने का कोई इरादा नहीं है, तो वह कुछ ढीली पड़ी।

"आप छूटना चाहते हैं ?" उसने कहा।

"कैसे ?" मैंने उसकी ओर देखा।

"आपको इन्हें खाना देना होगा। ये बहुत दिन से भूखे हैं।" उसने पेड़ों की ओर संकेत किया। वे हवा में सिर हिला रहे थे।

"खाना मेरे पास नहीं है।" मैंने कहा।

"आप चाहें, तो ला सकते हैं।" उसने आशा बँधायी, "ये सिर्फ फूल-पत्ते खाते हैं।"

मेरे लिए यह मुश्किल नहीं था। वे अक्तूबर के दिन थे और पार्क में फूलों के अलावा ढेरों पत्ते बिखरे रहा करते थे। मैं नीचे झुका ही था कि उसने लपककर मेरा हाथ रोक लिया।

"नहीं, नहीं – यहाँ से नहीं। यह मेरी जमीन है। आपको वहाँ जाना होगा।" उसने पार्क के फेंस की ओर देखा। वहाँ मुरझाये फूलों और पत्तों का ढेर लगा था। मैं वहाँ जाने लगा कि उसकी आवाज सुनायी दी।

"ठहरिए – मैं आपके साथ आती हूँ, लेकिन अगर आप बचकर भागेंगे तो··· यहीं मर जायेंगे।" वह रुकी, मेरी तरफ देखा, "आप मरना चाहते हैं ?"

मैंने जल्दी से सिर हिलाया। वह इतना गर्म और उजला दिन था कि मरने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी।

हम फेंस तक गये। मैंने रूमाल निकाला और फूल-पत्तियों को बटोरने लगा। मुक्ति पाने के लिए आदमी क्या कुछ नहीं करता।

वापस लौटते हुए वह चुप रही। मैं कनखियों से उसकी ओर देख लेता था। वह काफी बीमार-सी बच्ची जान पड़ती थी। उन बच्चों की तरह गम्भीर, जो हमेशा अकेले में अपने साथ खेलते हैं। जब वह चुप रहती थी, तो होंठ बिचक जाते थे – नीचे का होंठ थोड़ा-सा बाहर निकल आता, जिसके ऊपर दबी हुई नाक बेसहारा-सी दिखायी देती थी। बाल बहुत छोटे थे – और बहुत काले – गोल छल्लों में धुली हुई रुई की तरह बँटे हुए, जिन्हें छूने को अनायास हाथ आगे बढ़ जाता था। लेकिन वह अपनी दूरी में हर तरह की छुअन से परे जान पड़ती थी।

"अब आप इन्हें खाना दे सकते हैं।" उसने कहा। वह पेड़ों के पास आकर रुक गयी थी।

"क्या वे मुझे छोड़ देंगे ?" मैं कोई गारण्टी, कोई आश्वासन पाना चाहता था।

इस बार वह मुस्करायी – और मैंने पहली बार उसके दाँत देखे – एकदम सफेद और चमकीले – जैसे अक्सर नीग्रो लड़कियों के होते हैं।

मैंने वे पत्तियाँ रूमाल से बाहर निकालीं, चार हिस्सों में बाँटी और बराबर-बराबर से पेड़ों के नीचे डाल दीं।

मैं स्वतन्त्र हो गया था – कुछ खाली-सा भी।

मैंने जेब से चिट्ठियाँ और अखबार निकाले और उस बेंच पर बैठ गया, जहाँ उसका बैग रखा था। वह काले चमड़े का बैग था, भीतर किताबें ठुँसी थीं, ऊपर की जेब से आधा कुतरा

हुआ सेब बाहर झाँक रहा था।

वह ओझल हो गयी। मैंने चारों तरफ ध्यान से देखा, तो उसकी फ्राक का एक कोना झाड़ियों से बाहर दिखायी दिया। वह एक खरगोश की तरह दुबककर बैठी थी – मेरे ही जैसे, किसी भूले-भटके यात्री पर झपटने के लिए। किन्तु बहुत देर तक पार्क से कोई आदमी नहीं गुजरा। हवा चलती तो पेड़ों के नीचे जमा की हुई पत्तियाँ घूमने लगतीं – एक भँवर की तरह – और वह अपने शिकार को भूलकर उनके पीछे भागने लगती।

कुछ देर बाद वह बेंच के पास आयी, एक क्षण मुझे देखा, फिर बस्ते की जेब से सेब निकाला। मैं अखबार पढ़ता रहा और उसके दाँतों के बीच सेब की कुतरन सुनता रहा।

अचानक उसकी नजर मेरी चिट्ठियों पर पड़ी, जो बेंच पर रखी थीं। उसके हिलते हुए जबड़े रुक गये।

"यह आपकी है ?"

"हाँ।" मैंने उसकी ओर देखा।

"और यह ?"

उसने लिफाफे पर लगे टिकट की ओर उँगली उठायी। टिकट पर हाथी की तस्वीर थी, जिसकी सूँड ऊपर हवा में उठी थी। वह अपने दाँतों के बीच हँसता-सा दिखायी दे रहा था।

"तुम कभी जू गयी हो ?" मैंने पूछा।

"एक बार पापा के साथ गयी थी। उन्होंने मुझे एक पेनी दी थी और हाथी ने अपनी सूँड से उस पेनी को मेरे हाथ से उठाया था।"

"तुम डरी नहीं ?"

"नहीं, क्यों ?" उसने सेब कुतरते हुए मेरी ओर देखा।

"पापा तुम्हारे साथ यहाँ नहीं आते ?"

"एक बार आये थे। तीन बार पकड़े गये।"

वह धीमे-से हँसी – जैसे मैं वहाँ न हूँ, जैसे कोई अकेले में हँसता है, जहाँ एक स्मृति पचास तहें खोलती है।

अस्पताल की घड़ी का गजर सुनायी दिया, तो हम दोनों चौंक गये। लड़की ने बेंच से बस्ता उठाया और उन पेड़ों के पास-पास गयी, जो चुप खड़े थे। बच्ची हर पेड़ के पास जाती थी, छूती थी, कुछ कहती थी, जिसे सिर्फ पेड़ सुन पाते थे। आखीर में वह मेरे पास आयी और मुझसे हाथ मिलाया, जैसे मैं भी उन पेड़ों में से एक हूँ।

उसकी निगाहें पीछे मुड़ गयीं। मैंने देखा, कौन है ? वह महिला दिखायी दीं। वह नर्सोंवाली सफेद पोशाक हरी घास पर चमक रही थी। बच्ची उन्हें देखते ही भागने लगी। मैंने से देखा – यह वही महिला थीं, जिन्हें मैं लायब्रेरी की खिड़की से देखता था। छोटा कद, कन्धे पर थैला और बच्ची-जैसे ही काले-घुँघराले बाल। वे मुझसे काफी दूर थे, लेकिन उनकी

आवाज सुनायी दे जाती थी – अलग-अलग शब्द नहीं, सिर्फ दो स्वरों की एक आहट। वे घास पर बैठ गये थे। बच्ची मुझे भूल गयी थी।

मैंने जूते पहने। अखबार और चिट्ठियाँ जेब में रख दीं। अभी समय काफी है, मैंने सोचा। एक-दो घण्टे लायब्रेरी में बिता सकता हूँ। पार्क के जादू से-अलग, अपने अकेले कोने में।

मैं बीच पार्क में चला आया। पेड़ों की फुनगियों पर आग सुलगने लगी थी। समूचा पार्क सोने में गल रहा था। बीच में पत्तों का दरिया था, हवा में हिलता हुआ।

कौन-कौन है ? कोई मुझे बुला रहा था और मैं चलता गया, रुका नहीं। कभी-कभी आदमी खुद अपने को बुलाने लगता है, बाहर से भीतर – और भीतर कुछ भी नहीं होता। लेकिन यह बुलावा और दिनों की तरह नहीं था। यह रुका नहीं, इसलिए अन्त में मुझे ही रुकना पड़ा। इस बार कोई शक नहीं हुआ। सचमुच कोई चीख रहा था, "स्टॉप, स्टॉप··· !" मैंने पीछे मुड़कर देखा, लड़की खड़ी होकर दोनों हाथ हवा में हिला रही थीं।

सच ! मैं फिर पकड़ा गया था – दोबारा से। बेवकूफों की तरह मैं उसकी जमीन पर चला आया था, चार पेड़ों से घिरा हुआ। इस बार माँ और बेटी दोनों हँस रहे थे।

वे झूठी गर्मियों के दिन थे। ये दिन ज्यादा देर नहीं टिकेंगे, इसे सब जानते थे। लायब्रेरी उजाड़ रहने लगी। मेरे पड़ोसी, बूढ़े पेंशनयाफ्ता लोग, अब बाहर धूप में बैठने लगे। आकाश इतना नीला दिखायी देता कि लन्दन की धुन्ध भी उसे मैला न कर पाती। उसके नीचे पार्क एक हरे टापू-सा लेटा रहता।

ग्रेता (यह उसका नाम था) हमेशा वहाँ दिखायी देती थी। कभी दिखायी न देती, तो भी बेंच पर उसका बस्ता देखकर पता चल जाता कि वह यहीं कहीं है, किसी कोने में दुबकी है। मैं बचता हुआ आता, पेड़ों से, झाड़ियों से, घास के फूलों से। हर रोज वह कहीं-न-कहीं, एक अदृश्य भयानक फन्दा छोड़ जाती और जब पूरी सतर्कता के बावजूद मेरा पाँव उसमें फँस जाता, तो वह बदहवास चीखती हुई मेरे सामने आ खड़ी होती। मैं पकड़ लिया जाता। छोड़ दिया जाता। फिर पकड़ लिया जाता···।

यह खेल नहीं था। वह एक पूरी दुनिया थी। उस दुनिया से मेरा कोई वास्ता नहीं था – हालाँकि मैं कभी-कभी उसमें बुला लिया जाता था। ड्रामे में एक ऐक्स्ट्रा की तरह। मुझे हमेशा तैयार रहना पड़ता था, क्योंकि वह मुझे किसी भी समय बुला सकती थी। एक दोपहर हम दोनों बेंच पर बैठे थे, अचानक वह उठ खड़ी हुई।

"हलो मिसेज टामस···।" उसने मुस्कराते हुए कहा, "आज आप बहुत दिन बाद दिखायी दीं – यह मेरे इण्डियन दोस्त हैं, इनसे मिलिए।"

मैं अवाक् उसे देखता रहा। वहाँ कोई न था।

"आप बैठे है ?" इनसे हाथ मिलाइए।" उसने मुझे कुछ झिड़कते हुए कहा।

मैं खड़ा हो गया, खाली हवा से हाथ मिलाया। ग्रेता खिसककर मेरे पास बैठ गयी, ताकि कोने में मिसेज टामस बैठ सकें।

"आप बाजार जा रही थीं ?" उसने खाली जगह को देखते हुए कहा, "मैं आपका थैला देखकर समझ गयी। नहीं, माफ कीजिए, मैं आपके साथ नहीं आ सकती। मुझे बहुत काम करना है। इन्हें देखिए (उसने पेड़ों की तरफ इशारा किया), ये सुबह से भूखे हैं, मैंने अभी तक इनके लिए खाना भी नहीं बनाया – आप चाय पियेंगी या कॉफ़ी ? ओह – आप घर से पीकर आयी हैं। क्या कहा – मैं आपके घर क्यों नहीं आती ? आजकल वक्त कहाँ मिलता है। सुबह अस्पताल जाना पड़ता है, दोपहर को बच्चों के साथ – आप तो जानती हैं। मैं इतवार कों आऊँगी। आप जा रही हैं – "

उसने खड़े होकर दोबारा हाथ मिलाया। मिसेज टामस शायद जल्दी में थीं। विदा लेते समय उन्होंने मुझे देखा नहीं। बदले में मैं बेंच पर ही बैठा रहा।

कुछ देर तक हम चुपचाप बैठे रहे। फिर सहसा वह चौंक पड़ी।

"आप कुछ सुन रहे हैं ?" उसने मेरी कुहनी को झिंझोड़ा।

"कुछ भी नहीं।" मैंने कहा।

"फोन की घण्टी – कितनी देर से बज रही है। ज़रा देखिए, कौन है ?"

मैं उठकर ब्रेंच के पीछे गया, नीचे घास से एक टूटी टहनी उठायी और जोर से कहा, "हलो ! "

"कौन है ?" उसने कुछ अधीरता से पूछा।

"मिसेज टामस।" मैंने कहा।

"ओह – फिर मिसेज टामस।" उसने एक थकी-सी जम्हाई ली, धीमें कदमों से पास आयी, मेरे हाथ से टहनी खींचकर कहा, "हलो, मिसेज टामस – आप बाजार से लौट आयीं ? क्या-क्या लायीं ? मीट-बॉल्स, फिश-फिंगर्स, आलू के चिप्स ?" उसकी आँखें आश्चर्य से फैलती जा रही थीं। वह शायद चुन-चुनकर उन सब चीजों का नाम ले रही थी, जो उसे सबसे अधिक अच्छी लगती थीं।

फिर वह चुप हो गयी – जैसे मिसेज टामस ने कोई अप्रत्याशित प्रस्ताव उसके सामने रखा हो। "ठीक है मिसेज टामस, मैं अभी आती हूँ – नहीं, मुझे देर नहीं लगेगी। मैं अभी बस-स्टेशन की तरफ जा रही हूँ – गुड बाई, मिसेज टामस ! "

उसने चमकती आँखों से मेरी ओर देखा।

"मिसेज टामस ने मुझे डिनर पर बुलाया है – आप क्या करेंगे ?"

"मैं सोऊँगा।"

"पहले इन्हें कुछ खिला देना¨ नहीं तो ये रोयेंगे।" उसने पेड़ों की ओर इशारा किया, जो

री हवा में निस्पन्द खड़े थे।

वह तैयार होने लगी। अपने बिखरे बालों को सँवारा, पाउडर लगाने का बहाना किया – हथेली का शीश बनाकर उसमें झाँका – धूप और पेड़ों की छाया के बीच वह सचमुच सुन्दर जान पड़ रही थी।

जाते समय उसने मेरी तरफ हाथ हिलाया। मैं उसे देखता रहा, जब तक वह पेड़ों और झाड़ियों के घने झुरमुट में गायब नहीं हो गयी।

ऐसा हर रोज होने लगा। वह मिसेज टामस से मिलने चली जाती और मैं बेंच पर लेटा रहता। मुझे अकेला नहीं लगता था। पार्क की अजीब, अदृश्य आवाजें मुझे हरदम घेरे रहतीं। मैं एक दुनिया से निकलकर दूसरी दुनिया में चला आता। वह पार्क के सुदूर कोनों में भटकती फिरती। मैं लायब्रेरी की किताबों का सिरहाना बनाकर बेंच पर लेट जाता। लन्दन के बादलों को देखता – वे घूमते रहते और जब कभी कोई सफेद टुकड़ा सूरज पर अटक जाता, तब पार्क में अँधेरा-सा घिर जाता।

ऐसे ही एक दिन जब मैं बेंच पर लेटा था, मुझे अपने नजदीक एक अजीब-सी खड़खड़ाहट सुनायी दी। मुझे लगा, मैं सपने में मिसेज टामस को देख रहा हूँ। वे मेरे पास – बिलकुल पास – आकर खड़ी हो गयी हैं, मुझे बुला रही हैं।

मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा।

सामने बच्ची की माँ खड़ी थीं। उन्होंने ग्रेता का हाथ पकड़ रखा था और कुछ असंमजस में वे मुझे निहार रही थीं।

"माफ कीजिए ..." उन्होंने सकुचाते हुए कहा, "आप सो तो नहीं रहे थे ?"

मैं कपड़े झाड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ।

"आज आप जल्दी आ गयीं ?" मैंने कहा। उनकी सफेद पोशाक, काली बेल्ट और बालों पर बँधे स्कार्फ को देखकर मेरी आँखें चुँधिया-सी गयीं। लगता था, वे अस्पताल से सीधी यहाँ चली आ रही थीं।

"हाँ, मैं जल्दी आ गयी," वे मुस्कराने लगीं, "शनिवार को काम ज्यादा नहीं रहता – मैं दोपहर को ही आ जाती हूँ।"

वे वेस्ट इण्डीज के चौड़े उच्चारण के साथ बोल रही थीं जिसमें हर शब्द का अन्तिम हिस्सा गुब्बारे-सा उड़ता दिखायी देता था।

"मैं आपसे कहने आयी थी आज आप हमारे साथ चाय पीने चलियेगा ? ... हम लोग पास में ही रहते हैं।"

उनके स्वर में कोई संकोच या दिखावा नहीं था, जैसे वे मुझे मुद्दत से जानती हों।

मैं तैयार हो गया। मैं अरसे से किसी के घर नहीं गया था। अपने बेडसिटर से लायब्रेरी और पार्क तक परिक्रमा लगाता था। मैं लगभग भूल गया था कि उसके परे एक और दुनिया

है – जहाँ ग्रेता रहती होगी, खाती होगी, सोती होगी।

वह आगे-आगे चल रही थीं। कभी-कभी पीछे मुड़कर देख लेती थीं कि कहीं हम बहुत दूर तो नहीं छूट गये। उसे शायद कुछ अनोखा-सा लग रहा था कि मैं उसके घर आ रहा हूँ। अजीब मुझे भी लग रहा था – उसके घर आना नहीं, बल्कि उसकी माँ के साथ चलना। वे उम्र में काफी छोटी जान पड़ती थीं, शायद अपने कद के कारण। मेरे साथ चलते हुए वे कुछ इतनी छोटी दिखायी दे रही थीं कि भ्रम होता था कि मैं किसी दूसरी ग्रेता के साथ चल रहा हूँ।

रास्ते-भर वे चुप रहीं। सिर्फ जब उनका घर सामने आया, तो वे ठिठक गयीं।

"आप भी तो कहीं पास रहते हैं ?" उन्होंने पूछा।

"ब्राइट स्ट्रीट में", मैंने कहा, "ट्यूब स्टेशन के बिलकुल सामने।"

"आप शायद हाल में ही आये हैं ?" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "इस इलाके में बहुत कम इण्डियन रहते हैं।"

वे नीचे उतरने लगीं। उनका घर बेसमेण्ट में था और हमें सीढ़ियाँ उतरकर नीचे जाना पड़ा था। बच्ची दरवाजा खोलकर खड़ी थी। कमरे में दिन के समय भी अँधेरा था। बत्ती जलायी, तो तीन-चार कुर्सियाँ दिखायी दीं। बीच में एक मेज थी। जरूरत से ज्यादा लम्बी और नंगी – जैसे उस पर पिंग-पांग खेली जाती है। दीवार से सटा सोफा था, जिसके सिरहाने एक रजाई लिपटी रखी थी। लगता था, वह कमरा बहुत-से कामों के काम आता था, जिसमें खाना, सोना – और मौका पड़ने पर – अतिथि-सत्कार भी शामिल था।

"आप बैठिए, मैं अभी चाय बनाकर लाती हूँ।"

वे पर्दा उठाकर भीतर चली गयीं। मैं और ग्रेता कमरे में अकेले बैठे रहे। हम दोनों पार्क के पतझड़ी उजाले में एक-दूसरे को पहचानने लगे थे। पर कमरे के भीतर न कोई मौसम था, न कोई माया। वह अचानक एक बहुत कम उम्रवाली बच्ची बन गयी थी, जिसका जादू और आतंक दोनों झर गये थे।

"तुम यहाँ सोती हो ?" मैंने सोफे की ओर देखा।

"नहीं, यहाँ नहीं," उसने सिर हिलाया, "मेरा कमरा भीतर है – आप देखेंगे ?"

किचेन से आगे एक कोठरी थी, जो शायद बहुत पहले गोदाम रहा होगा। वहाँ एक नीली चिक लटक रही थी। उसने चिक उठायी और दबे कदमों से भीतर चली आयी।

"धीरे-से आइए – वह सो रहा है।"

"कौन ?"

"हिश ! " उसने अपना हाथ मुँह पर रख दिया।

मैंने सोचा, कोई भीतर है। पर भीतर बिलकुल सूना था। कमरे की हरी दीवारें थीं, जिन पर जानवरों की तस्वीरें चिपकी थीं। कोने में उसकी खाट थी, जो खटोला-सी दिखायी देती थी। तकिये पर थिगलियों में लिपटा एक भालू लेटा था, गुदड़ी के लाल-जैसा –

"वह सो रहा है।" उसने फुसफुसाते हुए कहा।

"और तुम?" मैंने कहा, "तुम यहाँ नहीं सोतीं?"

"यहाँ सोती हूँ। जब पापा यहाँ थे, तो वे दूसरे पलँग पर सोते थे। माँ ने अब उस पलँग को बाहर रखवा दिया है।"

"कहाँ रहते हैं वे?" इस बार मेरा स्वर भी धीमा हो गया, भालू के डर से नहीं, अपने उस डर से, जो कई दिनों से मेरे भीतर पल रहा था।

"अपने घर रहते हैं – और कहाँ?"

उसने तनिक विस्मय से मुझे देखा। उसे लगा, मैं पूरी तरह आश्वस्त नहीं हुआ हूँ। वह अपनी मेज के पास गयी, जहाँ उसकी स्कूल की किताबें रखी थीं। दराज खोला और उसके भीतर से चिट्ठियों का पुलिन्दा बाहर निकाला। पुलिन्दे पर रेशम का लाल फीता बँधा था, मानो वह क्रिसमस का कोई उपहार हो। वह उन्हें उठाकर मेरे पास ले आयी – सबसे ऊपरवाले लिफाफे पर लगा टिकट दिखाया।

"वे यहाँ रहते हैं।" उसने कहा।

मुझे याँद आया, वह मेरी नकल कर रही है – बहुत पहले पार्क में मैंने उसे अपने देश की चिट्ठी दिखायी थी।

बैठक से उसकी माँ हमें बुला रही थीं। आवाज सुनते ही वह कमरे से बाहर चली गयी।

मैं एक क्षण वहीं ठिठका रहा। खटोले पर भालू सो रहा था। दीवारों पर जानवरों की आँखें मुझे घूर रही थीं। बिस्तर के पास ही एक छोटी-सी बेसिनी थी, जिस पर उसका टूथ-ब्रश, साबुन और कंघा रखे थे।

बिलकुल मेरे बेड-सिट की तरह – मैंने सोचा। किन्तु मुझसे बहुत अलग। मैं अपना कमरा छोड़कर कहीं भी जा सकता था, उसका कमरा अपनी चीजों में शाश्वत-सा जान पड़ता था।

मेज पर चिट्ठियों का पुलिन्दा पड़ा था, रेशमी डोर में बँधा हुआ, जिसे जल्दी में वह अकेला छोड़ गयी थी।

"कमरा देख लिया आपने?" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा।

"यहाँ जो भी आता है, सबसे पहले उसे अपना कमरा दिखाती है।" वे कपड़े बदलकर आयी थीं। लाल छींट की स्कर्ट और खुला-खुला भूरे रंग का कार्डीगन। कमरे में सस्ती सेण्ट की गन्धें फैली थीं।

"आप चाय नहीं – दावत दे रही हैं।" मैंने मेज पर रखे सामान को देखकर कहा। टोस्ट, जैम, मक्खन, चीज़ – पता नहीं, इतनी सारी चीजें मैंने पहले कब देखी थीं।

"अस्पताल की कैण्टीन से ले आती हूँ – वहाँ सस्ते में मिल जाता है।"

वे परेशान लगती थीं। हँसती थीं, लेकिन परेशानी अपनी जगह कायम रहती थी। पता

नहीं, बच्ची कहाँ थी ? वे उसे चीखते हुए बुला रही थीं और चाय ठण्डी हो रही थी।

वे सिर पकड़कर बैठी रहीं। फिर याद आया, मैं भी हूँ। "आप शुरू कीजिए – वह बाग में बैठी होगी।"

"आपका अपना बाग है ?" मैंने पूछा।

"बहुत छोटा-सा, किचेन के पीछे। जब हम यहाँ आये थे, उजाड़ पड़ा था। मेरे पति ने उसे साफ किया। अब तो थोड़ी-बहुत सब्जी भी निकल आती है।"

"आपके पति यहाँ नहीं रहते ?"

"उन्हें यहाँ काम नहीं मिला – दिन-भर पार्क में घूमते रहते थे। वही आदत ग्रेता को पड़ी है…"

उनके स्वर में हल्की-सी थकान थी। खीज से खाली – लेकिन ऐसी थकान, जो पोली धूल-सी हर चीज पर बैठ जाती है।

"पार्क में तो मैं भी घूमता हूँ।" मैंने उन्हें हल्का करना चाहा। वे हो भी गयीं। हँसने लगीं।

"आपकी बात अलग है।" उन्होंने डूबे स्वर में कहा, "आप अकेले हैं। लेकिन लन्दन में अगर परिवार साथ हो, तो बिना नौकरी के नहीं रहा जा सकता।"

वे मेज की चीजें साफ करने लगीं। बर्तनों को जमा करके मैं किचन में ले गया। सिंक के आगे खिड़की थी, जहाँ से उनका बाग दिखायी देता था। बीच में एक वीपिंग-विलो खड़ा था, जिसकी शाखाएँ एक उल्टी छतरी की सलाखों की तरह झूल रही थीं।

पीछे मुड़ा तो वे दिखायी दीं। दरवाजे पर तौलिया लेकर खड़ी थीं।

"क्या देख रहे हैं ?"

"आपके बाग को… यह तो कोई बहुत छोटा नहीं है।"

"है नहीं – पर इस पेड़ ने सारी जगह घेर रखी है। मैं इसे कटवाना चाहती थी, लेकिन वह अपनी जिद पर अड़ गयी -- जिस दिन पेड़ काटना था, वह रात-भर रोती रही।"

वे चुप हो गयीं – जैसे उस रात को याद करना अपने में एक रोना हो।

"क्या कहती थी ?"

"कहती क्या थी – अपनी जिद पर अड़ी थी। बहुत पहले कभी इसके पापा ने कहा होगा कि पेड़ के नीचे समर-हाउस बनायेंगे – अब आप बताइए, यहाँ खुद रहने को जगह है नहीं, बाग में गुड़ियों का समर-हाउस बनेगा ?"

"समर-हाउस ?"

"हाँ, समर-हाउस – जहाँ ग्रेता अपने भालू के साथ रहेगी।"

वे हँसने लगीं – एक उदास-सी हँसी जो एक खाली जगह से उठकर दूसरी खाली जगह पर खत्म हो जाती है – और बीच की जगह को भी खाली छोड़ जाती है।

मेरे जाने का समय हो गया था – लेकिन ग्रेता कहीं दिखायी नहीं दी। हम सीढ़ियाँ

चढ़कर ऊपर चले आये। लन्दन की मैली धूप पड़ोस की चिमनियों पर रेंग रही थी।

जब विदा लेने के लिए मैंने हाथ आगे बढ़ाया, तो उन्होंने कुछ सकुचाते हुए कहा, "आप कल खाली हैं?"

"कहिए – मैं तकरीबन हर रोज खाली रहता हूँ।"

"कल इतवार है..." उन्होंने कहा, "ग्रेता की छुट्टी है, पर मेरी अस्पताल में ड्यूटी है। क्या मैं उसे आपके पास छोड़ सकती हूँ?"

"कितने बजे आना होगा?"

"नहीं, आप आने की तकलीफ न करें। अस्पताल जाते हुए मैं इसे लायब्रेरी के सामने छोड़ दूँगी... शाम को लौटते हुए ले लूँगी।"

मैंने हामी भरी और सड़क पर चला आया। कुछ दूर चलकर जेब से पैसे निकालेऔर उन्हें गिनने लगा। आज खाने के पैसे बच जायेंगे, यह सोचकर खुशी हुई। मैंने बची हुई रेजगारी को मुट्ठी में दबाया और घर की तरफ चलने लगा।

मैं लायब्रेरी के दरवाजे पर खड़ा था।

उन्हें देर हो गयी थी – शायद सर्दी के कारण। धूप कहीं न थी। लन्दन की इमारतों पर अवसन्न-सा आलोक फैला था – पीली और जर्द, जिसमें वे और भी दरिद्र और दुखी दिखायी देती थीं।

मुझे उनकी सफेद पोशाक दिखायी दी। दोनों पार्क से गुजरते हुए आ रहे थे। आगे-आगे वे और पीछे भागती हुई ग्रेता। जब उन्होंने मुझे देख लिया तो हवा में हाथ हिलाया, बच्ची को जल्दी से चूमा और तेज कदमों से अस्पताल की तरफ मुड़ गयीं।

किन्तु बच्ची में कोई जल्दी न थी। वह धीमे कदमों से मेरे पास आयी। सर्दी में नाक लाल-सुर्ख हो गयी थी। उसने पूरी बाँहोंवाला ब्राउन स्वेटर पहन रखा था – सिर पर वही पुरानी कैप थी, जिसे मैं पार्क में देखा करता था।

वह निढाल-सी खड़ी थी।

"चलोगी?" मैंने उसका हाथ पकड़ा।

उसने चुपचाप सिर हिला दिया। मुझे हल्की-सी निराशा हुई। मैंने सोचा था, वह पूछेगी, कहाँ – और तब मैं उसे आश्चर्य में डाल दूँगा। पर उसने पूछा कुछ भी नहीं और हम सड़क पार करने लगे।

जब हम पार्क को छोड़कर आगे बढ़े तो एक बार उसने प्रश्नभरी निगाहों से मेरी ओर देखा – जैसे वह अपने किसी सुरक्षित घेरे से बाहर जा रही हो। पर मैं चुप रहा – और उसने कुछ पूछा नहीं। तब मुझे पहली बार लगा कि जब बच्चे माँ-बाप के साथ नहीं होते तो सब प्रश्नों को पुड़िया बनाकर किसी अँधेरे गड्ढे में फेंक देते हैं।

ट्यूब में बैठकर वह कुछ निश्चिन्त नजर आयी। उसने मेरा हाथ छोड़ दिया और खिड़की के बाहर देखने लगी।

"क्या अभी से रात हो गयी ?" उसने पूछा।

"रात कैसी ?"

"देखो – बाहर कितना अँधेरा है।"

"हम जमीन के नीचे हैं।" मैंने कहा।

वह कुछ सोचने लगी, फिर धीरे-से कहा, "नीचे रात है, ऊपर दिन।"

हम दोनों हँसने लगे। मैंने पहले कभी ऐसा नहीं सोचा था।

धीरे-धीरे रोशनी नजर आने लगी। ऊपर आकाश का एक टुकड़ा दिखायी दिया – और फिर अथाह सफेदी में डूबा दिन सुरंग के बाहर निकल आया।

ट्यूब स्टेशन की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए वह रुक गयी। मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

"रुक क्यों गयीं !"

"मुझे बाथरूम जाना है।"

मुझे दहशत हुई। टॉयलेट नीचे था और वह इस तरह अपने को रोके बहुत दूर तक नहीं जा सकती थी। मैंने उसे गोद में उठा लिया और उलटे पाँव सीढ़ियों पर भागने लगा। गलियारे के दूसरे सिरे पर टॉयलेट दिखायी दिया – पुरूषों के लिए – मैं जल्दी से उसे भीतर ले गया। दरवाजा बन्द करके बाहर आया, तो लगा जैसे वह नहीं, मैं मुक्त हो रहा हूँ।

वह बाहर आयी तो परेशान-सी नजर आयी। "अब क्या बात है ?"

"चेन बहुत ऊँची है।" उसने कहा।

"तुम ठहरो, मैं खींच आता हूँ।"

उसने मेरा कोट पकड़ लिया। वह खुद खींचना चाहती थी। उसके साथ मैं भीतर गया, उसे दुबारा गोद में उठाया और तब तक उठाता गया, जब तक उसका हाथ चेन तक नहीं पहुँच गया। हम दोनों विस्मय से टॉयलेट में पानी को बहता देखते रहे, जैसे यह चमत्कार जिन्दगी में पहली बार देख रहे हों।

हम सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। ऊपर आये तो उसने कसकर मेरा हाथ भींच लिया। ट्रिफाल्गर स्कैयर आगे था, चारों तरफ भीड़, उजाला, शोर। मैं उसे आश्चर्य में डालना चाहता था। किन्तु वह डर गयी थी। वह इतना डर गयी थी कि मेरी इच्छा हुई कि मैं उसे दोबारा नीचे ले जाऊँ – ट्यूब-स्टेशन में, जहाँ जमीन का अपना सुरक्षित अँधेरा था।

लेकिन जल्दी ही डर बह गया – और कुछ देर बाद उसने मेरा हाथ भी छोड़ दिया। वह स्कैयर के अनोखे उजाले में खो गयी थी। वह उन शेरों के नीचे चली आयी थी, जो काले पत्थरों पर अपने पंजे खोलकर भीड़ को निहार रहे थे। बहुत-से बच्चे कबूतरों को दाना डाल रहे थे।

पंखों की छाया एक बादल-सा दिखायी देती थी, जो हवा में कभी इधर जाती थी, कभी

उधर – सिर के ऊपर से निकल जाती थी और कानों में सिर्फ एक गर्म, सनसनाती फड़फड़ाहट बाकी रह जाती थी।

वह सुन रही थी। वह मुझे भूल गयी थी।

मैं उसकी आँख बचाकर स्कैयर के बीच चला आया। वहाँ एक लाल लकड़ी का केबिन था, जहाँ दाने बिकते थे। एक कप दाने के दाम – चार पेंस। मैंने एक कप खरीदा और भीड़ में उसे ढूँढ़ने लगा।

बच्चे बहुत थे – कबूतरों से घिरे हुए। किन्तु वह जहाँ थी, वहाँ खड़ी थी। अपनी जगह से एक इंच भी न हिली थी। मैं उसके पीछे गया और दानों का कप उसके आगे कर दिया।

वह मुड़ी और हकबकाकर मेरी ओर देखा। बच्चे कृतज्ञ नहीं होते, सिर्फ अपना लेते हैं। एक तीसरी आँख खुल जाती है, जो सब चुप्पियों को काट देती है। उसने कप को लगभग मेरे हाथों से खींचते हुए कहा, "क्या वे आयेंगे ?"

"जरूर आयेंगे··· पहले तुम्हें एक-एक दाना डालना होगा – उन्हें पास बुलाने के लिए, फिर···"

उसने मेरी बात नहीं सुनी। वह उस तरफ भागती गयी, जहाँ इक्के-दुक्के कबूतर भटक रहे थे। शरू-शरू में उसने डरते हुए हथेली आगे बढ़ायी। कबूतर उसके पास आते हुए झिझक रहे थे, जैसे उसके डर ने उन्हें भी छू लिया हो। किन्तु ज्यादा देर वे अपना लालच नहीं रोक सके। नखरे छोड़कर पास आये – इधर-उधर देखने का बहाना किया – और फिर खटाखट उसकी हथेली से दाने चुगने लगे। वह अब अपनी फ्रॉक फैलाकर बैठ गयी थी। एक हाथ में दोना दूसरे हाथ में दाने। मैं अब उसे देख भी नही सकता था। पंखों की सलेटी, फड़फड़ाती छत ने उसे अपने में ढक लिया था।

मैं बेंच पर बैठ गया। फव्वारों को देखने लगा, जिनके छींटे उड़ते हुए घुटनों तक आ जाते थे। बादल इतने नीचे झुक आये थे कि नेल्सन का सिर सिर्फ एक काले धब्बे-सा दिखायी देता था।

दिन बीत रहा था।

कुछ ही देर में मैंने देखा, वह सामने खड़ी है।

"मैं एक कप और लूँगी।" उसने कहा।

"अब नहीं···" मैंने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "काफी देर हो गयी है। अब चाय पियेंगे – और तुम आइसक्रीम लोगी।"

उसने सिर हिलाया।

"मैं एक कप और लूँगी।"

उस स्वर में जिद नहीं थी। कुछ क्षण पहले जो पहचान आयी थी, वह मानो मुझसे नहीं, उससे आग्रह कर रही हो।

मैंने उसके हाथ से खाली कप लिया और दुकान की तरफ बढ़ गया। पीछे मुड़कर देखा। वह मुझे देख रही थी। मैं दुकान के पीछे मुड़ गया। वहाँ भीड़ थी और उसकी आँखें मुझ तक नहीं पहुँच सकती थीं। कोने में सिमटकर मैंने जेब से पैसे निकाले। चाय और आइसक्रीम के पैसे एक तरफ किये, ट्यूब के किराये के पैसे दूसरी तरफ – बाकी सिर्फ दो पेंस बचे थे। मैंने चाय के कुछ पेंस उसमें मिलाये और दुकान के आगे लगी क्यू में शामिल हो गया।

इस बार जब मैंने उसे कप दिया, तो उसने मुझे देखा भी नहीं। वह तुरन्त भागती हुई उस जगह चली गयी, जहाँ सबसे ज्यादा कबूतर इकट्ठा थे। अब उसका हौसला बढ़ गया था। और कबूतर भी उसे पहचानने लगे थे। वे आसपास उड़ते हुए कभी उसके हाथों, उसके कन्धों, उसके सिर पर बैठ जाते थे। वह हँसती जा रही थी, पीला चेहरा एक ज्वरग्रस्त खिंचाव में विकृत-सा हो गया था – और हाथ – वे हाथ, जो मुझे हमेशा इतने निरीह जान पड़ते थे – अब एक अजीब बेचैनी में कभी खुलते थे, कभी बन्द होते थे जैसे वे किसी भी क्षण कबूतरों की फड़फड़ाती मांसल धड़कनों को दबोच लेंगे। उसे पता भी न चला, कब दानों की कटोरी खाली हो गयी – वह कुछ देर तक हवा में हथेली खोले बैठी रही। सहसा उसे आभास हुआ, कबूतर उसे छोड़कर दूसरे बच्चों के आसपास मँडराने लगे हैं। वह खड़ी हो गयी और बिना कहीं देखे चुपचाप मेरे पास चली आयी।

वह एकटक मुझे देख रही थी। मुझे शक हुआ, वह मुझ पर शक कर रही है। मैं बेंच से उठ खड़ा हुआ।

"अब चलेंगे।" मैंने कहा।

"मैं एक कप और लूँगी।"

"अब और नहीं – तुम दो ले चुकी हो।" मैंने गुस्से में कहा, "तुम्हें मालूम है, हमारे पास कितने पैसे बचे हैं?"

"सिर्फ एक और – उसके बाद हम लौट जायेंगे।"

लोग हमें देखने लगे थे। मैं बहस कर रहा था – दानों की एक कटोरी के लिए। मैंने उसे उठाकर बेंच पर बिठा दिया, "ग्रेता, तुम बहुत जिद्दी हो। अब तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा।"

उसने ठण्डी आँखों से मुझे देखा।

"आप बुरे आदमी हैं। मैं आपके साथ कभी नहीं खेलूँगी।" मुझे लगा जैसे उसने मेरी तुलना किसी अदृश्य व्यक्ति से की हो। मैं खाली-सा बैठा रहा। कभी-कभी ऐसा होता है कि अपने लिए कोई उम्मीद नहीं रहती। सिर्फ घोर हैरानी होने लगती है, अपने होने पर, अपने होने पर ही हैरानी होने लगती है। फिर मुझे वह आवाज सुनायी दी, जो आज भी मुझे अकेले में सुनायी दे जाती है... और मुँह मोड़ लेता हूँ।

वह रो रही थी। हाथ में दानों का खाली कप था, और उसकी कैप खिसककर माथे पर चली आयी थी। वह चुप्पी का रोना था। अलग-अलग साँसों के बीच बिंधा हुआ। मुझसे वह

नहीं सहा गया। मैंने उसके हाथ से कप लिया और लाइन में जाकर खड़ा हो गया। इस बार पैसों को गिनना भी याद नहीं आया। मैं सिर्फ उसका रोना सुन रहा था, हालाँकि वह मुझसे बहुत दूर थी, और बीच में कबूतरों की फड़फड़ाहट और बच्चों की चीखों के कारण कुछ भी सुनायी नहीं देता था। पर इन सबके परे मेरे भीतर का सन्नाटा था, जिसके बीच उसकी रुँधी साँसें थीं – और वे मैं अन्तहीन दूरी से सुन सकता था।

किन्तु इस बार पहले-जैसा नहीं हुआ। बहुत देर तक कोई कबूतर उसके पास नहीं आया। उसकी अपनी घबराहट के कारण या घिरते अँधेरे के कारण – वे पास तक आते थे, लेकिन उसकी खुली हथेली की अवहेलना करके दूसरे बच्चों के पास चले जाते थे। हताश होकर उसने दानों की कटोरी जमीन पर रख दी और स्वयं मेरे पास बेंच पर आकर बैठ गयी।

उसके जाते ही कबूतरों का जमघट कटोरी के इर्द-गिर्द जमा होने लगा। कुछ देर बाद हमने देखा, दानों की कटोरी औंधी पड़ी है – और उसमें एक भी दाना नहीं है।

"अब चलोगी ?" मैंने कहा।

वह तुरन्त बेंच से उठ खड़ी हुई, जैसे वह इतनी देर से सिर्फ इसकी ही प्रतीक्षा कर रही हो। उसकी आँखें चमक रही थीं – एक भीगी हुई चमक – जो आँसुओं के बाद चली आती है।

उन दिनों ट्रिफाल्गर स्कैयर के सामने लायंस का रेस्तराँ होता था। गन्दा और सस्ता दोनों ही। सड़क पार करके हम वहीं चले आये।

इस बीच मैंने जेब में हाथ डालकर पैसों को गिन लिया था – मैंने उसके लिए दो टोस्ट मँगवाये, अपने लिए चाय। आइसक्रीम को भुला देना ही बेहतर था।

वह पहली बार किसी रेस्तराँ में आयी थी। गहरी उत्सुकता से चारों तरफ देख रही थी। मुझे लगा, कुछ देर पहले का सन्ताप घुलने लगा है। हम करीब-करीब दोबारा एक-दूसरे के करीब आ गये थे। लेकिन पहले-जैसे नहीं – कबूतरों की छाया अब भी हम दोनों के बीच फड़फड़ा रही थी।

"मैं क्या बहुत बुरा आदमी हूँ !" मैंने पूछा।

उसने आँखें उठायीं, एक क्षण मुझे देखती रही, फिर बहुत अधीर स्वर में कहा, "मैंने आपको नहीं कहा था।"

"मुझे नहीं कहा था ?" मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा, "फिर किसको कहा था ?"

"मि. टामस को – वे बुरे आदमी हैं। एक दिन जब मैं उनके घर गयी, वे डाँट रहे थे और मिसेज टामस बेचारी रो रही थीं।"

"ओह !" मैंने कहा।

"आप समझे – मैंने आपको कहा था ?"

वह हँसने लगी, जैसे मैंने सचमुच बड़ी मूर्खता की भूल की है – और उसकी हँसी देखकर, न जाने क्यों, मेरा दिल बैठने लगा।

"हम यहाँ फिर कभी आयेंगे ?" उसने कहा।

"गर्मियों में," मैंने कहा, "गर्मियों में टेम्स पर चलेंगे, वह यहाँ से बहुत पास है।"

"क्या वहाँ कबूतर होंगे ?" उसने पूछा।

मुझे बुरा लगा, जैसे कोई लड़की अपने प्रेमी की चर्चा बार-बार छेड़ दे। किन्तु मैं उसे दोबारा निराश नहीं करना चाहता था। गर्मियाँ काफी दूर थीं, बीच में पतझड़ और बर्फ के दिन आयेंगे – तब तक मेरा झूठ भी पिघल जायेगा, मैंने सोचा।

हम बाहर आये, तो पीला-सा अँधेरा घिर आया था। हालाँकि दोपहर अभी बाकी थी। उसने खोयी हुई आँखों से स्कैयर की तरफ देखा, जहाँ कबूतर अब भी उड़ रहे थे। मेरी जेब में अब उतने ही पैसे थे, जिनसे ट्यूब का किराया दिया जा सके। इस बार उसने कोई आग्रह नहीं किया। बच्चे एक सीमा के बाद, बड़ों की गरीबी न सही, मजबूरी सूँघ लेते हैं।

मैंने सोचा था, ट्रेन में बैठेंगे, तो मैं उससे समर-हाउस के बारे में पूछूँगा – उस विलो के बारे में भी, जो अकेला उसके बाग में खड़ा था। मैं उसे दोबारा उसकी अपनी दुनिया में लाना चाहता था – जहाँ पहली बार हम दोनों एक-दूसरे से मिले थे। पर ऐसा हुआ नहीं। सीट पर बैठते ही उसकी आँखें मुँदने लगीं। ट्रिफाल्गर स्कैयर से इसलिंग्टन तक का काफी लम्बा फासला था। कुछ देर बाद उसने मेरे कन्धों पर अपना सिर टिका लिया और सोने लगी।

इस बीच मैंने एक-आध बार उसके चेहरे को देखा था – मुझे हैरानी हुई कि सोते हुए वह हू-ब-हू वैसी ही लग रही है, जैसे पहली बार मैंने उसे देखा था पार्क में पेड़ों के बीच – तल्लीन और साबुत। कबूतरों के लिए जो भटकाव आया था, वह अब कहीं न था। आँसू कब के सूख चले थे। नींद में वह उतनी ही मुकम्मिल जान पड़ती थी, जितनी झाड़ियों के बीच और तब मुझे अजीब-सा विचार आया। पार्क में उसने कई बार मुझे पकड़ा था, किन्तु उसके सोते हुए तल्लीन चेहरे को देखकर मुझे लगा कि वह हमेशा से पकड़ी हुई लड़की है, जबकि मेरे-जैसे लोग सिर्फ कभी-कभी पकड़ में आते हैं और उसे इसका कोई पता नहीं है और यह एक तरह का वरदान है, क्योंकि दूसरों को हमेशा छूटने का, मुक्त होने का भ्रम रहता है, जबकि बच्ची को इस तरह की कोई आशा नहीं थी। तब पहली बार मैंने उसे छूने का साहस किया। मैं धीरे-धीरे उसके गालों को छूने लगा, जो आँसुओं के बाद गर्म हो आये थे, कुछ वैसे ही, जैसे बारिश के बाद घास की पत्तियाँ हो जाती हैं।

वह जगी नहीं। ट्यूब स्टेशन आने तक आराम से सोती रही।

उस रात बारिश शुरू हुई, सो हफ्ते-भर चलती रही। झूठी गर्मियों के दिन खत्म हो गये। सारे शहर पर पीली धुन्ध की परतें जमी रहतीं। सड़क पर चलते हुए कुछ भी दिखायी न देता – न पेड़, न लैम्प पोस्ट, न दूसरे आदमी।

मुझे वे दिन याद हैं, क्योंकि उन्हीं दिनों मुझे काम मिला था। लन्दन में वह मेरी पहली

नौकरी थी। काम ज्यादा था, लेकिन मुश्किल नहीं। एक पब में काउण्टर के पीछे सात घण्टे खड़ा रहना पड़ता था। बियर और लिकर के गिलास धोने पड़ते थे। ग्यारह बजे घण्टी बजानी पड़ती थी और पियक्कड़ लोगों को बाहर खदेड़ना पड़ता था। कुछ दिन तक मैं कहीं बाहर न जा सका। घर लौटता और बिस्तर पकड़ लेता, मानो पिछले महीनों की नींद कोई पुराना बदला निकाल रही हो। नींद खुलती, तो बारिश दिखायी देती, जो घड़ी की टिक-टिक की तरह बराबर चलती रहती। कभी-कभी भ्रम होता कि मैं मर गया हूँ – और अपनी कब्र की दूसरी तरफ से – बारिश की टप-टप सुन रहा हूँ।

लेकिन एक दिन आकाश दिखायी दिया – पूरा नहीं – सिर्फ एक नीली डूबी-सी फाँक – और उसे देखकर मुझे अकस्मात पार्क के दिन याद हो आये, यहूदी रेस्तराँ की बिल्ली और बाजार जाती हुई मिसेज टामस। वह मेरी छुट्टी का दिन था। उस दिन मैंने अपने सबसे बढ़िया कपड़े पहने और कमरे से बाहर निकल आया।

लायब्रेरी खुली थी। सब पुराने चेहरे वहाँ दिखायी दिये। पार्क खाली पड़ा था। पेड़ों पर पिछले दिनों की बारिश चमक रही थी। वे सिकुड़े-से दिखायी देते थे, जैसे आनेवाली सर्दियों की अफवाह उन्हें छू गयी हो।

मैं दोपहर तक प्रतीक्षा करता रहा। ग्रेता कहीं दिखायी न दी, न बेंच पर, न पेड़ों के पीछे। धीरे-धीरे पार्क का पीला, पतझड़ी आलोक मन्द पड़ने लगा। पाँच बजे अस्पताल का गजर सुनायी दिया और मेरी आँखें अनायास फाटक की ओर उठ गयीं।

कुछ देर तक कोई दिखायी नहीं दिया। फाटक के ऊपर लोहे का हैण्डिल शाम की आखिरी धूप में चमक रहा था। उसके पीछे अस्पताल की लाल ईंटोंवाली इमारत दिखायी दे रही थी। मुझे मालूम था, उन्हें घर जाने के लिए पार्क के बीच से निकलना होगा, किन्तु फिर भी मैं अनिश्चित निगाहों से कभी फाटक को देखता था, कभी सड़क को। यह खयाल भी आता था कि शायद आज उनकी ड्यूटी अस्पताल में न हो और वे दोनों घर में ही बैठे हों।

सड़क की बत्तियाँ जलने लगीं। मुझे अजीब-सी घबराहट हुई, जैसे प्रतीक्षा का अन्त आ पहुँचा है और मैं उसे टालता जा रहा हूँ। मैं बेंच से उठ खड़ा हुआ – खड़े होकर प्रतीक्षा करना ज्यादा आसान जान पड़ा। किन्तु तभी मुझे फाटक के निकट सरसराहट सुनायी दी। उनके चेहरे को बाद में देखा, उनकी सफेद पोशाक पहले दिखायी दी। वे तेज कदमों से पार्क के बीच पगडण्डी पर चल रही थीं। उन्होंने मुझे नहीं देखा था। यदि वे मेरी दिशा में आ रही होतीं, तो भी शायद धुँधलके में मुझे नहीं पहचान पातीं।

मैं भागता हुआ उनके पीछे चला आया।

"मिसेज पार्कर !" पहली बार मैंने उन्हें उनके नाम से बुलाया था।

वे ठहर गयीं और भौचक-सी मेरी ओर देखने लगीं। "आप यहाँ कैसे ?" अब भी वे अपने को नहीं सँभाल पायी थीं।

"मै यहाँ दोपहर से बैठा हूँ।" मैंने मुस्कराते हुए कहा।

वे हकबकाई-सी मुझे देख रही थीं। उन्होंने मुझे पहचान लिया था, लेकिन जैसे उस पहचान का मतलब नहीं टोह पा रही थीं। मै कुछ असमंजस में पड़ गया और सहज स्वर में पूछा, "आज आप इतनी देर से लौट रही हैं ? पाँच का गजर तो कब का बज चुका ?"

"पाँच का गजर ?" उन्होंने विस्मय से पूछा।

"आप हमेशा पाँच बजे लौटती थीं।" मैंने कहा।

"ओह !" उन्हें याद आया, जैसे मैं किसी प्रागैतिहासिक घटना का उल्लेख कर रहा हूँ।

"आप लन्दन में ही थे।" उन्होंने पूछा।

"मुझे काम मिल गया, इतने दिनों से इसलिए नहीं आ सका। ग्रेता कैसी है ?"

वे हिचकिचायीं – एक छोटे क्षण की हिचकिचाहट, जो कुछ भी मानी नहीं रखती – लेकिन शाम के धुँधलके में मुझे वह अपशकुन-सा जान पड़ी।

"मैं आपको बताना चाहती थी, लेकिन मुझे आपका घर नहीं मालूम था..."

"वह ठीक है ?"

"हाँ, ठीक है," उन्होंने जल्दी में कहा, "लेकिन वह अब यहाँ नहीं है। कुछ दिन पहले उसके पिता आये थे, वे उसे अपने साथ ले गये..."

मैं उन्हें देखता रहा। मेरे भीतर जो कुछ था, वह ठहर गया – मैं उसके भीतर था, उस ठहराव के, और वहाँ से दुनिया बिल्कुल बाहर दिखायी देती थी। मैंने कभी इतनी सफाई से बाहर को नहीं देखा था।

"कब की बात है ?"

"जिस दिन आप उसके साथ ट्रिफाल्गार स्कैयर गये थे – उसके दूसरे दिन ही वे आये थे... आप जानते हैं, उन्हें वहाँ काम मिल गया है।"

"और आप ?" मैंने कहा, "आप यहाँ अकेली रहेंगी ?"

"मैंने अभी कुछ सोचा नहीं है।" उन्होंने धीरे-से सिर उठाया, आवाज हल्के-से काँपती थी, और एक क्षण के लिए मुझे उनके चेहरे पर बच्ची दिखायी दी, ऊपर उठा हुआ होंठ और भीगी आँखें, हवा में उड़ते हुए कबूतरों को निहारती हुई।

"आप कभी घर जरूर आइयेगा..." उन्होंने विदा माँगी और मैंने हाथ आगे बढ़ा दिया। मैं बहुत दूर तक उन्हें देखता रहा। फिर काफी देर तक बेंच पर बैठा रहा। मुझे कहीं नहीं जाना था, न ही प्रतीक्षा करनी थी। धीरे-धीरे पेड़ों के ऊपर तारे निकलने लगे। मैंने पहली बार लन्दन के आकाश में इतने तारे देखे थे, साफ और चमकीले, जैसे बारिश ने उन्हें भी धो डाला हो।

"इट इज़ टाइम डियर !"

पार्क के चौकीदार ने दूर से ही आवाज लगायी। वह गेट की चाभियाँ खनखनाता हुआ पार्क का चक्कर लगा रहा था। टार्च की रोशनी में वह हर बेंच, झाड़ी और पेड़ के नीचे देख लेता

था कि कहीं कोई छूट तो नहीं गया – कोई खोया हुआ बच्चा, कोई शराबी, कोई घरेलू बिल्ली।

वहाँ कोई नहीं था। कोई भी चीज नहीं छूटी थी। मैं उठ खड़ा हुआ और गेट की तरफ चलने लगा। सहसा हवा उठी थी। हल्का-सा झोंका अँधेरे में चला आया और पेड़ सरसराने लगे। और तब मुझे धीमी-सी आवाज सुनायी दी, एक असीम आग्रह में लिपटी हुई – 'स्टॉप… स्टॉप…' मेरे पाँव बीच पार्क में ठिठक गये। चारों ओर देखा। कोई न था। न कोई आवाज, न खटका – सिर्फ पेड़ों की शाखाएँ हवा में डोल रही थीं। उस समय एक पगली-उत्कट, नंगी-सी, आकांक्षा मेरे भीतर जागने लगी कि यहीं बैठ जाऊँ। इन पेड़ों के बीच जहाँ मैं पहली बार पकड़ा गया था। मेरी अब और आगे जाने की इच्छा नहीं थी। मैं इस बार अन्तिम और अनिवार्य रूप में पकड़ लिया जाना चाहता था…

"इट इज़ क्लोज़िंग टाइम !" चौकीदार ने इस बार बहुत पास आकर कहा। मेरी तरफ जिज्ञासा से देखा कि क्या मैं वही आदमी हूँ, जो अभी कुछ देर पहले बेंच पर बैठा था।

इस बार मैं नहीं मुड़ा। पार्क से बाहर आकर ही साँस ली। मेरा गला सूख गया था और देह खोखली-सी जान पड़ती थी। पार्क में सामने पब की लालटेन झूलती दिखायी दी। मैंने जेब से पर्स निकाला, पैसे गिनने के लिए। पुरानी गरीबी की यह आदत अब भी बची थी। मैंने हैरानी से देखा कि मेरे पास पूरे दो पौण्ड हैं – और तब मुझे याद आया कि मैं इन्हें कबूतरों के दानों के लिए लाया था।

अन्तर

बस से उतरकर वह बाज़ार के चौराहे पर खड़ा हो गया। सामने टाउन हॉल की इमारत थी – लम्बी और भयावह। पहली मंजिल पर लम्बी, मैली खिड़कियाँ थीं, जिनके शीशों पर शाम की धूप और भी मैली दीख रही थी। उससे हटकर कुछ दुकानें थी – एक पब, एक नाई की दूकान और दो जनरल स्टोर। आगे छोटा-सा स्क्वयर था।

–आख़िरी बस कितने बजे जायेगी ? – उसने उसी बस के कण्डक्टर से पूछा जिसमें वह आया था।

– दस बजे··· कण्डक्टर ने उड़ती हुई निगाहों से उसे देखा और ओवरकोट की जेब से बियर की बोतल निकाल ली।

वह दूकानों की तरफ़ चला आया। वह यहाँ पहली बार आया था, किन्तु उसे विशेष अन्तर नहीं जान पड़ा। वह जब कभी प्राग से दूर छोटे शहरों में जाता था, वे उसे एक समान ही दिखायी देते थे। टाउन हॉल, चर्च और बीच में स्क्वयर और एक खली-सा उनींदापन।

हवा ठण्डी थी, हालाँकि मई का महीना आगे बढ़ चुका था। उसने अपने डफल बैग से मफलर निकाल लिया। दस्ताने उसके कोट की जेब में थे। वह अभी उन्हें नहीं पहनना चाहता था। उसकी पीठ पर स्लीपिंग-किट था। अगर कहीं रात की बस वह नहीं पकड़ सका, तो बाहर सो जायेगा। उसे होटल की अपेक्षा बाहर सोना हमेशा अच्छा लगता था – अगर ठण्ड ज्यादा न हो।

जब पिछली गर्मियों में वह उसके साथ मोराविया गयी थी, तो भी वे बाहर सोते थे। एक ही स्लीपिंग-किट में। वे इसी तरह सारा मोराविया घूम लिये थे। उसके साथ पहले-पहल उसे बाहर सोने की आदत पड़ गयी थी। होटल की जो बचत होती थी, उसे वे हमेशा बियर पर खर्च कर देते थे।

वह कुछ देर तक पिछली गर्मियों के बारे में सोचता रहा। फिर उसने मफलर को अच्छी तरह गले और कानों में लपेट लिया। ठण्ड काफी है – उसने सोचा – लेकिन वह असहनीय नहीं है।

असहनीय शायद कुछ भी नहीं है। उसके लिए भी नहीं। शुरू में वह बहुत डर गयी थी। अब वह ठीक होगी। अब कोई डर नहीं है``` उसने सोचा। अब बिलकुल कोई डर नहीं है – उसने दुबारा अपने से कहा।

वह कुछ देर तक खाद्य-पदार्थों के स्टोर के सामने खड़ा रहा, शो-विण्डों में गौर से देखता रहा, फिर कुछ सोचकर भीतर चला आया।

दूकान में 'सेल्फ़-सर्विस' थी। उसने 'काउण्टर' के नीचे से एक टोकरी निकाल ली। दोनों ओर लम्बी कतार में छोटे-बड़े टिन और डिब्बे रखे थे। इन दिनों ताज़े फल देखने को भी नहीं मिलते थे। उसने आडुओं और अनानास के दो टिन टोकरी में रख लिये। आधा किलो 'सलामी' और फ्रेंच पनीर की कुछ टिकियाँ भी लिफ़ाफ़े में बँधवा लीं। उसे 'फ्रेंच चीज़' हमेशा ही बहुत पसन्द थी। रात को जब कभी वह उसके कमरे में सोती थी, तो एक चूहे की तरह उसे बराबर कुतरती रहती थी।

स्टोर से बाहर निकलते हुए उसे कुछ याद आया और उसने दुबारा मुड़कर 'लीपा' का एक पैकेट खरीद लिया। अस्पताल में शायद उसके पास सिगरेट नहीं होगी – उसने सोचा।

सारा सामान उसने अपने डफल बैग में रख लिया। स्टोर से बाहर निकलकर उसे प्यास-सी महसूस हुई। समय काफ़ी है–उसने सोचा। ज़्यादा नहीं है, लेकिन वह छोटी बियर के लिए काफ़ी है। स्क्वयर पार करके वह 'पब' में चला आया।

वह बैठा नहीं। बार के काउण्टर के सामने खड़ा रहा।

– एक छोटी बियर – उसने कहा। बारमैन ने बिना उसकी ओर देखे एक मग बियर-नल के नीचे रख दिया। जब मग में झाग ऊपर चढ़कर बाहर फिसलने लगा, तब उसने नल की टोंटी बन्द कर दी। एक मैले तौलिये से मग को साफ़ किया और उसके सामने रख दिया।

उसने मग होंठों से लगा लिया। बियर कसैली और गुनगुनी-सी थी, फिर भी उसे बुरी नहीं लगी। बारमैन इस बीच जेब से एक सासेज़ निकालकर खाने लगा था। वह एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति था। उसकी नीली आँखें आँसुओं में तैर रही थीं।

– आप बता सकेंगे, अस्पताल किस तरफ़ है ? – उसने पूछा।

बारमैन ने गौर से उसकी ओर देखा, फिर उसकी आँखें उसके स्लीपिंग-किट पर ठिठक गयीं – क्या प्राग से आये हो ?

उसने सिर हिलाया।

वह तनिक सन्देह-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा।

– टाउन हॉल की दायीं तरफ``` सिमिट्री से ज़रा आगे। – उसने कहा।

– क्या ज़्यादा दूर है ? – उसने पूछा।

उसने आधी कुतरी हुई सासेज़ को अश्लील ढंग से ऊपर कर दिया – एक

किलोमीटर... उसने हँसते हुए कहा।

उसने उसे धन्यवाद दिया, तीन क्राउन का नीला नोट काउण्टर पर रखा और बिना चेंज की प्रतीक्षा किये बाहर चला आया।

बाहर वसन्त का चमकीलापन था... वैसा बोझिल नहीं जो गर्मियों में होता है... एक हल्का धुला-सा आलोक, जो लम्बी सर्दियों के बाद आता है।

दस मिनट का रास्ता था और वह तेज़ी से चल रहा था। उसे अब ज्यादा घबराहट नहीं थी। उसे अब उतनी घबराहट नहीं थी, जितनी बस में हो रही थी। बियर के बाद उसे हल्का-सा लग रहा था। स्क्वयर छोड़ने के बाद वह एक खुले रास्ते पर आ गया था। हवा ठहर गयी थी और कभी-कभी दूर के खेतों में ट्रैक्टर का घुर्र-घुर्र स्वर मक्खी की भिनभिनाहट-सा सुनायी दे जाता था।

सिमिट्री के पास आकर उसने सिगरेट जलायी, फिर डफल बैग को एक कन्धे से उतारकर दूसरे कन्धे पर लटका लिया। सिमिट्री के इर्द-गिर्द बर्वा के पेड़ थे और उनकी नई पत्तियाँ डूबती हुई धूप में झिलमिला रही थीं। कच्ची सड़क पर बर्फ के पिघलने से कहीं-कहीं दल-दल जमा हो गया था और उन पर मोटर लारियों और ट्रकों के निशान उभर आये थे। उसने अपने पैंट के पाँव ऊपर चढ़ा लिये – उसे खुशी हुई कि यहाँ उसे देखनेवाला कोई नहीं है। लेकिन वह उसे देखकर ज़रूर हैरान हो जायेगी। वह शायद खुश भी होगी, लेकिन उसके बारे में वह निश्चित नहीं था। उसने प्राग से आते समय उसे मना कर दिया था। वह नहीं चाहती थी कि किसी को कोई सन्देह हो सके। उन्होंने यह तय किया था कि वह दो दिन यहाँ अस्पताल में रहेगी, बाद में जब वह वापस प्राग आयेगी, तो किसी को भी कुछ पता नहीं चलेगा।

अस्पताल के गेट के सामने वह रुक गया। छोटी-सी पहाड़ी के ऊपर उसकी इमारत किसी कॉलेज होस्टल की तरह दिखायी दे रही थी – उतनी ही आत्मीय और निर्दोष। अस्पताल की इमारतों में अक्सर जो ठिठुरता हुआ नंगापन होता है, वह उसमें बिलकुल नहीं था।

उसने अपने पैंट के पाँयचे नीचे की ओर मोड़ दिये और दरवाज़ा खोलकर भीतर चला आया। सामने एक लम्बा कॉरीडोर था। बीच-बीच में फूलों के गमले रखे थे। साफ़-सुथरे फ़र्श पर कॉरीडोर के खम्भों की टेढ़ी छायाएँ धूप में खिंच आयी थीं।

ज़ीने के पास उसे एक बड़ा-सा डेस्क दिखायी दिया। ऊपर रिसेप्शन का साइन बोर्ड लगा था। उसके पीछे एक स्त्री नर्स की पोशाक में बैठी थी। वह अखबार पढ़ रही थी और उसका चेहरा नहीं देखा जा सकता था।

वह कुछ झिझकता हुआ डेस्क की ओर बढ़ा।

नर्स ने अखबार से सिर उठाकर उसकी ओर देखा

– किससे मिलना चाहते हैं?

उसने नाम बताया। उसे लगा वह नर्स ही नहीं है, नर्स की पोशाक में वह एक स्त्री भी है। इस ख़याल से उसे कुछ सान्त्वना-सी मिली।

उसने डेस्क की दराज़ से एक लिस्ट निकाली।

— मैटर्निटी वार्ड में ?··· उसने पूछा।

वह एक क्षण तक असमंजस में खड़ा रहा, फिर उसने माथे का पसीना पोंछा।

— मुझे यह नहीं मालूम। मैं पहली बार यहाँ आया हूँ। क्या आप लिस्ट में देख सकती है ? — उसने कहा। हालाँकि यह कहने की कोई ज़रूरत नहीं थी। वह पहले से ही लिस्ट देख रही थी।

— मैटर्निटी वार्ड में आपकी पत्नी का नाम नहीं है। — नर्स ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

— वह मेरी पत्नी नहीं है — उसने कहा—मेरा मतलब है, अभी तक हम विवाहित नहीं हैं···। उसने डेसपेरेट होकर मुस्कराने की कोशिश की। फिर उसे लगा कि यह स्पष्टीकरण न केवल निरर्थक है, बल्कि मूर्खतापूर्ण भी।

नर्स ने कुछ अजीब रूखे ढंग से उसकी ओर देखा और फिर धीरे-से अपने बाल पीछे समेट लिये।

— आपको मुझे यह पहले बता देना चाहिए था — उसने कहा। उसके स्वर में खीझ नहीं थी, सिर्फ एक ठण्डी-सी विरक्ति थी। उसने डेस्क के भीतर से दूसरी लिस्ट निकाल ली। एक बार फिर नाम पूछा।

वह चुपचाप प्रतीक्षा करने लगा।

— पहली मंजिल , दायीं तरफ़ सर्जिकल वार्ड — उसने सरसरी निगाहों से उसकी ओर देखा और फिर अखबार पढ़ने लगी।

वह गलियारे के अन्तिम छोर पर पहुँचकर सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। दोनों तरफ़ दरवाज़े खुले थे। औरतें अपनी जुपानों (लम्बी स्कर्ट) में बिस्तरों पर बैठी थीं। दरवाज़ों के बाहर रस्सी पर नायलान की जुराबें, ब्रेसियर और अण्डरवियर सूख रहे थे। हवा में एक खट्टी, गिलगिली-सी गन्ध ठहर गयी थी, जो अक्सर औरतों की घरेलू देहों या कपड़ों से आती है। लोहे की रेलिंग पर रेत से भरी हुई लाल, नीली बाल्टियाँ लटक रही थीं — शायद आग बुझाने के लिए — उसने सोचा।

जब वह सर्जिकल वार्ड की तरफ मुड़ा, उसे लगा जैसे किसी ने पीछे से उसका हाथ पकड़ लिया हो। वह तनिक चौंककर पीछे मुड़ा। एक लम्बे कद का हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति उसके सामने खड़ा था। उसने लम्बा सफेद कोट और पाजामा पहन रखा था, जो यहाँ डॉक्टरों की पोशाक होती है।

— किससे मिलना है ? — उसने पूछा।

उसने फिर नाम बताया।

– अच्छा··· लेकिन इसे यहीं छोड़ देना होगा। – उसने अँगूठे से उसके स्लीपिंग-किट की ओर इशारा किया।

उसने स्लीपिंग-किट पीठ से उतारकर एक कोने में रख दिया।

– इसमें क्या है? – उसने उसके डफल बैग की ओर देखा।

उसने चुपचाप कन्धे से बैग उतारकर उसके सामने रख दिया।

डाक्टर ने सरसरी निगाह से बैग में रखे डब्बों को देखा और फिर धीरे से हँस दिया।

– सो··· यू आर दि मैन – उसने अपनी भाषा छोड़कर अंग्रेज़ी में कहा।

– क्या मतलब?

– कुछ नहीं··· वह फिर अपनी भाषा पर उतर आया था।

– बेड न. 17··· सिर्फ़ आध घण्टे। वह अभी बहुत कमजोर है – उसने रूखे व्यावसायिक स्वर में कहा – तुम भीतर जा सकते हो।

लेकिन उसके बाद वह तुरन्त भीतर नहीं जा सका। कुछ देर तक वह डफल बैग को बच्चों की तरह दोनों हाथों में लेकर खड़ा रहा।

दरवाज़े के पास एक खाली ह्वील-चेयर थी। सामने एक बड़ा हॉल था। दोनों तरफ़ छोटे-छोटे क्यूबिकल थे और उनके बीच लम्बे गुलाबी रंग के पर्दे लटक रहे थे। हर क्यूबिकल के पीछे एक मद्धिम-सी रोशनी टिमटिमा रही थी। हॉल के एक कोने में स्ट्रेचर पड़ा था। उस पर कुछ रुई की गन्दी पट्टियाँ थीं–शायद कोई नर्स जल्दी में उन्हें उठाना भूल गयी थी।

वह भीतर चला आया। स्लीपिंग-किट उतारने के बाद उसे अपनी पीठ बहुत हल्की-सी लग रही थी। सत्रह नम्बर के आगे आकर खड़ा हो गया। भीतर निपट शान्ति थी। वह शायद सो रही थी··· उसने सोचा।

पहले क्षण में उसे वह दिखायी नहीं दी।

सामने एक बड़ा-सा बिस्तर था, बिल्कुल समतल और सफ़ेद। ऊपर दो लम्बी चादरें थीं और वे भी बिल्कुल सफ़ेद थीं। यह पता चलाना भी मुश्किल था कि सिरहाना किस तरफ़ है। बिस्तर पर कहीं भी कोई उतार-चढ़ाव नहीं था। एक क्षण के लिए उसे लगा, वह खाली है।

वह खाली नहीं था। चादर से उसका सिर बाहर आया, फिर आँखें। वह उसे देख रही थी, फिर एक छोटी-सी मुस्कराहट उसके होंठों पर सिमट आयी। वह पहचान गयी थी।

उसने आँखों से स्टूल की ओर इशारा किया। उस पर दूध से भरा एक कप रखा था।

– तुमने पिया नहीं? – उसने झुककर कहा।

– बाद में··· इसे नीचे रख दो।

उसने स्टूल बिस्तर के पास खिसका लिया।

– कब आये?

—अभी कुछ देर पहले ।

उसके होंठ जामुनी रंग के हो आये थे। जगह-जगह से लिपस्टिक की लाइन टूट गयी थी।

— कब हुआ ? — उसने पूछा।

— सुबह । अपना कोट उतार दो—उसने अपना कोट और डफल बैग उतारकर स्टूल के पीछे रख दिया। खिड़की बन्द थी। नीचे उसका सूटकेस पड़ा था, जो वह प्राग से अपने सा लायी थी।

— ज्यादा देर तो नहीं लगी ? — उसने पूछा।

— नहीं उन्होंने क्लोरोफार्म दे दिया था। मुझे कुछ भी पता नहीं चला।—उसने कहा।

— मैंने तुमसे कहा था कि तुम्हें कुछ भी पता नहीं चलेगा तुम मानती नहीं थीं। — उसने मुस्कराने की कोशिश की।

वह चुपचाप उसकी ओर देखती रही।

—मैंने तुमको आने के लिए मना किया था। — उसने कहा।

— मुझे मालूम है लेकिन अब मैं यहाँ हूँ।

वह बिस्तर पर झुक आया। उसने उसके भूरे बालों को चूमा फिर होंठों को। कमरे की गर्मी के बावजूद उसका चेहरा बिल्कुल ठण्डा था। वह चूमता रहा। वह तकिये पर सिर सीधा किये लेटी रही।

— तुम अब सुखी हो ? —उसका स्वर बहुत धीमा था।

—हम दोनों पहले भी सुखी थे। — उसने कहा।

— हाँ लेकिन अब तुम सुखी हो ?

— तुम जानती हो यह हम दोनों के लिए ठीक था मैंने तुमसे पहले भी कहा था।

चादर उसके वक्ष से नीचे खिसक आयी। उसने हरे रंग की नाइट-शर्ट पहन रखी थी। उस पर काले रंग के फूल थे। अपने कमरे में उन फूलों को देखकर उसकी देह में मीठा-सा तनाव उत्पन्न हो जाता था। अब वे उसकी आँखों को चुभ रहे थे।

— यह क्या है ? — उसने डफल बैग की ओर देखा।

— कुछ नहीं । मैंने कुछ चीज़ें यहाँ खरीद ली थीं। —वह बारी-बारी से हर चीज़ को बैग से निकालकर बिस्तर पर रखने लगा—आडू और अनानास के टिन, सलामी, फ्रेंच पनीर, लीपा का पैकेट।

— तुम एक पनीर अभी लोगी ?

— नहीं बाद में — वह बिस्तर पर बिखरी चीज़ों को देखती रही।

— इन दिनों तुम्हें खाने-पीने की लापरवाही नहीं करनी चाहिए। — उसने कहा।

—वहाँ किसी ने मेरे बारे में पूछा तो नहीं था ?

— नहीं किसी को नहीं मालूम कि तुम यहाँ हो। — उसने कहा। वह कुछ देर तक आँखें

मूँदकर लेटी रही। उसके बाल पहले भी छोटे थे··· तकिये पर सटे रहने के कारण अब वे और भी सिमट आये थे। पिछली गर्मियों में उसने उन्हें काले शेड में रँगा लिया था– सिर्फ़ उसे खुश करने के लिए। उसे ज्यादा अच्छे नहीं लगे थे। तब वे फिर धीरे-धीरे भूरे हो चले थे, हालाँकि अब भी कहीं बीच-बीच में काला शेड दिखायी दे जाता था।

– तुम्हें थकान लग रही है ? – उसने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। – नहीं··· । उसने उसकी ओर देखा। फिर उसका हाथ चादर के नीचे घसीट लिया। धीरे-धीरे वह उसे अपने पेट पर ले गयी।

– कुछ फ़र्क लगता है ? – उसने पूछा। उसका हाथ उसके नंगे, गरम पेट पर पड़ा रहा।

– तुम्हें कोई तकलीफ़ तो नहीं है ?

– नहीं – वह धीरे-से हँस पड़ी – अब मुझे बड़ा हल्का-सा लग रहा है। अब यहाँ कुछ भी नहीं है – उसने उसकी ओर देखा··· उसके होंठों की रूखी लिपस्टिक रोशनी में चमक रही थी। उसने धीरे-से अपना हाथ बाहर खींच लिया।

– तुम्हें ज़्यादा नहीं बोलना चाहिए – उसने कहा।

– मुझे बड़ा हल्का-सा लग रहा है – उसने कहा।

– डॉक्टर ने तुमसे कुछ कहा था ?

– नहीं··· लेकिन एक महीना पहले आ जाती, तो इतनी कमज़ोरी नहीं होती।

– तुम्हें काफ़ी कमज़ोरी महसूस हो रही है ? – उसने पूछा।

– नहीं, मुझे बड़ा हल्का-सा लग रहा है।

– मैंने तुमसे पहले भी जल्दी आने के लिए कहा था··· लेकिन तुम टालती रहीं।

– तुम हर बात पहले से ही ठीक कहते हो – उसने कहा।

वह चुप रहा और दूसरी ओर देखने लगा।

– तुमने बुरा मान लिया ? – वह कुहनी के सहारे बैठकर उसकी ओर देखने लगी।

– नहीं··· लेकिन तुम्हें ज़्यादा नहीं बोलना चाहिए – उसने उसके बालों को सहलाते हुए कहा।

– देखो··· अब कोई फिक्र नहीं है – उसने कहा – अब मैं ठीक हूँ।

–लेकिन तुम अब भी उसके बारे में सोचती हो – उसने कहा।

–मैं किसी के बारे में नहीं सोचती – उसने कहा। फिर उसने उसके कोट के बटन खोल दिये।

–तुमने स्वेटर नहीं पहना ? – उसने पूछा।

–आज ज़्यादा सरदी नहीं थी – उसने कहा। वे कुछ देर तक चुप रहे। बीच में नर्स आयी थी। वह ब्लौंड थी और देखने में काफ़ी खुशमिज़ाज-सी जान पड़ती। उसने उन दोनों को देखा, फिर वह बिस्तर के पास चली आयी।

– तुम्हें अभी इस तरह नहीं बैठना चाहिए – नर्स ने उसका सिर तकिये पर टिका दिया। फिर उसने एक नज़र उसकी ओर देखा।

– इन पर ज़्यादा स्ट्रेन डालना ठीक नहीं होगा।

– मैं कुछ देर में चला जाऊँगा – उसने कहा।

नर्स ने बिस्तर पर बिखरी चीज़ों को देखा। वह उसकी ओर मुड़ी और मुस्करा दी – आपको भविष्य में सावधान रहना चाहिए – उसने कहा। उसके स्वर में हल्का-सा मज़ाक था। वह चुप रहा और दूसरी ओर देखने लगा। जाते हुए वह ठहर गयी।

– तुम्हारे पास रुई काफी है ? – उसने पूछा।

– हाँ, धन्यवाद सिस्टर – उसने कहा। नर्स बाहर चली गयी।

– तुम ज़रा दूसरी तरफ़ मुड़ जाओ – उसने धीरे-से कहा। वह तकिये के नीचे से कुछ निकाल रही थी।

– मैं बाहर चला जाता हूँ – उसने कहा।

– नहीं, इसकी कोई ज़रूरत नहीं। सिर्फ़ अपना सिर मोड़ लो।

वह पीछे दीवार की ओर देखने लगा। उसे बहुत पहले की रातें याद हो आयीं, जब वह उसके कमरे में बिस्तर से उठकर कपड़े पहनती थी और वह दीवार की ओर मुँह मोड़कर उसके स्कर्ट की सरसराहट सुनता रहता था। – बस˙˙˙ ठीक है – उसने कहा।

उसने स्टूल मोड़कर उसके सिरहाने के पास खिसका दिया। हवा में हल्की-सी गन्ध थी, जो क्लोरोफार्म की गन्ध से अलग जान पड़ती थी। उसकी आँखें अनायास पलँग के नीचे चिलमची पर पड़ गयीं˙˙˙ उसमें खून में रँगी बहुत-सी पट्टियाँ पड़ी थीं। यह खून उसका हो सकता है, उसे विश्वास नहीं हो सका।

– क्या तुम्हें अब भी˙˙˙ वह बीच में रुक गया।

– नहीं˙˙˙ अब बहुत कम आ रहा है।

उसने झुककर चिलमची को पलँग के पीछे खिसका दिया।

–तुम्हारे पास सिगरेट है ? – उसने पूछा। वह फिर लेट गयी।

उसने लीपा की डिब्बी से दो सिगरेटें निकालकर मुँह में रख लीं। दोनों को दियासलाई से जलाया और उनमें से एक उसे दे दी।

– तुम यहाँ सिगरेट पी सकती हो ?

– नहीं˙˙˙ लेकिन कोई देखता नहीं – उसने एक लम्बा, गहरा कश लिया। धुआँ बाहर निकलते समय उसके नथुने धीरे-से काँप रहे थे। फिर उसने उसे चिलमची में फेंक दिया।

–मैं पी नहीं सकती – एक पतली कमज़ोर-सी मुस्कराहट उसके होंठों पर सिमट आयी। उसने चिलमची से सिगरेट निकालकर बुझा दी। सिगरेट के एक सिरे पर उसकी लिपस्टिक का निशान जमा रह गया था।

– तुम अब एक पनीर लोगी ?

– नहीं``` तुम्हें अब जाना चाहिए।

– मैं चला जाऊँगा, अभी समय है।

उसने अपनी आँखें मूँद ली थीं। लम्बी, भूरी पलकें उसके पीले चेहरे पर मोम की गुड़िया की पलकों-सी दिखायी दे रही थीं।

–तुम्हें क्या नींद आ रही है ? – उसने धीमे स्वर में पूछा।

– नहीं```उसने आँखें खोल दीं। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर वह उसे धीरे-धीरे मसलने लगी।

– मैंने सोचा था, तुम आओगे – उसने कहा।

वह चुपचाप उसे देखता रहा।

– सुनो``` अब हम पहले की तरह रह सकेंगे – उसके स्वर में हल्का-सा विस्मय था।

– तुम्हें याद है``` उसने उसका हाथ दबाकर कहा – पिछली गर्मियों में हम इटली जाना चाहते थे``` अब हम वहाँ जा सकते हैं।

– अब हम कहीं भी जा सकते हैं – उसने उसकी ओर देखा – अब कोई झंझट नहीं है।

उसे फिर उसका स्वर कुछ अजीब-सा लगा, लेकिन वह मुस्करा रही थी और तब उसका मन फिर आश्वस्त हो गया।

कॉरीडोर में ह्वील-चेयर के पहियों की चरमराहट सुनायी दी थी``` पास के क्यूबिकल में कोई ऊँचे स्वर में चीख रहा था। किसी स्त्री ने परदा उठाकर भीतर झाँका था, लेकिन उसे वहाँ बैठा देखकर वह हड़बड़ाकर वापस मुड़ गयी थी।

उसने घड़ी देखी और फिर वह ओवरकोट पहनने लगा।

– तुम्हें ये चीज़ें खा लेनी होंगी``` उसने अंग्रेजी में कहा।

उसने सिर हिलाया – तुम समझीं, जो मैंने कहा ?

–तुमने कहा, तुम्हें ये चीज़ें खानी होंगी – उसने अंग्रेज़ी में उसका वाक्य दुहरा दिया। वे धीरे-से हँस पड़े।

उसने अपना मफलर गले में बाँध लिया। खाली डफल बैग को कन्धे पर लटकाकर वह स्टूल से उठ खड़ा हुआ – तुम अब जाओगे ?

– हाँ, लेकिन कल मैं इसी वक्त आऊँगा – उसने कहा। वह अपलक उसकी ओर देखती रही – इधर आओ – उसने कहा।

वह सिरहाने के पास झुका। उसने अपनी देह से चादर हटा दी और दोनों हाथों से उसका चेहरा अपने वक्ष पर खींच लिया।

– कोई आ जायेगा – उसने धीरे-से कहा।

– आ जाने दो – उसने कहा।

कुछ देर बाद जब वह बाहर आया, बसन्त की रात झुक आयी थी। हवा में धरती की सोंधी-सी गन्ध का आभास था। उसने निश्चिन्त होकर ठण्डी ताजी हवा में साँस ली। अस्पताल के उसं तंग, जरूरत से ज़्यादा गर्म क्यूबिकल के बाद उसे बाहर का खुलापन बहुत सुखद प्रतीत हो रहा था। उसने घड़ी देखी। अभी दस मिनट बाकी थे। उसे हल्की-सी खुशी हुई कि वह प्राग जाने से पहले एक बियर पी सकेगा।

कुछ देर तक वह पलँग पर आँखें मूँद लेटी रही। जब उसे निश्चय हो ग़या कि वह अस्पताल से दूर जा चुका है, तो वह धीरे-से उठी। खिड़की खोल दी। बाहर अँधेरे में उस छोटे-से शहर की बत्तियाँ जगमगा रही थीं। उसे प्राग में अपने होस्टल का कमरा याद हो आया। वह सिर्फ दो दिन पहले उसे छोड़कर आयी थी। लेकिन उसे लग रहा था, जैसे तब से एक लम्बी मुद्दत गुज़र गयी है। वह कुछ देर तक वहीं निश्चल खड़ी रही। मैटर्निटी वार्ड से किसी बच्चे की रिरियाने की आवाज़ सुनायी दी थी, फिर सब ख़ामोश हो गया।

वह चुपचाप बिस्तर के पास चली आयी। अपने सूटकेस से एक पुराना तौलिया निकाला। फिर उसमें करीने से उन सब चीज़ों को लपेटा, जो वह उसके लिए छोड़ गया था। खिड़की के पास आकर उसने उन्हें बाहर अँधेरे में फेंक दिया।

जब वह वापस अपने बिस्तर के पास आयी, तो उसका सिर चकराने लगा। स्टूल पर लीपा का पैकेट अब भी पड़ा था। उसने एक सिगरेट सुलगायी, लेकिन उसे उसका स्वाद फिर अजीब-सा लगा। उसे फ़र्श पर बुझाकर वह पलँग पर लेट गयी। एक छोटा-सा गरम आँसू उसकी आँखों की कोरों से बहता हुआ उसके बालों में खो गया, किन्तु पता नहीं चला। वह आराम से सो रही थी।

दो घर

बीच सड़क पर उनकी पुकार सुनायी दी । हकबकाकर मैंने चारों तरफ देखा । पहली निगाह में अधूरी-सी पहचान आयीं और फिर वे खुद दौड़ती हुई मेरी तरफ चली आयीं ।

हम आमने-सामने खडे रहे । वे हाँफती रहीं । बन्द कमरे की स्मृति को खुली सड़क पर खोलो, तो सिवाय विस्मय के कुछ हाथ नहीं आता। उन्हें सिर्फ एक बार भीतर घर में देखा था – साड़ी में । अब वे स्कर्ट पहने थीं, कन्धे पर सब्जी-सामान का झोला था, बालों पर स्कार्फ । दुपहर की धूप में उनका चेहरा बिलकुल साफ और उजला – बिलकुल निस्पन्द लग रहा था ।

उन्होंने कुछ नही कहा । मेरा हाथ पकड़ा और लगभग घसीटते हुए मुझे फुटपाथ पर ले गयीं ।

"मैं दो बार आपके घर गयी थी – दोनों बार ताला लगा था ।" उन्होंने पर्स से रूमाल निकाला और माथा पोंछने लगीं ।

जब आदमी बीच में पकड़ा जाता है, तो सबकुछ बताता है – कुछ अपनी खिसियाहट छिपाने, कुछ आगे का रास्ता टटोलने । मैं भी उन्हें अनावश्यक विस्तार से सबकुछ बताने लगा – अपनी यात्राओं के बारे में, उन सब शहरों के बारे में, जहाँ-जहाँ मैं गया था ; बिना इस चीज़ का ध्यान किये , कि वे एकटक अपलक आँखों से मुझे घूरे जा रही हैं – सुन कुछ भी नहीं रहीं । वे सचमुच कुछ भी नहीं सुन रही थीं ।

मेरे दिल में उनके प्रति जो रूखापन था, नापसन्दगी तक को छूता हुआ, वह एकदम ऊपर सरक आया ।

"आपके बच्चे ..." अचानक कुछ याद आया, हल्की-सी पीड़ा उठी । मैंने उसे दबाया नहीं, "आपके बच्चे ठीक हैं ?"

एक लावारिस-सी हँसी उनके चेहरे पर आयी । उन्होंने मेरा हाथ छोड़ दिया । मुझे हैरानी हुई कि वे अब तक मेरा हाथ पकड़े थीं ।

"आपको तकलीफ देनी थी ।" उन्होंने एक बार फिर माथा पोंछा, मानो पसीने के बहाने परेशानी सोखना चाहती हों, "कलकत्ते से चिट्ठियाँ आती हैं । मैं एक लफ़्ज भी नहीं पढ़

सकती ... '' वे बीच में ही रुक गयीं । हड़बड़ाते हाथों से अपना पर्स खोलने लगीं । मैंने जल्दी से उनका हाथ पकड़ लिया ।

''अभी नहीं ... '' मैंने कहा, ''एक दिन घर आऊँगा ।'' उन्होंने आँखें ऊपर उठायीं । धूप की रोशनी दो डबडबाते धब्बों में बँटकर उनकी आँखों से बाहर झाँकने लगी । न कातरता, न अवसाद । सिर्फ दो उद्भ्रान्त-सी निगाहें मुझ पर गड़ी थीं ।

''आप आयेंगे ?'' उनके स्वर में सन्देह उतना नहीं, जितना विस्मय था, ''यहाँ कोई हिन्दुस्तानी नहीं, जिसके पास जा सकूँ ।''

एक बार इच्छा हुई, उन्हें आश्वासन दूँ । उन्हें आश्वासन देकर मैं खुद अपने बोझ से छुटकारा पा लेना चाहता था। किन्तु इतनी भीड़, इतने कोलाहल में कोई भी दिलासे की चीज़ नहीं निकल सकी।

धीरे-धीरे भीड़ में उनका चेहरा खो गया । उनके छितरे बालों पर कसा हुआ भूरे रंग का स्कार्फ, कन्धे पर लटकता हुआ झोला, घुटनों के नीचे खिसकती हुई पुराने तर्ज की स्कर्ट । कुछ व्यक्ति होते हैं, जिनका चेहरा खो जाता है – उनकी वेशभूषा आखीर तक अटकी रहती है – या चेहरा खोता नहीं, सिर्फ उनकी वेशभूषा के आईने से वह देखा जा सकता है । पहले दिन जब उनसे मिला था ...

लेकिन वह बिलकुल अलग दिन था । मुझे उस शहर में रहते सिर्फ कुछ अरसा गुज़रा था । पहली बार विदेश में यों भी अकेलापन खटकता है – फिर वे ढलते पतझर के दिन थे । घर और बाहर के बीच समूचा शहर एक पीली छाया-सा फैला रहता । नदी-किनारे बेंचों पर बैठा-बैठा जब ऊब आता, तो किसी कंसर्ट-हॉल में शरण पाने की इच्छा होती । उन दिनों बाख या मोत्सार्ट के प्रति इतना लगाव नहीं था, लालसा सिर्फ यह थी कि सड़कों के ठण्डे परायेपन से कुछ देर के लिए छुटकारा पा सकूँ । मैं अक्सर ऐसी सीट चुनने की कोशिश करता कि अगर सो भी जाऊँ, तो भद्र पड़ोसियों के रसास्वादन में कोई खलल न पड़ सके ।

उस शाम कौन-सा प्रोग्राम रहा होगा, यह मुझे ठीक से याद नहीं । इण्टरवल होने पर मैं कंसर्ट-हॉल के रेस्तराँ में ही कॉफ़ी पीने चला आया । यहाँ बहुत अधिक भीड़ थी । लम्बी क्यू से बचने के लिए मैं बाहर गलियारे में चला आया । वहाँ काफी कम लोग थे, हालाँकि सर्दी ज़्यादा थी । थोड़ा-सा सो लेने के बाद मैं फिर जीवन्त महसूस करने लगा था – बाकी प्रोग्राम को सुनने की इच्छा जगने लगी थी ।

वे मुझे बहुत देर से देख रहे थे, यह बाद में पता चला । मुझे उनकी उपस्थिति का एहसास भी न था । मैं गलियारे के लम्बे शीशों के बाहर देख रहा था, जहाँ शुरू शाम का हल्का-सा अँधेरा था । पीछे नदी थी, जो पतझर की इकट्ठा होती धुन्ध में छिप गयी थी ; किन्तु जिसके होने का एहसास बराबर बना था । मुझे तब सहसा अपने कन्धे पर हल्का-सा दबाव महसूस हुआ ।

मैं पीछे मुड़ता, इससे पहले ही उनकी आवाज़ सुनायी दी – "ज़रा सुनिए ... आप इण्डियन हैं ?"

उनका यह प्रश्न अपने बेलौस नंगेपन में अब भी ज्यों-का-त्यों टँगा है।

"मैंने आपको पहचाना नहीं ।" मैंने झिझकते हुए उनकी ओर देखा। वे बहुत छोटे कद के दुबले-पतले आदमी थे – साँवला तीखा चेहरा, जिस पर शर्म या असमंजस की कोई शिकन नहीं थी।

"मैंने भी नहीं ... " उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "यहाँ कोई हिन्दुस्तानी नहीं आता। आप अकेले खड़े थे।"

उनकी आँखें बराबर मुझे नाप रही थीं ... लेकिन उनमें अनुभव नहीं था। वे न विचलित करती थीं, न अपनी तरफ खींचती थीं। सिर्फ उनकी मुस्कराहट में एक उदासीन धुँधुआते किस्म की गर्मी थी, जो अपने देश की याद दिलाती थी।

"आपको यहाँ देखकर काफी हैरानी हुई।" उन्होंने कहा।

"किसलिए ?" मैंने खुद हैरान होकर पूछा।

"आप पहले हिन्दुस्तानी हैं जिनसे यहाँ मिला हूँ।"

"आप अक्सर यहाँ आते हैं ?"

"शुरू में बहुत आता था ... आप जानते हैं, शुरू में हर हिन्दुस्तानी भूखे भेड़िये की तरह घूमता है।" वे धीरे-से हँसे, जिसमें खुशी नहीं थी ... सिर्फ पास आने की कोशिश थी।

"आप काफ़ी अरसे से यहाँ हैं ?" मैंने पूछा।

"नौ साल ... " इस बार उन्होंने मुझे न देखकर मुझसे परे देखा ... जैसे अचानक उनकी दिलचस्पी मुझमें बुझ गयी हो। एकदम अजनबी स्वर में पूछा, "आपने बुरा तो नहीं मान लिया ... न जान, न पहचान, आपको यूँ ही रोक लिया ?"

मैंने विरोध किया, तो कुछ ढीले पड़े।

"लगता है, आप बिलकुल नये हैं ?"

अपने लिए 'नया' शब्द मुझे कौतूहलपूर्ण लगा, लेकिन उनके स्वर में कोई व्यंग्य नहीं था – कम-से-कम उस क्षण मुझे नहीं लगा। वे शायद कुछ और पूछते, एक अतृप्त, भूखी-सी जिज्ञासा अब भी उनके चेहरे पर थी, लेकिन उसी समय इण्टरवल की घण्टी सुनायी दी।

"कंसर्ट के बाद मिलेंगे। मैं यहीं आपका इन्तजार करूँगा।"

बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वे भीतर जानेवाली भीड़ में मिल गये। मैं कुछ देर अपनी सिगरेट पूरी करने को सूने गलियारे में खड़ा रहा। कुछ लोग अपने को दूसरों पर थोप देते हैं – उनमें ऐसा कुछ नहीं था फिर भी उनके स्वर में कुछ ऐसा आग्रह था, जो मुझे आखीर तक बेचैन करता रहा। अपनी सीट पर दुबारा लौटकर भी देर तक मैं उनसे छुटकारा नहीं पा सका। उनसे दुबारा मिलने की उत्सुकता कहीं भीतर-ही-भीतर मर गयी।

किन्तु वे नहीं भूले थे। कंसर्ट खत्म होने पर जब बाहर आया, तो वे भीड़ से अलग दरवाज़े पर खड़े थे। मुझे देखकर धीरे-से मुस्कराये। कहा कुछ नहीं – चुपचाप मेरे साथ बाहर चले आये।

ट्राम-स्टेशन जाने का एक ही रास्ता था। इसलिए साथ चलने में कोई दुविधा नहीं पड़ी – न मुझे, न शायद उन्हें। हम अँधेरे में चलते रहे। ठण्ड काफी थी। पेड़ों के नीचे शान्ति थी... हवा का निशान नहीं था, इसलिए जो पत्ते नंगी शाखाओं पर अधमरे लटके थे, उनके गिरने की कोई आशंका नहीं थी।

"आप यहाँ अकेले ही रहते हैं?"

"जी..." मैंने कहा।

"तब तो आपको घर लौटने की जल्दी नहीं होगी।" उनके स्वर में आश्वासन था, जैसे रात अभी शुरू हुई हो और वे वर्षों बाद मुझसे मिले हों।

"आपका तो यह पहला पतझड़ होगा।" उन्होंने कहा।

"हाँ... इस शहर में।" मैंने कहा।

"मैं जब शुरू में आया था, तो मुझे बहुत अजीब लगा था। अपने देश में पत्ते कब उगते हैं, कब झरते हैं, पता नहीं चलता। यहाँ एक बाढ-सी आ जाती है – मैं उन दिनों आप ही की तरह अकेला था। आज भी जब कभी नंगे पेड़ों के नीचे चलता हूँ, तो शुरू का महीना याद हो आता है।"

"काफ़ी अरसा हो गया आपको..." मैंने कहा, " बीच में कभी देश लौटना नहीं हुआ?"

वे चुप रहे, सिर्फ थोड़ी-सी देर तक, लेकिन अँधेरे में चलते हुए लगा, मानो वे बहुत देर से चुप हैं। फिर सहसा वे बीच फुटपाथ पर ठहर गये, जैसे सोचने का सिलसिला एक्र गाँठ में अटक गया हो।

"लौटना कोई आसान है... आप ही बताइए?"

मैं भी ठहर गया था। इच्छा हुई, उनका चेहरा देख सकूँ, लेकिन अँधेरे में एक मटियाली छाँह के अलावा कुछ भी दिखायी नहीं दिया।

"यहाँ पास ही एक बहुत पुरानी पब है... मैं तो पीता नहीं, लेकिन अगर आप कुछ देर के लिए बैठना चाहें..." वे बीच में रुक गये, मानो मुझे थाह रहे हों कि मैं कितने पानी में हूँ।

मैं एकदम कृतज्ञ-सा हो आया। घर लौटने की जल्दी नहीं थी, लेकिन मेरे लिए इस तरह सर्दी में चलते रहना भी दूभर था। अब मुझे उनके साथ रहना भी नहीं अखर रहा था... एक सीमा के बाद हम दूसरों के साथ रहकर भी अपने में सुरक्षित रह लेते हैं।

वे शहर की तरफ जानेवाली एक सँकरी गली में मुड़ गये। मैं उनके पीछे-पीछे चलने लगा। उनकी चाल-ढाल से लगता था, कि वे शहर के हर राज-मिराज को पहचानते हैं। किन्तु

जब वे एक अधेड़ खण्डहरनुमा इमारत के सामने आकर रुक गये, तो मुझे उनकी पहचान पर हल्का-सा सन्देह हुआ। उन्होंने मुड़कर मेरी तरफ देखा, "पुरानी जगह है··· अठारहवीं सदी से यहाँ बियर बनती है। मैं अरसे से यहाँ आता हूँ।"

बात सचमुच सही थी। भीतर आते ही लगा, वे घरेलू घेरे में चले आये हैं। वेटर से लेकर हर मेज़ के पियक्कड़ उन्हें जानते थे। जब वे उनसे बात कर रहे थे, मैं अपने चारों तरफ देखने लगा। दीवारों पर शेर-चीतों के भूसा-भरे सिर मेरी ओर ताक रहे थे··· छत की शहतीरों पर बरसों का धुआँ चिपका था। काउण्टर के ऊपर मैडोना की एक बहुत जर्द, फटी-पुरानी तस्वीर थी···

वे आये तो उनका चेहरा दमक रहा था, "बहुत पुराने दोस्त हैं, बरसों से इन्हें जानता हूँ।" कंसर्ट-हॉल के गलियारे में जो झिझक उनके चेहरे पर देखी थी, अब वह एक हौसले में बदल गयी थी – वे बिलकुल दूसरे आदमी लग रहे थे।

उन्होंने मेरे लिए बियर मँगवायी, अपने लिए नींबूवाली चाय। मुझे कुछ संकोच-सा हुआ – वे ऐसे व्यक्ति नहीं लगते थे, जो परहेज में विश्वास रखते हों। परहेजी लोग दूर से ही पहचान लिये जाते हैं – कम-से-कम मैं हमेशा पहचान लेता हूँ।

"आप यहाँ यह पीने आते हैं ?" मैंने कुछ हँसी में कहा।

"हमेशा से नहीं··· " उन्होंने कहा, "डॉक्टरों ने बिलकुल मना किया है··· पुरानी लत है, इसलिए कभी-कभी यहाँ चला आता हूँ।"

पब की रोशनी ज़्यादा नहीं थी, लेकिन जितनी थी, उसमें उनका नाक-नक्श उभर आया था। कभी बहुत कोमल चेहरा रहा होगा। अब चारों तरफ खुश्की थी – हालाँकि आँखों में अब भी डूबा जा सकता था। बहुत घनी पलकें थीं, आसपास के साँवले घेरों को सँभालती हुई – लेकिन अब वे खुद आँखों पर बोझ जान पड़ती थीं।

"आप बिलकुल नहीं पियेंगे ?" अकेले पीना यों भी जबर्दस्ती जान पड़ती है, किसी दूसरे के साथ तो लगभग दयनीय-सा लगता है।

"डॉक्टरों ने कहा है, कि अब केवल अपने जोखिम पर पी सकता हूँ··· " वे ज़ोर से हँसे, "जैसे पहले कभी दूसरों के जोखिम पर पीता था। अस्पताल में था, तो सिगरेट तक पर मनाही थी।"

मैंने जोर नहीं डाला, लेकिन वे अस्पताल में थे, यह बात मुझे बहुत दूर ले गयी। "पूरे साल-भर"··· उन्होंने बताया। कलकत्ता से आने के कुछ महीनों बाद ही बीमार पड़ गये··· "फेफड़ों का रोग था। पहले साल किसी सेनेटोरियम में रहना पडा। उसके बाद अलग-अलग अस्पतालों में··· अब भी बहुत मुश्किल से पीछा छुड़ाकर भागा हूँ।" उन्होंने हल्के अन्दाज में कहा, किन्तु एक महीन-सी अपराध-भावना उनके चेहरे पर सिमट आयी।

कंसर्ट-हॉल में जो बेचैनी आयी थी, वह अब क्षीण पड़ने लगी, लेकिन बिलकुल बुझी नहीं

थी। वे अब अजनबी नहीं थे। सिर्फ बाहर के आदमी थे, अस्पताल की दुनिया से इस दुनिया में लौटे हुए। शायद वे लोग, जो बहुत-से अकेले दिन जेल या अस्पताल या पहाड़ों पर गुजारकर लौटते हैं। उसकी छाया उनके चेहरों पर हमेशा मँडराती रहती है।

मुझे चुप देखकर वे बहुत आत्मीय ढंग से मुस्कराये – पहली बार मुझे उनकी आँखों में अजीब-सी व्यथा दिखायी दी।

"अब मैं ठीक हूँ।" उन्होंने कहा, "कलकत्ते में होता, तो कब का किनारे लग गया होता।"

"क्या बहुत तकलीफ रहती थी ?"

"तकलीफ... " उन्होंने धीरे-से मेरे शब्द को दुहराया। कई शब्द पुराने होने पर भी दूसरे के मुँह से पारदर्शी जान पड़ते हैं – जैसे उस एक शब्द के पीछे समूची जिन्दगी का नक्शा टँगा हो। न जाने क्यों, मैं स्वयं अपने शब्द के सामने बहुत छोटा-सा पड़ गया।

"नहीं... मेरा भाग्य काफी अच्छा है।" उन्होंने कहा, "एक महिला मिल गयी जो अस्पताल में ही काम करती थीं। उन्होंने मेरी बहुत मदद की... एक तरह से कहिए तो उन्होंने मुझे बचा लिया। अब वे..." वे थोड़ी देर ठिठके, फिर धीरे-से कहा, "अब वे मेरी पत्नी हैं। पहला हिन्दुस्तानी था, जिससे वे मिली थीं... आपको अजीब नहीं लगता ?"

"नहीं।" वह मेरी दूसरी बियर थी और मैं धीरे-धीरे उस छायादार सीमा पर पहुँचने लगा था, जहाँ या तो एक साथ बहुत-सी चीज़ें अजीब लगती हैं, या कुछ भी अजीब नहीं लगता। मुझे उनकी बात सुनकर सुखद आश्चर्य जरूर हुआ था कि वे उतने अकेले नहीं हैं, जितना मैंने सोचा था। गृहस्थी चाहे दूसरे की हो, खुद अपने को गरमायी पहुँचाने लगती है।

"आपको थोड़ी-बहुत हैरानी जरूर हुई होगी ?" उन्होंने मेरी ओर देखा।

"किस बात की हैरानी ?"

"यही कि... इतनी रात गये मैं आपके साथ बैठा हूँ।" वे थोड़ा-सा हिचकिचाये, मानो अपनी शर्मिन्दगी का एहसास उन्हें मुझसे ज्यादा हो, "जब से अस्पताल से लौटा हूँ, घर में बैठना असम्भव लगता है। वे ड्यूटी पर चली जाती हैं, बच्चे खेलने चले जाते हैं। अपना शहर होता, तो बात दूसरी होती... यहाँ कुछ भी समझ में नहीं आता।"

"आप घर क्यों नहीं लौट जाते ?"

मैंने साहस करके पूछा – ऐसा साहस, जो सिर्फ पीने के बाद आता है और दुबारा कभी नहीं लौटता।

"घर..." उन्होंने भयभीत दृष्टि से मेरी ओर देखा, "कौन-सा घर ! मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

वे मेरे इतने नजदीक थे कि मैं अलग हो गया। एक क्षण ऐसा आता है, जब हम भय की गन्ध पा लेते हैं, जानवरों की तरह। बीच की धुन्ध कट जाती है। यह मौका होता है, उस गन्ध के

साथ-साथ अँधेरी खोह में जाने का, जहाँ दूसरे जुआ खेलते हैं। उस रात मैं बीच में ही रुक गया, मानो उन्होंने अपनी बाजी मुझे दिखायी हो, और मैंने आँखें फेर ली हों।

"आप कुछ और पियेंगे ?" उन्होंने बहुत ही औपचारिक स्वर में कहा... शायद उन्होंने मेरा पीछे हटना देख लिया था।

"नहीं... अब चलना चाहिए।" मैं उठ खड़ा हुआ। उन्होंने बिल चुकाया और हम बाहर चले आये।

बाहर सबकुछ उजाड़ था। दुकानें बन्द हो गयी थीं। सिर्फ उनकी नियॉन-लाइट्स में गली का कूड़ा-कचरा दिखायी दे जाता था। इक्के-दुक्के शराबी स्क्वायर की सीढ़ियों पर बैठे गा रहे थे।

बड़ी सड़क तक हमें साथ जाना था। मैं सर्दी से बचने के लिए जल्द-से-जल्द ट्राम-स्टेशन पहुँच जाना चाहता था। वे बिलकुल चुप थे। अँधेरे में केवल उनकी बोझिल साँसें सुनायी दे जाती थीं। सूनी गलियों में हमें खुद अपने कदमों की गूँज भयावह जान पड़ रही थी।

आखिर मोड़ पर आकर वे सहसा खड़े हो गये।

"आप इस वक्त घर ही जायेंगे ?" उन्होंने अपनी आवाज़ को जरूरत से ज्यादा सहज बनाकर पूछा।

"जी...।"

"मेरा घर यहाँ से बहुत पास है..."

मैं तब भी कुछ नहीं समझ सका।

"वे घर में ही होंगी... आप उनसे नहीं मिलेंगे ?"

"इस वक्त ?"

"वे इसी वक्त अस्पताल से लौटती हैं। उन्हें आपसे मिलकर बहुत खुशी होगी।"

वही भींचता-सा आग्रह – जैसे उन्हें अँधेरे में अकेला छोड़कर मैं न केवल उन्हें जोखिम में डाल रहा हूँ, बल्कि खुद खतरा मोल ले रहा हूँ।

"मैं किसी और दिन आऊँगा... जब उनकी छुट्टी होगी।" वे अँधेरे में मुझे देखते रहे।

"पता आपको याद रहेगा ?"

"मुझे मालूम है... भूलूँगा नहीं।"

मेरे स्वर में विश्वास इतना नहीं था, जितना अपने को बचाने की कोशिश थी।

वह कोशिश कितनी बेकार थी, यह उस रात मैं नहीं समझा था। मैं कुछ जल्दी पहुँचा था। सोचा था, मकान ढूँढ़ने में देर लगेगी। देर कुछ भी न लगी। स्क्वायर और नदी के बीच उनका मकान था। मैं सीधे रास्ते पर वहाँ चला आया था। कभी-कभी पराये शहरों में यह होता है कि गलियों के शोर से गुजरते हुए अचानक किसी ऐसे चौराहे पर पहुँच जाते हैं, जहाँ एकदम खामोशी होती

है – मानो आवाज़ों का सिरा बीच में टूट गया हो। वहीं उसी टूटे हुए सिरे के पास उनका घर था।

मैं शायद उसे अनदेखा कर देता, अगर वे मुझे दिखायी न दे जाते, धूप में खेलते हुए। बच्ची मुश्किल से छह-सात बरस की रही होगी, छोटा लड़का मुँह पलटकर बैठा था, जिससे उसकी उम्र का अन्दाज एकदम न हो सका। पिता का नाम सुनते ही बच्ची बीच खेल में ठिठक गयीं। असीम उत्सुकता से मेरी ओर देखा। बोली कुछ नहीं, हाथ के इशारे से मुझे दरवाज़ा दिखाया और जब तक मैं भीतर नहीं चला गया, मुझे लगता रहा, उसकी आँखें मेरी पीठ पर जमी हैं।

जब कभी मैं उस दिन के बारे में सोचता हूँ, मुझे हमेशा वह अवसन्न पतझड़ी धूप याद हो आती है, स्क्वायर के बीच खेलते हुए वे दोनों बच्चे, और तब मुझे अपनी पीठ जलती-सी जान पड़ती है।

घण्टी बजायी। दरवाज़ा खुलने पर सारा घर खाली दिखायी दिया। वे भी नहीं, जिन्होंने दरवाज़ा खोला था। सिर्फ एक बासी गन्ध थी, जो अकसर उन घरों में होती है, जो अधिकांश समय बन्द रहते हैं – एक घरेलू हवा, जिससे घर के प्राणी अपरिचित रहते हैं, किन्तु जो बाहर के आदमियों को सहसा पकड़ लेती है।

"माफ कीजिए... मैं अभी आती हूँ।"

भीतर कमरे से आवाज़ सुनायी दी – एक औरत की आवाज. अगर चेहरा न भी दिखायी दे, तो भी जानने का सिलसिला शुरू हो जाता है।

मैं बैठा नहीं। अपनी जगह बनाने के लिए चीज़ों की जगह बिगाड़नी पड़ती – और वहाँ हर जगह चीज़ें थीं। कोच पर बच्चों की किताबें, कुर्सियों पर कपड़े, फर्श पर आधा सिमटा हुआ कूड़ा। मैं सचमुच समय से पहले आ गया था।

"वे आते होंगे... उन्होंने मुझे आपके बारे में सब बता दिया था।"

उन्होंने कमरे में आते ही मुझसे कहा। उनकी साँस चढ़ आयी थी। हालाँकि वे सिर्फ एक कमरे से दूसरे कमरे में आयी थीं।

"मैं शायद जल्दी आ गया।"

"नहीं... बल्कि उन्हें आपको जल्दी आने के लिए कहना चाहिए था। आजकल एकदम अँधेरा घिर आता है।"

"कहीं बाहर गये हैं?"

"अभी आते होंगे। आपको मकान ढूँढने में तो तंगी नहीं हुई?" चेहरे पर परेशानी थी, जो स्थायी जान पड़ती थी। वे तनिक घबरायी आँखों से मुझे और आसपास की चीज़ों को देख रही थीं, मानो वे अपने घर में न होकर किसी परायी जगह बैठी हों।

मैं जब पीछे मुड़ता हूँ, तो उनका चेहरा याद नहीं आता, जैसा पहले-पहल देखा था। एक

रीते अवसाद का अनुभव होता है – काफी हद तक बेमानी – क्योंकि अजनबियों से मिलकर खुशी होती है या झिझक, अवसाद के लिए जगह नहीं होती। शायद इसलिए कि पहली बार एक सफेद महिला को साड़ी में देखा था, तीखा, फूहड़ किस्म का गुलाबी रंग, जो किसी से मेल न खाता था, न उनकी घबराहट से, न मेरी औपचारिकता से। यह साड़ी शायद उन्होंने मुझे दिखाने के लिए पहनी है, यह सन्देह बार-बार मुझे उनकी दृष्टि से दयनीय-सा बना देता था।

"आप हाल ही में हिन्दुस्तान से आये हैं ?"

"एक महीना पहले ... आपके पति मिल गये, वरना मैं यहाँ किसी को न जानता था।"

"मेरे पति !" एक क्षण के लिए उनका चेहरा कस गया, फिर अचानक वे हँस पड़ीं। "हाँ ... वे चुन-चुनकर हिन्दुस्तानियों को पकड़कर लाते हैं, जो जहाँ मिल जाता है।"

उनके स्वर में हल्का-सा व्यंग्य था – खास मेरे प्रति नहीं, समूची स्थिति पर, जिसका मैं अंश था। वे गौर से मुझे देख रही थीं – एकबारगी नहीं – बार-बार। मानो अपने पति के 'हिन्दुस्तानियों' में मेरा दर्जा तौल रही हों।

"बच्चे आपके हैं – बाहर ?" मैंने पूछा।

"कौन-से बच्चे ?" उन्होंने सशंकित दृष्टि से मेरी ओर देखा।

"खेल रहे हैं।" मैंने कहा, "बड़ी लड़की ने ही मुझे आपका घर दिखाया था।"

"ओह सच ?" वे हँसने लगीं, "अपर्णा होगी, छोटे भाई के साथ।" उन्होंने इतनी लापरवाही से कहा, कि लगा, जैसे वे किसी दूसरे के बच्चों की चर्चा कर रही हों।

"आप चाय लेंगे या कुछ और ?"

"अभी कुछ नहीं, उन्हें आने दीजिए।" मैंने कहा।

"वे कब आयेंगे, आपको मालूम है ?"

मैंने आश्चर्य से उनकी ओर देखा, "नहीं ... मैंने सोचा था, वे घर में होंगे।"

"घर में होना चाहिए था – हैं नहीं।" वे धीरे-से हँसी, "आपसे सचमुच कुछ नहीं कहा ? वे काफी देर तक आपके साथ बैठे रहे थे।" वे एकटक मुझे ताक रही थीं। पहली बार वे उम्र में बहुत पकी-सी जान पड़ीं। चेहरे पर आँखों के नीचे दो-तीन झुर्रियाँ गढ़ी थीं, पुरानी शिकायतों की तरह।

"आप जानती हैं, हम सिर्फ एक बार मिले थे।" मैंने कहा।

"एक बार काफी है ... वे सबको बताते हैं।" उन्होंने धीरे-से कहा। इस बार उनके स्वर में व्यंग्य-आरोप कुछ भी न था – सिर्फ यह एक हठीली-सी थकान थी, जो पीछा नहीं छोड़ती "मैंने सोचा, आपको भी कुछ-न-कुछ बताया होगा।" उन्होंने कहा।

"अपनी बीमारी के बारे में ?"

"हाँ उसके बारे में भी। देश लौटने के बारे में कुछ नहीं कहा ?"

उन्होंने मुझ पर आँखें उठायीं, एक भेदिये की तरह जैसे मैं कुछ छिपा रहा हूँ। कोई ऐसी

बात, जिसे वे जानती हैं, फिर भी मेरे मुँह से सुनना चाहती हैं। मेरे पास कहने को कुछ भी न था।

"आपसे सचमुच और कुछ नहीं कहा ?" इस बार सन्देह उतना नहीं, जितना भय था, वह भय मुझे भी छू गया।

"नहीं, विश्वास कीजिए, और कुछ नहीं।"

कुछ देर तक हम ऐसे ही अनिश्चित खामोशी के झिलमिले में बैठे रहे। बाहर बच्चों की आवाज़ें सुनायी दीं, तो वे चौंककर खड़ी हो गयीं।

"देखिए, बैठे-बैठे अँधेरा हो गया और कुछ पता भी न चला।"

उन्होंने कमरे की बत्ती जलायी – शाम के धुँधलके में हम अनायास आत्मीय-से हो आये थे। अब रोशनी में फिर नये सिरे से अजनबी हो गये। वे भीतर चली गयीं।

सहसा जबर्दस्त इच्छा हुई कि चुपके से बाहर निकल जाऊँ। उन्हें कुछ भी पता न चलेगा। फिर अपने पर ही ग्लानि हुई... इस तरह चोरों की तरह भाग जाना ! मैं अपने को दबाये बैठा रहा।

समूचे घर में सन्नाटा था। बाहर हवा चलती, तो दीवार पर टँगा कैलेंडर खड़खड़ाने लगता। किसी हिन्दुस्तानी फर्म का कैलेंडर था, शिव-पार्वती का ओज-भरा पोज। मेंटल-पीस पर अगरबत्तियों का बण्डल, काली घाट के चित्र। शेल्फ में बंगला पुस्तकें। नजर जहाँ जाती थी, कोई हिन्दुस्तानी चीज़ दिखायी दे जाती। विदेशी घरों में वे जरूरत से ज्यादा 'हिन्दुस्तानी' जान पड़ती थीं। कोने में तानपूरा रखा था – धूल में अटा हुआ। शायद बहुत अरसे से उसे छेड़ा नहीं गया था।

दरवाजा खुला, तो देहरी पर वे दिखायी दिये। कोई अन्तर नहीं था। कपड़े वही थे, जो उस शाम कंसर्ट-हॉल में देखे थे, जो न नये दीखते हैं, न कभी मैले होते हैं।

"देर से बैठे हैं – वे कहाँ हैं ?"

"अभी भीतर गयी हैं... आती होंगी...."

"अच्छा तो आपकी मुलाकात हो गयी।" उन्होंने उड़ती निगाह से मुझे देखा। कन्धे के थैले उतारकर कोने में रख दिये।

"आप ऊब तो नहीं गये ? कैसी लगीं आपको ?"

"कौन ?" मैंने बिना कुछ सोचे-समझे कहा।

"मेरी पत्नी और कौन ? उन्हें हिन्दुस्तानियों से मिलने का शौक है। मैंने भी सोचा, आपसे मन भरकर बातें कर लें।" उन्होंने जिज्ञासा-भरी निगाहों से मेरी ओर देखा – और तब अचानक मुझे लगा, उनकी दृष्टि में वही सन्देह और भय था, जो कुछ देर पहले उन महिला की आँखों में देखा था।

"वे कभी हिन्दुस्तान नहीं गयीं।" उन्होंने धीरे-से कहा। फिर कुर्सी पर बैठ गये।

भीतर रसोई में सन्नाटा था। आस-पड़ोस की आवाज़ें भी बुझ गयी थीं। केवल दीवार पर कैलेंडर की खड़खड़ाहट सुनायी दे जाती थी।

कुछ देर बाद दोनों बच्चे आये। छोटा लड़का एक क्षण भी न ठहरा, सीधा भागता हुआ रसोई में घुस गया, बड़ी बहन ठिठकी थी – कुछ आश्चर्य से अपने पिता को देख रही थी, मानो उनका इस वक्त घर में होना कोई अनहोनी बात हो।

"नाम बताओ।" उन्होंने उसे अपने पास खींच लिया।

"अपर्णा" उसने धीरे-से कहा।पहली बार मैं समझा नहीं और उसे दो बार अपना नाम दुहराना पड़ा··· दोनों बार उतने ही धीमे स्वर में, जितना पहली बार।

"बंगाली आती है ?" मैंने पूछा। वह चुपचाप मेरी ओर देखती रही।

"अभी समझती नहीं··· माँ की भाषा बोलती है।" उन्होंने उसे अपने से सटा लिया, "जब छोटी थी, मैं अस्पताल में था। कुछ भी सिखाने का मौका नहीं मिला।"

बिजली की रोशनी में उसका साँवला रंग बहुत धुला-धुला-सा लग रहा था, बाल और भौंहें भी पिता पर गये थे। सिर्फ आँखें और ठुड्डी के नीचेवाली कठोरता माँ की याद दिलाती थी।

"कुछ बोलोगी नहीं ? वे समझेंगे तुम गूँगी हो।" उन्होंने धीरे-से उसके बालों को सँवारा। बोली वह फिर भी नहीं, सिर्फ आँखें झपकी थीं – हम दोनों को अपने भीतर समेटते हुए।

मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसने उसे वहीं रहने दिया, न विरोध किया, न अपनी तरफ खींचा – मानो इतनी देर से वह इस संकेत की प्रतीक्षा कर रही हो।

"कई बार इच्छा हुई है, इन सबको कलकत्ता ले जाने की···" वे बराबर उसके बालों को सहला रहे थे···भूली, खोयी हुई अँगुलियों से, जो अपने आप चलती रहती हैं।

"ले क्यों नहीं जाते ?" मैंने कहा, "आपको भी लम्बा अरसा हो गया है।"

"हर साल सोचता हूँ··· फिर अगले साल के लिए टल जाता है।"

"इन्हें शौक है जाने का ?"

"शौक नहीं पागलपन !" वे हँसने लगे, "हर साल प्रतीक्षा करते हैं, माँ और बच्चे, जैसे कलकत्ता मेरा नहीं, इनका शहर हो !"

बच्ची का हाथ गुमसुम मेरी हथेली पर टिका था। पता नहीं, उसे हमारी बातें कहाँ तक समझ में आ रही थीं। शायद वह सुन भी नहीं रही थी – सिर्फ एकटक उस चेहरे को निहार रही थी, जो उसके पिता का चेहरा था।

रसोई से उनकी आवाज़ सुनायी दी, और हम सब भीतर चले आये। खाने का कमरा और भी छोटा था, किन्तु मेज और कुर्सियाँ न होने के कारण खुला-खुला-सा लग रहा था। हम नीचे चटाई पर ही बैठ गये।

वे सब चीज़ों को एक साथ ले आयी थीं। एक खोयी-सी निर्जनता अब भी उनके चेहरे पर थी – लेकिन अब पहले की-सी परेशानी नहीं थी। पसीने की बूँदों और रसोई की गरमाई ने उन्हें घरेलू-सा बना दिया था। पहली बार वे मुझे आकर्षक जान पड़ीं और यह मैं कभी न जान पातीं, अगर उनकी बच्ची को इतने पास से न देखा होता। हम अक्सर बच्चों में माँ-बाप को देखने के इतने आदी हो जाते हैं कि जब खुद माँ-बाप में उनके बच्चों की झलक दिखायी दे जाती है, तो हमेशा आश्चर्य होता है।

"आपने यह सब बनाया है ?"

वे हँसने लगीं, "इन्होंने सब सिखाया है, मुझे तो कुछ भी नहीं आता था।" ढेर-सा सामान था – ताहिरी, मछली का झोल, पुदीने की चटनी। अरसे बाद मुझे हिन्दुस्तानी खाना नसीब हुआ था।

"मुझे डर था, आपको कुछ पसन्द नहीं आयेगा।" उन्होंने झिझकते हुए मेरी ओर देखा, "यहाँ मिर्च-मसाले कुछ नहीं मिलते।"

पसन्द की बात बिलकुल नहीं थी। सिर्फ एक हल्की-सी उदासी घिर आयी थी, जो अजनबी स्थान में अक्सर जानी-पहचानी चीज़ों के साथ अपने-आप चली आती है।

दोनों बच्चे पिता के इर्द-गिर्द बैठ गये थे। मुझे भ्रम हुआ कि वे माँ की अपेक्षा उनके अधिक निकट हैं... शायद इसलिए कि वे अधिकांश समय घर के बाहर रहते थे।

"दोनों दिन-भर आपस में ही खेलते हैं..." उन्होंने कहा, "मैंने इनकी टीचर से शिकायत की, लेकिन वहाँ सुनता कौन है।"

"शिकायत कैसी ?" मैंने पूछा।

"दूसरे बच्चे इन्हें चिढ़ाते हैं। कहते हैं, ये जिप्सी हैं।" वे हँसने लगीं।

"यहाँ ज़रा-सा भी रंग काला हो, तो उन्हें सब जिप्सी दिखायी देते हैं। कोई इनसे बोलता नहीं। कोई इनके साथ खेलता नहीं।"

"तुम बहुत जल्दी घबरा जाती हो... जब पहले-पहल मैं यहाँ आया था, तो मुझे भी लोग अचरज की निगाहों से देखते थे।" उन्होंने कहा।

"तुम्हारी बात अलग है। बच्चे बहुत महसूस करते हैं।" उन्होंने मेरी ओर समर्थन के लिए देखा, "अगर ये कलकत्ते में होते, तो इन्हें कुछ पता भी न चलता।"

"तुम हमेशा कलकत्ते की रट लगाये रहती हो..." उनके स्वर में हल्की-सी झुँझलाहट थी – हताश किस्म की, मानो इस विषय पर कई बार बहस हो चुकी हो।

दोनों बच्चे तटस्थ-भाव से खाने में जुटे थे, जैसे उनका इन बातों से कोई सम्बन्ध न हो।

उनकी चुप्पी हमें भी छू गयी। खाते समय कोई कुछ नहीं बोला। सिर्फ उन्होंने सफेद शराब की बोतल खोली, जो वे अपने साथ बाज़ार से लाये थे। खाने के बाद वे छोटे लड़के को सुलाने दूसरे कमरे में चली गयीं। केवल बड़ी लड़की बैठी रही, उनके कन्धे पर सिर टिकाये।

उसका हाथ मेरी हथेली से बहुत पहले निकल चुका था, लेकिन पीते हुए लग रहा था, जैसे उसकी गरमाई मेरी ऊँगलियों के बीच सुलग रही हो।

"कुछ सुनना चाहेंगे... ?" उन्होंने अनिश्चित स्वर में पूछा।

"जरूर...," मुझे सबकुछ सम्भव जान पड़ रहा था।

उन्होंने बड़ी लड़की से कुछ कहा, इतनी धीमे-से कि मैं कुछ नहीं समझ सका। वह चुपचाप अपनी जगह से उठकर तानपूरा ले आयी। मेज के नीचे से एक छोटी-सी नोट बुक निकाली, लाल कपड़े के कवर में बँधी हुई, जैसे राजस्थानी बही-खाते होते हैं। दोनों एक-दूसरे को देखकर मुस्कराये, मानो मेरी आँखों से कतराकर अपनी आँखों में कोई पुराना भेद बाँट रहे हों।

मैंने पहली बार लड़की के होंठ खुले देखे थे, मुस्कराते हुए।

फिर वह ज़रा पीछे खिसक गयी, वे कुछ आगे सरक आये। एक हाथ में तानपूरे को टिका लिया, दूसरे हाथ से नोट बुक के पन्ने उलटने लगे। दरवाज़े की ओर देखा – सब जगह सन्नाटा था। सन्नाटा भी नहीं, एक बेचैनी-सी चुप्पी, जो जिस जगह टूटती है, अपना निशान छोड़ जाती है।

वह निशान आज भी है, हालाँकि मैं अपनी अँगुली उस पर नहीं रख सकता, रवीन्द्रनाथ का कोई गीत था, जिसे वे गा रहे थे। लड़की बहुत पीछे दुबककर बैठी थी। आँखें अँगुलियों पर थिर थीं, तानपूरे पर फिसलती हुई – उन्हीं फिसलती अशरीरी छायाओं की तरह, जहाँ झर-झर करते पत्ते थे, अलसाई दक्षिणी हवा में शोर मचाते हुए, जो अपने देश में कोई माने नहीं रखते – लेकिन उस शाम एक विदेशी घर में शराब पीते हुए उनका स्वर अपने घर टपकती छत की आवाज था, बारिश और धूप और धुएँ के बीच एक डोलता हुआ जाला, जो कहीं भीतर हमें मकड़ी की तरह फँसाये रहता है... मैं उन्हें देखता रहा, तानपूरे पर चलती अँगुलियों को। एक बार वे ठिठकी थीं, जब वे बच्चे को सुलाकर कमरे में आयी थीं, लेकिन कुछ देर के लिए ही, एक क्षण से भी कम। वे दबे कदमों से चुपचाप एक कोने में आकर बैठ गयी थीं, और किसी को पता भी न चला था।

वे देर तक गाते रहे। कभी-कभी नोट बुक के पन्नों को पलटकर नया गीत ढूँढ़ने लगते और तब हम उत्सुक प्रतीक्षा में बाट जोहते। एक अधूरी-सी मुस्कान उनके चेहरे पर थी, आधी भीतर, आधी बाहर, लेकिन हमसे बहुत दूर। कोने में खड़ी किसी प्रेत-छाया-सी, जिसे वे देख सकते थे, हम नहीं। किन्तु उससे हमें कोई शिकायत नहीं थी। दरअसल उस घड़ी मुझे बहुत सुखद-सा अकेलापन लगा, जो अकसर भरे-पूरे परिवारों के बीच अचानक आ जाता है। पत्नी, लड़की, मालिक, भीतर के कमरे में सोते हुए बच्चे की साँसें, लगता है, ये सब सही हैं, अपने भीतर का ठिठुरता प्रवासीपन ही झूठा लगता है।

गाना खत्म हुआ, तो भी हम प्रतीक्षारत बैठे रहे – जैसे अभी कुछ बाकी है। बाकी कुछ

भी न था। कुछ देर बाद लड़की उठी, नोट बुक को झाड़ा-पोंछा, तानपूरे को अलग कमरे में रख दिया।

"आप ऊब तो नहीं गये?" उन्होंने मेरी ओर देखा।

"ऊबता तो समय का पता चल जाता... देखिए, कितनी देर हो गयी।" देर सचमुच हो गयी थी। आखिरी ट्राम मिल जायेगी, इसका भी कोई भरोसा नहीं था। विदा माँगने के लिए मैंने उनकी पत्नी की ओर देखा... वे अब भी जैसे 'बाकी' की प्रतीक्षा में अलग-थलग बैठी थीं। साड़ी का पल्लू फर्श पर गिर आया था और उन्होंने दोनों हाथों से सिर ढँक रखा था। पहली बार मुझे आभास हुआ – एक अजीब-सा भ्रम – कि परिवार के भीतर रहते हुए भी वे कहीं बाहर हैं। मेरी ही तरह, एक मेहमान की मानिन्द वहाँ बैठी हैं।

बच्ची सबसे आगे खड़ी थी – दरवाज़े से सटी हुई, पिता के कहने पर हाथ जोड़े। मैं दरवाज़े तक आया, तो उनकी आवाज़ सुनायी दी, जैसे सोते हुए जागी हों, "ट्राम न मिले, तो घर लौट आइयेगा... यहाँ सो रहियेगा।" मैंने हामी भरी। कौन-सी स्थिति में उनके घर दुबारा लौटना होगा, उस क्षण इसकी कल्पना भी न की थी।

वे मेरे साथ-साथ ट्राम-स्टैण्ड आये। हवा में पतली-सी धुन्ध थी, जो शुरू पतझड़ के दिनों में पेड़ों के इर्द-गिर्द जमा हो जाती है। ऊपर चाँद उठ आया था। बिलकुल ठण्डा और निस्पन्द। वे मेरे साथ आ रहे थे, लेकिन बहुत देर तक लगता रहा कि जैसे हम दोनों एक-दूसरे से बेखबर अलग-अलग चल रहे हों।

"आपको कोई अफसोस तो नहीं है?" उन्होंने चलते-चलते पूछा।

"अफसोस कैसा !"

"आप मुझसे मिले इस पर।" अँधेरे में मुझे उनकी हँसी अजीब भयानक-सी जान पड़ी – एक चिमगादड़ की अन्धी फड़फड़ाहट-सी, जो दिखायी नहीं देती, लेकिन समूचा तन झिंझोड़ जाती है।

सूनी गलियों के बीच हम तेजी से चलते रहे। कुछ भी सुनायी न देता था – केवल उनकी बोझिल साँसें और उनसे भी अधिक बोझिल मेरे कदमों की चाप।

"एक बात आपसे कहूँ... आप बहुत सौभाग्यवान हैं।"

"कैसे?" मैंने हँसने की कोशिश की। मैंने आज तक अपने 'सौभाग्य' के बारे में नहीं सोचा था।

"आपका मन चाहे तो किसी भी समय घर लौट सकते हैं... उन्होंने कहा।"

"यह बहुत छोटा-सा सौभाग्य है।" मैंने कहा।

"नहीं-नहीं, ऐसा मत कहिए। यह बहुत बड़ी बात है।" वे अचानक बीच गली में ठिठक गये। लैम्प-पोस्ट का आलोक सीधा उनके चेहरे पर गिर रहा था, मैंने आज तक यह बात किसी से नहीं कही... "दरअसल कुछ लोगों को अपने देश जाते हुए भी डर लगता है। यहाँ रहकर

सोचना अच्छा लगता है, लौटने की हिम्मत नहीं होती।''

याद नहीं आता, हम कितनी देर इस तरह खड़े रहे थे। सुनसान घरों के सामने, लैम्प-पोस्ट की रोशनी के आर-पार। वे शायद कुछ और कहते (शायद कुछ भी नहीं), लेकिन दूर से ही ट्राम के पहियों की घड़घड़ाहट सुनायी दी। सड़क के पत्थर एकाएक चमचमा उठे। हम उसी तरफ भागने लगे। ट्राम-स्टैण्ड पर आकर एक मिनट की भी फुरसत नहीं मिली कि हम ठीक-ठाक एक-दूसरे से जुदा हो पाते। वे बाहर हाँफ रहे थे, मैं भीतर।

आखिर तक वह हाँफना हीं याद रहा।

मैं अब दुबारा उनके घर के सामने खड़ा था। इस बीच सर्दियाँ बीत गयीं और फिर वसन्त के धूपीले दिन, जब मैं खुद अपने में बीतने लगा। उनकी याद भी धुँधली पड़ गयी। फिर गर्मियों के लम्बे दिन आये और मैं यूरोप के दूसरे शहरों में घूमने निकल गया। जब वापस लौटा, तो सात घाटों का पानी मेरे ऊपर था। मैं लगभग वैसा ही पका हुआ, अनुभवी आदमी बन गया, जो विदेश में दूसरे नौसिखिए हिन्दुस्तानियों से कतराते हैं। अब मैं 'निरीह प्रवासी' नहीं था और यद्यपि अकेलेपन का खोल अब भी था, मैं उसके भीतर रस-बस गया था।

वे नहीं रहे, यह खबर भी उन्हीं दिनों मिली थी। उस शहर में 'इण्डियन कॉलोनी' इतनी छोटी थी कि जीते-जी सुख-दुख की खबर चाहे न मिले, जन्म-मृत्यु का लेखा-जोखा किसी से छिपा न रहता था। अफवाह यह थी – एक दिन वे घर से लापता हो गये और दो दिन बाद ही एक दूसरे शहर के अस्पताल ने उनकी मृत्यु की सूचनी दी। कैसी परिस्थितियों में उन्हें अस्पताल जाना पड़ा, इस बारे में अनेक अनुमान थे, किन्तु निश्चित रूप से किसी को कुछ मालूम नहीं था।

मैं उस 'अफवाह' को बहुत जल्दी भुला जाता, यदि उस दिन रास्ते में वे अचानक न रोक लेतीं। यह शायद बिलकुल आकस्मिक था कि उनकी नजरों के सामने मैं पड़ गया। फिर भी मुझे आश्चर्य जरूर हुआ था कि मेरी अनुपस्थिति में वे दो बार मेरे घर आ चुकी थीं। वे सिर्फ चिट्ठी पढवाने इतनी दूर आयी होंगी, यह चीज़ मुझे काफी विचित्र जान पड़ी थी।

वही स्क्वायर था ... वही एक साल पहले की धूप। पत्ते अभी झरना शुरू नहीं हुए थे। हवा में खत्म होती गर्मियों की गन्ध थी – एक सोनाली-सी गन्ध, जो उन दिनों समूचे शहर में तिरती रहती थी।

मकान चुप था, चुप मकानों की तरह आसपास की आवाज़ों के प्रति अनासक्त। सिर्फ वे दोनों खेल रहे थे – पहले दिन की तरह, जब मैं आया था। 'दिन-भर अकेले खेलते हैं।' मुझे उनकी बात याद हो आयी। मुझे देखकर दोनों खेल रोककर एक-दूसरे को देखने लगे। छोटा लड़का अपनी जगह जमा रहा, बड़ी बहन के चेहरे पर उड़ती हुई पहचान आयी, लेकिन उसका

अतीत से कोई सम्बन्ध नहीं था। पहचान बच्चों के पास आती नहीं, वे उसे लेकर चलते हैं।

वह अपनी जगह से उठी, सधे कदमों से मेरे सामने आयी और बिना कुछ कहे मेरे सामने से गुज़र गयी। मैं उसके पीछे-पीछे दरवाज़े तक चला आया। उसे इस बार दरवाज़ा नहीं खटखटाना पड़ा – वह हमारे पैरों की आहट सुनते ही खुल गया था।

वे देहरी पर खड़ी थीं। उनकी छाया दूर दहलीज तक खिंच आयी थी।

एक क्षण के लिए मुझे आशा हुई कि मैं वहाँ उनके साथ बिलकुल अकेला नहीं हूँ। कभी-कभी हम किसी घर में बाहर की दुनिया का सहारा लेकर घुसते हैं और जब देहरी के परे वह हाथ छोड़ देता है, तो खुद घर का भीतर बेसहारा-सा लगता है। वे मेरी दुविधा को भाँप गयीं, देखते ही बोलीं, "ऊपर चलिए। इन दिनों शाम के वक्त हम ऊपर ही बैठते हैं।"

वही साड़ी थी , जिसे पहले दिन उन्होंने पहना था, तेज गुलाबी, आँखों को चुभनेवाली। माथे पर सिंदूर की बिन्दी थी, जिसे पहली बार उनके माथे पर देखा था। दोनों कलाइयों में सस्ते किस्म की रंग-बिरंगी काँच की चूड़ियाँ थीं, जिन्हें देखकर – न जाने क्यों – पुराने उदास हिन्दुस्तानी दिन याद आते थे।

अँधेरे ज़ीने से चढ़कर ऊपर आये, तो सबकुछ बहुत खुला-सा जान पड़ा – हालाँकि टैरेस बहुत छोटा था। एक छत का कोना, जहाँ रेलिंग के बजाय ईंटों की दीवार लगी थी। वहाँ दो कुर्सियाँ पहले से रखी थीं। मेरे आने से पहले वे शायद वहीं बैठी थीं। वहीं से उन्होंने मुझे आते हुए देखा होगा। नीचे उतरी होंगी। दरवाज़ा खोला होगा। उनसे बिना पूछे ही मैं कुर्सी पर बैठ गया। लगता था जैसे पूरे एक साल की थकान मुझ पर घिर आयी हो।

"आपको यहाँ सर्दी तो नहीं लगेगी ?" उन्होंने मुड़कर मेरी ओर देखा।

"इतनी धूप में ?" मैंने हँसकर कहा, "मुझे नहीं मालूम था, आपके पास इतना खूबसूरत टैरेस है, बिलकुल हमारे शहर की छतों की तरह।"

"आपको पसन्द है ?" उन्होंने उत्सुकता से पूछा और पास ही एक स्टूल पर बैठ गयीं, बहुत ही निचले किस्म का स्टूल। उनकी साड़ी के अटपटे घेरे में वह बिलकुल अदृश्य-सा हो गया था, "उन्हें भी बहुत पसन्द था। मैं उन्हें सारे घर में ढूँढ़ती थी और वे यहाँ बैठे रहते थे।" उन्होंने धीमे स्वर में कहा।

"बहुत शुरू के दिनों की बात होगी ?" मैंने पूछा।

"हाँ… उन दिनों हम पहले-पहल इस घर में आये थे। बाद में… बाद में आदी हो गयी थी।" वे कुछ देर तक चुपचाप टैरेस के नीचे देखती रहीं, जहाँ दूसरे मकानों की छतें थीं।

"आदी होना कोई अच्छी बात नहीं।" उन्होंने मेरी ओर देखा – उनके स्वर का हल्कापन मुझे भी छू गया था।

"मैं खुद ऐसी चीज़ों का आदी हो चला हूँ, जिसकी कल्पना भी न की थी।" मैंने कहा।

"किन चीजों के आदी ?"

"यूँ ही⋯ आदिवासियों की तरह घूमना।" मैंने कहा।

वे धीरे-से हँस पड़ीं, "नहीं⋯ इसमें कोई बुरी बात नहीं।" उनका स्वर बहुत कोमल हो आया था, मानो शाम की ढलती धूप उसे छू गयी हो, "बुरी बात है, दूसरों के लिए आदी हो जाना⋯ तब वे फायदा उठाने लगते हैं।"

पता नहीं, उनका संकेत किस तरफ था ? इस बार मैं कुछ नहीं बोला, वे खुद जैसे अपने से परे एक हाशिये पर चली आयी थीं – जिसके परे सिर्फ बच्चों की आवाजें थीं, स्क्वायर पर चक्कर काटती हुई।

"आप कुछ पियेंगे⋯ ?" उन्होंने कहा।

"नहीं, अभी रहने दीजिए।" पता नहीं क्यों, मुझे सहसा नीचे से आती बच्चों की आवाज़ों ने पकड़ लिया था।

"अब भी अकेले खेलते हैं ?" मैंने पूछा।

"आजकल छुट्टियाँ हैं⋯ हर साल इन्हीं दिनों का इन्तजार करते थे।" उनकी आवाज़ कहीं दूसरी तरफ थी – धीमी और साफ। स्क्वायर की धूप अपने को समेटकर दूर मकानों की छतों पर फैल आयी थी।

"वे पूछते तो होंगे ?" मैंने आँखें ऊपर उठायीं – अपने शब्दों से पुरानी स्मृति को खींचते हुए, जैसे बच्चे मरी हुई चिड़िया को खेल-खेल में खींचते हैं और वह धूल में घिसटती जाती है।

"हाँ⋯ यही दिन कलकत्ता जाने के होते थे⋯ हर साल इन्हीं दिनों का इन्तजार होता था।" उन्होंने बिना मेरी ओर देखे कहा। वे नीचे स्क्वायर की तरफ देख रही थीं, "उन्हें कुछ भी नहीं मालूम⋯ मैंने उन्हें कुछ भी नहीं बताया।"

कुछ भी नहीं मालूम ! एक अजीब ठण्डी-सी सिहरन मेरे भीतर सिमटने लगी। बहुत पुरानी शाम याद हो आयी, जैसे किसी म्यूजियम में कोई चित्र याद रह जाता है – तानपूरे पर टिकी उनकी अँगुलियाँ, पीछे की तरफ दुबकी बच्ची की आँखें, कोने में सिर झुकाये बैठी वे जो अब मेरे सामने दिन की डूबती रोशनी में बैठी थीं। लगा जैसे इस शाम से अलग हम उस शाम के शाश्वत फ्रेम में अब भी बैठे हैं।

"आपने कुछ भी नहीं बताया ?" मैंने अनिश्चित भाव से उनकी ओर देखा।

"मुझे खुद कहाँ मालूम था ?" एक लम्बे नीरव क्षण तक वे मुझे देखती रहीं, "आपने क्या सुना था ?"

"मैंने ?" मुझे लगा, जैसे में कोई अपराध करता हुआ पकड़ लिया गया हूँ, "सिर्फ यह कि एक दिन घर छोड़कर चले गये और⋯"

"फिर वापस नहीं लौटे।" उन्होंने मेरा वाक्य पूरा कर दिया। हालाँकि मुझे लगा, वह अब भी अधूरा हवा में लटक रहा है।

"मैंने अभी आपसे कहा था कि आदी होना अच्छी बात नहीं है। यह मैं अब कहती हूँ।

तब नहीं जानती थी। जब वे घर में नहीं होते थे, मैं समझती थी। वे कहीं बाहर गये हैं, या यहाँ टैरेस पर हैं। कभी-कभी वे रात-भर नीचे भी नहीं आते थे, यहीं सो जाते थे, हालाँकि यह उनके लिए बहुत खतरनाक था..."

"आपने कभी मना नहीं किया?"

"कई बार शुरू में, जब वे अस्पताल से लौटे थे... फिर मैं धीरे-धीरे आदी हो गयी। पिछले एक बरस से वे मेरी नहीं सुनते थे। और मेरी दिलचस्पी भी खत्म होती गयी... आपको हैरानी होती है? कभी-कभी ऐसा होता है कि पुराना लगाव बचा रहता है, लेकिन दिलचस्पी खत्म हो जाती है।" वे क्षण-भर रुकीं, मानो खुद अपने शब्द से भयभीत हो गयी हों, अनजाने में बहुत आगे निकल आयी हों। एक क्षण झिझकी-सी खड़ी रहीं, फिर कहा, "मैंने सोचा, वे टैरेस पर होंगे, इसलिए बच्चों को सुलाकर खुद नीचे सो गयी। जब दूसरे दिन भी न आये, तो भी चिन्ता नहीं हुई... वे इसी तरह बाहर चले जाते थे। तीसरे दिन पता चला, वे अस्पताल में हैं..."

वे चुप हो गयीं। हल्का-सा अँधेरा हमारी छत पर सिमट आया था, हालाँकि दूर गिरजों की बुर्जियाँ अब भी धूप में चमक रही थीं। नीचे स्क्वायर का शोर बहुत मन्द पड़ गया था, केवल इक्की दुक्की बुझी-बुझी आवाज़ें ऊपर चली आती थीं।

"आप अस्पताल गयी थीं!"

"हाँ... तब कोई फायदा नहीं था। उनमें इतना होश भी नहीं था कि मुझे पहचान सकते।"

एक असह्य-सी बेचैनी ने मुझे पकड़ लिया।

"उन्होंने कुछ भी नहीं कहा?"

वे चुपचाप मेरी ओर देखती रहीं।

"नहीं, कुछ भी नहीं।"

"और बच्चे...?"

"मैं उन्हें साथ नहीं ले गयी थी। मुझे डर था, उन्हें देखकर उन्हें और भी कष्ट होगा।" वे एक क्षण रुकीं, फिर सीधे मेरी ओर देखा, "उन्हें यूँ भी उनके बारे में बहुत तकलीफ होती थी। आखिरी क्षणों में तो और भी..." उन्होंने मेरी हैरान निगाहों को देखा, और हल्के-से चौंक गयीं, "आपको शायद नहीं मालूम... हम विवाहित नहीं थे।" वे धीरे-से हँसी, जैसे उन्हें खुद मेरे अज्ञान पर हैरानी हो, हँसी रुक जाती है, लेकिन चुप्पी ठहरती नहीं। शब्दों को बहाकर हमें उस सूखे किनारे तक ले जाती है, जहाँ से वह खुद शुरू हुई थी। वहाँ निरा सन्नाटा था। नीचे स्क्वायर की बत्तियाँ जलने लगी थीं।

"अब आप कुछ पियेंगे!"

"आज रहने दें..." मैंने कुछ अनिश्चित स्वर में कहा, "मुझे जल्दी जाना है।"

"ठहरिए, मैं अभी आती हूँ।"

वे नीचे गयीं। कुछ देर तक मैं अकेला बैठा रहा। बिलकुल अकेला भी नहीं। उनके शब्द मेरे पास थे – एक अधूरे सिलसिले की तरह, पूरा होने की प्रतीक्षा में। पहली शाम याद आयी, जब वे कंसर्ट-हॉल में मिले थे। फिर ट्राम-स्टैण्ड पर उनकी छाया, एक हल्की-सी व्यंग्यात्मक मुस्कान लिये मुझे घूरते हुए। लगा, कहीं अँधेरी छत पर वे अब भी वैसे ही खड़े हैं। मैं धीरे-से पीछे मुड़ा। तब उनके पैरों की आहट सुनायी दी… वे अपने साथ दो गिलास और एक बोतल लायी थीं, "सोड़ा नहीं है, आप पानी के साथ पी लेते हैं ?" उन्होंने इतने आत्मीय स्वर में कहा, मानो हम दोनों बरसों से एक-दूसरे को जानते हों।

कुछ देर तक हममें से कोई भी कुछ नहीं बोला। शायद अन्तिम गर्मियों का खुला-खुला-सा अँधेरा रहा होगा, या व्हिस्की पीने का आलोक (क्योंकि पीने का अपना आलोक होता है) कि हम एक-दूसरे से दूर होते हुए भी समझने लगे कि जो नहीं रहे, उसके बहाने एक-दूसरे के पास हो सकते हैं, कम-से-कम कुछ देर के लिए उसका भ्रम पाल सकते हैं।

"आपसे इन्हीं दिनों मिले थे ?" उन्होंने कहा।

"जी… हाँ, वे पतझड़ के दिन थे।" मैंने कहा।

"आपकी बहुत चर्चा करते थे।" उन्होंने कहा।

"कैसी चर्चा ?" मैंने तनिक विस्मय से पूछा, "मैं उनसे सिर्फ दो बार मिला था।"

"आपको बहुत कम जानते थे, इसीलिए उन्हें लगता था कि वे आपसे बहुत-कुछ कह सकते हैं।"

सम्भव है, वे ठीक कहती हों। हर व्यक्ति अपने निजी भेदों के लिए एक अजनबी चुन लेता है। उन्होंने शायद मुझे चुना था। बहुत गलत आदमी। आखीर तक मैं उनके बारे में कुछ नहीं जान सका।

"आपसे कभी कुछ नहीं कहा… अपने बारे में ?" उन्होंने पूछा।

"कभी-कभी कलकत्ता लौटने की बात करते थे… लेकिन मुझे उसमें अजीब कुछ भी जान नहीं पड़ा। घर लौटने की बात सब करते हैं।"

वे गिलास को हाथ में थामे देर तक अँधेरे में ताकती रहीं।

"वह नहीं…" उन्होंने एक छोटा-सा घूँट लिया, "वे आखीर तक कुछ भी तय नहीं कर सके। वे न खुद जाना चाहते थे, न यहाँ रहना चाहते थे।"

"क्या कहते थे ?"

कुछ देर तक वे खामोशी में पीती रहीं – बिना मेरी ओर ध्यान दिये। नीचे बच्चों का शोर एकाएक बन्द हो गया था, सिर्फ ट्राम की घण्टियों का स्वर कभी-कभी ऊपर चला आता था।

"कहते कुछ नहीं थे… सिर्फ डरते थे।"

"डरना कैसा ?"

वे कुछ देर तक अपलक मेरी ओर देखती रहीं, फिर गिलास नीचे रख दिया, "आपसे

कभी कुछ नहीं कहा। वहाँ उनकी पत्नी थी, आठ बरस का लड़का था˙˙˙ जब यहाँ ट्रेनिंग के लिए आये थे, तो वह एक बरस का रहा होगा।"

"आपको मालूम था?"

"मुझे नहीं मालूम होगा?" वे हँसने लगीं, "वहाँ से चिट्ठियाँ आती थीं˙˙˙ कभी-कभी पढ़कर सुनाते थे। उनके लड़के का फोटो बड़ी बच्ची के पास है। उसे वह अपने साथ लेकर सोती है!"

उन्होंने दोनों गिलास भरे। पहली बार उस शाम मझे प्यास महसूस हुई, जब गला सूखने लगता है˙˙˙ सचमुच की प्यास, जो मरुस्थल के बीच अकेले झुलसते जानवर की तरह आँख खोलती है।

"आपने चिट्ठियों के बारे में कहा था?"

"उन्हीं के लिए आपको बुलाया था˙˙˙" वे फिर धीरे-से हँसी, "मैं अभी तक बंगाली नहीं पढ़ सकती˙˙˙ एक बार उनसे सीखने की कोशिश की थी, फिर सबकुछ बीच में छूट गया।"

"किसकी चिट्ठियाँ हैं?"

"नीचे चलेंगे, तो आपको दिखाऊँगी˙˙˙ कभी उनकी पत्नी भेजती है, कभी उनके पिता˙˙˙ उन्हें अभी तक कुछ भी नहीं मालूम।"

"उन्हें यह मालूम था, वे यहाँ˙˙˙"

"नहीं, उन्हें कुछ भी मालूम नहीं था। वे हर साल उनके लौटने की राह देखते थे˙˙˙"

वे चुप हो गयीं˙˙˙ टैरेस पर अब अँधेरा पूरी तरह फैल गया था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आये थे, बहुत चमकीले और बहुत साफ, जैसे अक्सर जुलाई की रातों में हिन्दुस्तानी पहाड़ी स्टेशनों के ऊपर दिखायी देते हैं।

"आपने कलकत्ता देखा है?"

"बहुत साल पहले˙˙˙ स्कूल के ट्रिप में जाना हुआ था।" मैंने कहा।

"क्या बहुत बड़ा शहर है?" उन्होंने उत्सुकता से मेरी ओर देखा।

"हाँ˙˙˙ हर बड़े शहर की तरह।"

"वे हमेशा बच्चों को उसके बारे में बताते थे˙˙˙ हुगली नदी, हावड़ा ब्रिज, ब्रिज पर लोगों की भीड़।" वे बोलती रहीं, एक अनवरत लय में, जो पीने के बाद खुद-ब-खुद रस्सी में बँधकर घिसटती रहती है।

"बताते थे, बारिश के दिनों में सड़कों पर इतना पानी जमा हो जाता है कि बच्चे कपड़े उतारकर नहाते हैं˙˙˙ क्या सचमुच ऐसा होता है?"

पहली बार उनकी आँखें चमकीली-सी जान पड़ीं, पानी की चमक जो अँधेरे में भी दिखायी दे जाती है।

"मुझे एक बात कभी समझ में नहीं आयी··· वे सबसे कहते थे, मुझसे एक बार भी नहीं।" एक काँपती हुई शिकायत उनकी आँखों के कोरों पर फिसल आयी।

"किसके बारे में ?"

"घर लौटने के··· मैं उन्हें कभी न रोकती। मैं यहाँ अपने बच्चों के साथ सुखी हूँ। वे वहाँ सुखी रह सकते थे।"

सुख··· ! उस रात अँधेरी छत पर यह शब्द बेगाना-सा लगा, जिसका नाम सुना था, देखा कहीं न था। उनकी साड़ी, माथे पर बिंदी, हाथों की चूड़ियाँ, ये सब जैसे उस 'सुख' की निशानी थे, जो कहीं कलकत्ते में आज भी उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

मुझे सहसा कुछ याद आया··· सड़क की एक बात, जो चलते हुए उन्होंने मुझसे कही थी।

"एक बार जब पब से लौट रहे थे··· कहने लगे, आप न होतीं तो वे बच नहीं सकते थे।" मैंने कहा।

"मैंने उन्हें बचाया यहाँ ?" उन्होंने आँखें मोड़ लीं, "वे सिर्फ मुझसे बँधे रहे··· और कुछ नहीं।"

गिलास को दुबारा भरने के लिए उन्होंने बोतल उठायी।

"नहीं, अब मैं चलूँगा।"

"उन्होंने अबूझी आँखों से मुझे देखा, "अभी से ? आपको कहीं जाना है ?"

"नीचे बच्चे अकेले होंगे।" मैंने कहा।

वे अब तक सो गये होंगे··· बैठिए, अब थोड़ी-सी बची है। इसे अब यहाँ पीने वाला कोई नहीं।"

"मैंने उनका हाथ रोका, लेकिन व्हिस्की सचमुच बहुत कम थी। दोनों में बँटकर सब खत्म हो गयी थी।

"क्या वे पीते थे ?"

"मुझे मालूम भी नहीं था··· जब अस्पताल से लौटी, तो यह आधी बोतल उनकी अल्मारी में रखी थी··· दवा की शीशियों के पीछे।"

टैरेस के नीचे स्क्वायर खाली पड़ा था। मैं उठकर ईंटों की दीवार के पास चला आया··· वहीं उस पर अपना गिलास रख दिया। वे नहीं थे, उनकी आखिरी व्हिस्की मेरे गिलास में थी। मरकर भी आदमी पूरी तरह से नहीं चुकता, जब तक दूसरे लोग उसकी अन्तिम चीज़ों को पूरा नहीं कर देते। जब वे पूरी हो जाती हैं, तो वह दूसरी बार मर जाता है, इस बार अंतिम तौर से।

पीछे मुड़ा, तो देखा, वे नहीं थीं। तिपाई पर उनका गिलास खाली पड़ा था। वे कहीं न थीं। सारी छत खाली पड़ी थी। सिर्फ छत का अँधेरा भरा-भरा-सा लग रहा था। मैं काफी देर

प्रतीक्षा में खड़ा रहा··· उनके आने के लिए उतना नहीं, जितना अपने जाने के लिए।

मैंने दोनों गिलास उठाये, खाली बोतल वहीं रहने दी। एक बार चारों तरफ अँधेरे में देखा, जैसे अब भी कोई चीज बाकी बची हो··· फिर सीढ़ियाँ उतरने लगा।

वे रसोईघर में थीं। बड़े कमरे में दोनों बच्चे काऊच पर सो रहे थे – गहरी नींद में, पीछे कोने में तानपूरा था, नीचे मेज पर लाल जिल्दवाली नोटबुक··· अपनी-अपनी जगह पर ठीक वैसे ही उस शाम उन्हें देखा था।

चिट्ठियाँ पढ़ने का साहस मर चुका था। शायद किसी और दिन··· मैंने सोचा। मैंने उनसे विदा नहीं माँगी। माँगने के लिए कुछ भी नहीं था, जिसके लिए मैं उनके पास जाता, वे मेरे पास आतीं।

बाहर आया, तो एक अजीब डर ने मुझे पकड़ लिया। मैं अँधेरे में ही भागने लगा। फिर बीचोंबीच सड़क पर रुक गया, वह बहुत शान्त गर्मियों की रात थी। मुझे खुद अपने डर पर हँसी आयी। मैं कुछ देर तक एक जगह खड़ा रहा। नहीं, मेरे आगे-पीछे कोई न था। हिन्दुस्तान बहुत आगे था और वे बहुत पीछे छूट गये थे। मैं सधे कदमों से ट्राम स्टैण्ड की तरफ चलने लगा।

एक दिन का मेहमान

उसने अपना सूटकेस दरवाजे के आगे रख दिया। घण्टी का बटन दबाया और प्रतीक्षा करने लगा। मकान चुप था। कोई हलचल नहीं – एक क्षण के लिए भ्रम हुआ कि घर में कोई नहीं है और वह खाली मकान के आगे खड़ा है। उसने रूमाल निकालकर पसीना पोंछा, अपना एयर-बैग सूटकेस पर रख दिया। दुबारा बटन दबाया और दरवाजे से कान सटाकर सुनने लगा, बरामदे के पीछे कोई खुली खिड़की हवा में हिचकोले खा रही थी।

वह पीछे हटकर ऊपर देखने लगा। वह दुमंजिला मकान था – लेन के अन्य मकानों की तरह – काली छत, अंग्रेजी 'वी' की शक्ल में दोनों तरफ से ढलुआँ, और बीच में सफेद पत्थर की दीवार, जिसके माथे पर मकान का नम्बर एक काली बिन्दी-सा टिमक रहा था। ऊपर की खिड़कियाँ बन्द थीं और परदे गिरे थे। कहाँ जा सकते हैं इस वक़्त ?

वह मकान के पिछवाड़े गया – वही लॉन, फेंस और झाड़ियाँ थीं, जो उसने दो साल पहले देखी थीं, बीच में विलो अपनी टहनियाँ झुकाये एक काले, बूढ़े रीछ की तरह ऊँघ रहा था। लेकिन गैराज खुला और खाली पड़ा था ;वे कहीं कार लेकर गये थे, सम्भव है, उन्होंने सारी सुबह उसकी प्रतीक्षा की हो और अब किसी काम से बाहर चले गये हों। लेकिन दरवाजे पर उसके लिए एक चिट तो छोड़ ही सकते थे।

वह दुबारा सामने के दरवाजे पर लौट आया। अगस्त की चुनचुनाती धूप उसकी आँखों पर पड़ रही थी। सारा शरीर चू रहा था। वह बरामदे में ही अपने सूटकेस पर बैठ गया। अचानक उसे लगा, सड़क के पार मकानों की खिड़कियों से कुछ चेहरे बाहर झाँक रहे हैं, उसे देख रहे हैं। उसने सुना था, अंग्रेज लोग दूसरों की निजी चिन्ताओं में दखल नहीं देते, लेकिन वह मकान के बाहर बरामदे में बैठा था, जहाँ प्राइवेसी का कोई मतलब नहीं था ; इसीलिए वे निस्संकोच, नंगी उन्मुक्तता से उसे घूर रहे थे। लेकिन शायद उनके कौतूहल का दूसरा कारण था ;उस छोटे, अंग्रेजी कस्बाती शहर में लगभग सब एक-दूसरे को पहचानते थे और वह न केवल अपनी शक्ल-सूरत में, बल्कि झूलते-झालते हिन्दुस्तानी सूट में काफी अद्भुत प्राणी दिखायी दे रहा होगा। उसकी तुड़ी-मुड़ी वेशभूषा और गर्द और पसीने में लथपथ चेहरे से कोई यह अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि अभी तीन दिन पहले फ्रेंकफर्ट की कान्फ्रेंस में उसने

पेपर पढ़ा था। 'मैं एक लुटा-पिटा एशियन इमीग्रेण्ट दिखायी दे रहा हूँगा'... उसने सोचा और अचानक खड़ा हो गया – मानो खड़ा होकर प्रतीक्षा करना ज्यादा आसान हो। इस बार बिना सोचे-समझे उसने दरवाजा जोर से खटखटाया और तत्काल हकबकाकर पीछे हट गया – हाथ लगते ही दरवाजा खट-से खुल गया। ज़ीने पर पैरों की आवाज सुनायी दी – और दूसरे क्षण वह चौखट पर उसके सामने खड़ी थी।

वह भागते हुए सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आयी थी, और उससे चिपट गयी थी। इससे पहले वह पूछता, 'क्या तुम भीतर थीं? और वह पूछती, तुम बाहर खड़े थे? – उसने अपने धूल-भरे लस्तम-पस्तम हाथों से उसके दुबले कन्धों को पकड़ लिया और लड़की का सिर नीचे झुक आया और उसने अपना मुँह उसके बालों पर रख दिया।

पड़ोसियों ने एक-एक करके अपनी खिड़कियाँ बन्द कर दीं।

लड़की ने धीरे-से उसे अपने से अलग कर दिया, "बाहर कब से खड़े थे?"

"पिछले दो साल से।"

"वाह !" लड़की हँसने लगी। उसे अपने बाप की ऐसी ही बातें बौड़म जान पड़ती थीं।

"मैंने दो बार घण्टी बजायी – तुम लोग कहाँ थे?"

"घण्टी खराब है, इसीलिए मैंने दरवाजा खुला छोड़ दिया था।"

"तुम्हें फोन पर बताना चाहिए था – मैं पिछले एक घण्टे से आगे-पीछे दौड़ रहा था।"

"मैं तुम्हें बतानेवाली थी, लेकिन बीच में लाइन कट गयी... तुमने और पैसे क्यों नहीं डाले?"

"मेरे पास सिर्फ दस पैसे थे... वह औरत काफी चुड़ैल थी !"

"कौन औरत?" लड़की ने उसका बैग उठाया।

"वही, जिसने हमें बीच में काट दिया।"

आदमी अपना सूटकेस बीच ड्राइंगरूम में घसीट लाया। लड़की उत्सुकता से बैग के भीतर झाँक रही थी – सिगरेट के पैकेट, स्कॉच की लम्बी बोतल, चॉकलेट के बण्डल – वे सारी चीजें, जो उसने इतनी हड़बड़ी में फ्रेंकफर्ट के एयरपोर्ट पर ड्यूटी-फ्री दुकान से खरीदी थीं, अब बैग से ऊपर झाँक रही थीं।

"तुमने अपने बाल कटवा लिये?" आदमी ने पहली बार चैन से लड़की का चेहरा देखा।

"हाँ... सिर्फ छुट्टियों के लिए। कैसे लगते हैं?"

"अगर तुम मेरी बेटी नहीं होतीं, तो मैं समझता कि कोई लफंगा घर में घुस आया है।"

"ओह पापा !" लड़की ने हँसते हुए बैग से चॉकलेट निकाली, रैपर खोला, फिर उसके आगे बढ़ा दी।

"स्विस चॉकलेट," उसने उसे हवा में डुलाते हुए कहा।

"मेरे लिए एक गिलास पानी ला सकती हो?"

"ठहरो, मैं चाय बनाती हूँ।"

"चाय बाद में...", वह अपने कोट की अन्दरूनी जेब में कुछ टटोलने लगा – नोटबुक, वालेट, पासपोर्ट – सब चीजें बाहर निकल आयीं, अन्त में उसे टेबलेट्स की डिब्बी मिली, जिसे वह ढूँढ़ रहा था।

लड़की पानी का गिलास लेकर आयी तो उससे पूछा, "कैसी दवाई है ?"

"जर्मन," उसने कहा, "बहुत असर करती है।" उसने टेबलेट पानी के साथ निगल ली, फिर सोफे पर बैठ गया। सबकुछ वैसा ही था, जैसा उसने सोचा था। वही कमरा, शीशे का दरवाजा, खुले हुए परदों के बीच वही चौकोर, हरे रूमाल-जैसा लॉन, टी. वी. के स्क्रीन पर उड़ती पक्षियों की छाया, जो बाहर उड़ते थे और भीतर होने का भ्रम देते थे...।

वह किचन की देहरी पर आया। गैस के चूल्हों के पीछे लड़की की पीठ दिखायी दे रही थी। कार्डराय की काली जीन्स और सफेद कमीज, जिसकी मुड़ी स्लीव्स बाँहों की कुहनियों पर झूल रही थीं। वह बहुत हल्की और छुई-मुई-सी दिखायी दे रही थी।

"मामा कहाँ हैं ?" उसने पूछा। शायद उसकी आवाज इतनी धीमी थी कि लड़की ने उसे नहीं सुना, किन्तु उसे लगा, जैसे लड़की की गर्दन कुछ ऊपर उठी थी। "मामा क्या ऊपर हैं ?" उसने दुबारा कहा और लड़की वैसे ही निश्चल खड़ी रही और तब उसे लगा, उसने पहली बार भी उसके प्रश्न को सुन लिया था। "क्या वह बाहर गयी हैं ?" उसने पूछा। लड़की ने बहुत धीरे, धुँधले ढंग से सिर हिलाया, जिसका मतलब कुछ भी हो सकता था।"

"तुम पापा, कुछ मेरी मदद करोगे ?"

वह लपककर किचन में चला आया, "बताओ, क्या काम है ?"

"तुम चाय की केतली लेकर भीतर जाओ, मैं अभी आती हूँ।"

"बस !" उसने निराश स्वर में कहा।

"अच्छा, प्याले और प्लेटें भी लेते जाओ।"

वह सब चीजें लेकर भीतर कमरे में चला आया। वह दुबारा किचन में जाना चाहता था, लेकिन लड़की के डर से वह वहीं सोफा पर बैठा रहा। किचन से कुछ तलने की खुशबू आ रही थी। लड़की उसके लिए कुछ बना रही थी – और वह उसकी कोई भी मदद नहीं कर पा रहा था। एक बार इच्छा हुई, किचन में जाकर उसे मना कर आये कि वह कुछ भी नहीं खायेगा – किन्तु दूसरे ही क्षण भूख ने उसे पकड़ लिया। सुबह से उसने कुछ नहीं खाया था। यूस्टन स्टेशन के कैफेटेरिया में इतनी लम्बी 'क्यू' लगी थी कि वह टिकट लेकर सीधा ट्रेन में घुस गया था। सोचा था, वह डायनिंग-कार में कुछ पेट में डाल लेगा, किन्तु वह दुपहर से पहले नहीं खुलती थी। सच पूछा जाय, तो उसने अन्तिम खाना कल शाम फ्रेंकफर्ट की एयरपोर्ट में खाया था और जब रात को लन्दन पहुँचा था, तो अपने होटल की बॉर में पीता रहा था। तीसरे गिलास के बाद उसने जेब से नोटबुक निकाली, नम्बर देखा और बॉर के टेलीफोन बूथ में जाकर फोन

मिलाया था··· पहली बार में पता नहीं चला, उसकी पत्नी की आवाज है या बच्ची की। उसकी पत्नी ने फोन उठाया होगा, क्योंकि कुछ देर तक फोन का सन्नाटा उसके कान में झनझनाता रहा, फिर उसने सुना, वह ऊपर से बच्ची को बुला रही है। और तब उसने घड़ी देखी ;उसे अचानक ध्यान आया, इस समय वह सो रही होगी, और वह फोन नीचे रखना चाहता था, किन्तु उसी समय उसे बच्ची का स्वर सुनायी दिया ;वह आधी नींद में थी। उसे कुछ देर तक पता ही नहीं चला कि वह इण्डिया से बोल रहा है या फ्रेंकफर्ट से या लन्दन से··· वह उसे अपनी स्थिति समझा ही रहा था कि तीन मिनट खत्म हो गये और उसके पास इतनी 'चेंज' भी नहीं थी कि वह लाइन को कटने से बचा सके, तसल्ली सिर्फ इतनी थी कि वह नींद, घबराहट और नशे के बीच यह बताने में सफल हो गया था कि वह कल उनके शहर पहुँच रहा है··· कल यानी आज।

वे अच्छे क्षण थे। बाहर इंग्लैण्ड की पीली और मुलायम धूप फैली थी। वह घर के भीतर था। उसके भीतर गरमाई की लहरें उठने लगी थीं। हवाई अड्डों की भाग-दौड़, होटलों की हील-हुज्जत, ट्रेन-टैक्सियों की हड़बड़ाहट – वह सबसे परे हो गया था। वह घर के भीतर था ; उसका अपना घर न सही, फिर भी एक घर – कुर्सियाँ, परदे, सोफा, टी. वी.। वह अर्से से इन चीजों के बीच रहा था और हर चीज के इतिहास को जानता था। हर दो-तीन साल बाद जब वह आता था, तो सोचता था – बच्ची कितनी बड़ी हो गयी होगी और पत्नी ? वह कितनी बदल गयी होगी ! लेकिन ये चीजें उस दिन से एक जगह ठहरी थीं, जिस दिन उसने घर छोड़ा था ;वे उसके साथ जाती थीं, उसके साथ लौट आती थीं···

"पापा, तुमने चाय नहीं डाली ?" वह किचन से दो प्लेटें लेकर आयी, एक में टोस्ट और मक्खन थे, दूसरी में तले हुए सॉसेज।

"मैं तुम्हारा इन्तजार कर रहा था।"

"चाय डालो, नहीं तो बिल्कुल ठण्डी हो जायेगी।"

वह उसके साथ सोफा पर बैठ गयी। "टी. वी. खोल दूँ··· देखोगे ?"

"अभी नहीं··· सुनो, तुम्हें मेरे स्टैम्प्स मिल गये थे ?"

"हाँ, पापा, थैंक्स !" वह टोस्ट्स पर मक्खन लगा रही थी।

"लेकिन तुमने चिट्ठी एक भी नहीं लिखी !"

"मैंने एक चिट्ठी लिखी थी, लेकिन जब तुम्हारा टेलीग्राम आया, तो मैंने सोचा, अब तुम आ रहे हो तो चिट्ठी भेजने की क्या जरूरत ?"

"तुम सचमुच गागा हो।"

लड़की ने उसकी ओर देखा और हँसने लगी। यह उसका चिढ़ाऊ नाम था, जो बाप ने बरसों पहले उसे दिया था, जब वह उसके साथ घर में रहता था, वह बहुत छोटी थी और उसने

हिन्दुस्तान का नाम भी नहीं सुना था।

बच्ची की हँसी का फायदा उठाते हुए वह उसके पास झुक आया जैसे वह कोई चंचल चिड़िया हो, जिसे केवल सुरक्षा के भ्रामक क्षण में ही पकड़ा जा सकता है, "मम्मी कब लौटेंगी ?"

प्रश्न इतना अचानक था कि लड़की झूठ नहीं बोल सकी, "वह ऊपर अपने कमरे में है।"

"ऊपर ? लेकिन तुमने तो कहा था⋯"

किरच, किरच, किरच – वह चाकू से जले हुए टोस्ट को कुरेद रही थी मानो उसके साथ-साथ वह उसके प्रश्न को भी काट डालना चाहती हो। हँसी अब भी थी, लेकिन अब वह बर्फ में जमे कीड़े की तरह उसके होंठों पर चिपकी थी।

"क्या उन्हें मालूम है कि मैं यहाँ हूँ ?"

लड़की ने टोस्ट पर मक्खन लगाया, फिर जैम – फिर उसके आगे प्लेट रख दी।

"हाँ मालूम है।" उसने कहा।

"क्या वह नीचे आकर हमारे साथ चाय नहीं पियेंगी ?"

लड़की दूसरी प्लेट पर सॉसेज सजाने लगी – फिर उसे कुछ याद आया। वह रसोई में गयी और अपने साथ मस्टर्ड और कैचुप की बोतलें ले आयी।

"मैं ऊपर जाकर पूछ आता हूँ।" उसने लड़की की तरफ देखा, जैसे उससे अपनी कार्यवाही का समर्थन पाना चाहता हो। जब वह कुछ नहीं बोली, तो वह ज़ीने की तरफ जाने लगा।

"प्लीज़ पापा।"

उसके पाँव ठिठक गये।

"आप फिर उनसे लड़ना चाहते हैं ?" लड़की ने कुछ गुस्से में उसे देखा।

"लड़ना !" वह शर्म से भीगा हुआ हँसने लगा, "मैं यहाँ दो हजार मील उनसे लड़ने आया हूँ ?"

"फिर आप मेरे पास बैठिए।" लड़की का स्वर भरा हुआ था। वह अपनी माँ के साथ थी, लेकिन बाप के प्रति क्रूर नहीं थी। वह उसे पुरचाती निगाहों से निहार रही थी – "मैं तुम्हारे पास हूँ, क्या यह काफी नहीं है ?"

वह खाने लगा, टोस्ट, सॉसेज, टिन के उबले हुए मटर। उसकी भूख उड़ गयी थी, लेकिन लड़की की आँखें उस पर थीं। वह उसे देख रही थी, और कुछ सोच रही थी, कभी-कभी टोस्ट का टुकड़ा मुँह में डाल लेती और फिर चाय पीने लगती। फिर उसकी ओर देखती और चुपचाप मुस्कराने लगती, उसे दिलासा-सी देती, सबकुछ ठीक है, तुम्हारी जिम्मेदारी मुझ पर है और जब तक मैं हूँ, डरने की कोई बात नहीं।

डर नहीं था। टेबलेट का असर रहा होगा, या यात्रा की थकान – वह कुछ देर के लिए

लड़की की निगाहों से हटना चाहता था। वह अपने को हटाना चाहता था। "मैं अभी आता हूँ।" उसने कहा। लड़की ने सशंकित आँखों से उसे देखा, "क्या बाथरूम जायेंगे ?" वह उसके साथ-साथ गुसलखाने तक चली आयी और जब उसने दरवाजा बन्द कर लिया, तो भी उसे लगता रहा, वह दरवाजे के पीछे खड़ी है...

उसने बेसिनी में अपना मुँह डाल दिया और नल खोल दिया। पानी झर-झर उसके चेहरे पर बहने लगा – और वह सिसकने-सा लगा, आधे बने हुए शब्द उसकी छाती के खोखल से बाहर निकलने लगे, जैसे भीतर जमी हुई काई उलट रहा हो, उलटी, जो सीधी दिल से बाहर आती है – वह टेबलेट जो कुछ देर पहले खाई थी, अब पीले चूरे-सी बेसिनी के संगमरमर पर तैर रही थी। फिर उसने नल बन्द कर दिया और रूमाल निकालकर मुँह पोंछा। बाथरूम की खूँटी पर स्त्री के मैले कपड़े टँगे थे – प्लास्टिक की चौड़ी बाल्टी में अण्डरवियर और ब्रेसियर साबुन में डूबे थे... खिड़की खुली थी और बाग का पिछवाड़ा धूप में चमक रहा था। कहीं किसी दूसरे बाग से घास काटने की उनींदी-सी घुर्र-घुर्र पास आ रही थी...

वह जल्दी से बाथरूम का दरवाजा बन्द करके कमरे में चला आया। सारे घर में सन्नाटा था। वह किचन में आया, तो लड़की दिखायी नहीं दी। वह ड्राइंगरूम में लौटा, तो वह भी खाली पड़ा था। उसे संदेह हुआ कि वह ऊपरवाले कमरे में अपनी माँ के पास बैठी है। एक अजीब आतंक ने उसे पकड़ लिया। घर जितना शान्त था, उतना ही खतरे से अटा जान पड़ा। वह कोने में गया, जहाँ उसका सूटकेस रखा था, वह जल्दी-जल्दी उसे खोलने लगा। उसने अपने कान्फ्रेंस के नोट्स और कागज अलग किये, उनके नीचे से वह सारा सामान निकालने लगा, जो वह दिल्ली से अपने साथ लाया था – एम्पोरियम का राजस्थानी लहँगा (लड़की के लिए), ताँबे और पीतल के ट्रिंकेट्स, जो उसने जनपथ पर तिब्बती लामा हिप्पियों से खरीदे थे, पशमीने का कश्मीरी शाल (बच्ची की माँ के लिए), एक लाल, गुजराती जरीदार स्लीपर, जिसे बच्ची और माँ दोनों पहन सकते थे, हैण्डलूम के बैडकवर, हिन्दुस्तानी टिकटों की अल्बम – और एक बहुत बड़ी सचित्र किताब, 'बनारस : द एटर्नल सिटी।' फर्श पर धीरे-धीरे एक छोटा-सा हिन्दुस्तान जमा हो गया था, जिसे वह हर बार यूरोप आते समय अपने साथ ढो लाता था।

सहसा उसके हाथ ठिठक गये। वह कुछ देर तक चीजों के ढेर को देखता रहा। कमरे के फर्श पर बिखरी हुई वे बिलकुल अनाथ और दयनीय दिखायी दे रही थीं। एक पागल-सी इच्छा हुई कि वह उन्हें कमरे में जैसे का तैसा छोड़कर भाग खड़ा हो। किसी को पता भी न चलेगा, वह कहाँ चला गया ? लड़की थोड़ा-बहुत जरूर हैरान होगी, किन्तु बरसों से वह उससे ऐसे ही अचानक मिलती रही थी और बिना कारण बिछड़ती रही थी, 'यू आर ए कमिंग मैन एण्ड ए गोइंग मैन', वह उससे कहा करती थी, पहले विषाद में और बाद में कुछ-कुछ हँसी में... उसे कमरे में न बैठा देखकर लड़की को ज्यादा सदमा नहीं पहुँचेगा। वह ऊपर जायेगी और माँ से कहेगी, "अब तुम नीचे आ सकती हो ;वह चले गये।" फिर वे दोनों एक-साथ नीचे आयेंगी

और उन्हें राहत मिलेगी कि अब उन दोनों के अलावा घर में कोई नहीं है।

"पापा !"

वह चौंक गया, जैसे रँगे हाथों पकड़ा गया हो। खिसियानी-सी मुस्कुराहट में लड़की को देखा – वह कमरे की चौखट पर खड़ी थी और खुले हुए सूटकेस को ऐसे देख रही थी, जैसे वह कोई जादू की पिटारी हो, जिसने अपने पेट से अचानक रंग-बिरंगी चीजों को उगल दिया हो। लेकिन उसकी आँखों में कोई खुशी नहीं थी ; एक शर्म-सी थी, जब बच्चे अपने बड़ों को कोई ऐसी ट्रिक करते हुए देखते हैं जिसका भेद उन्हें पहले से मालूम होता है ; वे अपने संकोच को छिपाने के लिए कुछ ज्यादा ही उत्सुक हो जाते हैं।

"इतनी चीजें ?" वह आदमी के सामने कुर्सी पर बैठ गयी, "कैसे लाने दीं ? सुना है आजकल कस्टमवाले बहुत तंग करते हैं।"

"नहीं, इस बार उन्होंने कुछ नहीं किया," आदमी ने उत्साह में आकर कहा, "शायद इसलिए कि मैं सीधे फ्रेंकफर्ट से आ रहा था। उन्हें सिर्फ एक चीज पर शक हुआ था।" उसने मुस्कराते हुए लड़की की ओर देखा।

"किस चीज पर ?" लड़की ने इस बार सच्ची उत्सुकता से पूछा।

उसने अपने बैग से दालबीजी का डिब्बा निकाला और उसे खोलकर मेज पर रख दिया। लड़की ने झिझकते हुए दो-चार दाने उठाये और उन्हें सूँघने लगी, "क्या है यह ?" उसने जिज्ञासा से आदमी को देखा।

"वे भी इसी तरह सूँघ रहे थे," वह हँसने लगा, "उन्हें डर था कि कहीं इसमें चरस-गाँजा तो नहीं है।"

"हैश ?" लड़की की आँखें फैल गयीं, "क्या इसमें सचमुच हैश मिली है ?"

"खाकर देखो।"

लड़की ने कुछ दालमोठ मुँह में डाले और उन्हें चबाने लगी, फिर हलाट-सी होकर सी-सी करने लगी।

"मिर्चें होंगी – थूक दो !" आदमी ने कुछ घबराकर कहा।

किन्तु लड़की ने उन्हें निगल लिया और छलछलाई आँखों से बाप को देखने लगी।

"तुम भी पागल हो... सब निगल बैठीं।" आदमी ने जल्दी से उसे पानी का गिलास दिया, जो वह उसके लिए लायी थी।

"मुझे पसन्द है।" लड़की ने जल्दी से पानी पिया और अपनी कमीज की मुड़ी हुई बाँहों से आँखें पोंछने लगी। फिर मुस्कराते हुए आदमी की ओर देखा, "आई लव ईट।" वह कई बातें सिर्फ आदमी का मन रखने के लिए करती थी। उनके बीच बहुत कम मुहलत रहती थी और वह उसके निकट पहुँचने के लिए ऐसे शार्टकट लेती थी, जिसे दूसरे बच्चे महीनों में पार करते हैं।

"क्या उन्होंने भी इसे चखकर देखा था ?" लड़की ने पूछा।

"नहीं, उनमें इतनी हिम्मत कहाँ थी। उन्होंने सिर्फ मेरा सूटकेस खोला, मेरे कागजों को उलटा-पलटा और जब उन्हें पता चला कि मैं कान्फ्रेंस से आ रहा हूँ तो उन्होंने कहा, 'मिस्टर, यू मे गो।' "

"क्या कहा उन्होंने ?" लड़की हँस रही थी।

"उन्होंने कहा, 'मिस्टर यू मे गो, लाइक एन इण्डियन क्रो !' आदमी ने भेदभरी निगाहों से उसे देखा। 'क्या है यह ?' "

लड़की हँसती रही – जब वह बहुत छोटी थी और आदमी के साथ पार्क में घूमने जाती थी, तो वे यह सिरफिरा खेल खेलते थे। वह पेड़ की ओर देखकर पूछता था, ओ! डियर, इज़ देयर एनीथिंग टू सी ? और लड़की चारों तरफ देखकर कहती थी, येस डियर, देयर इज़ ए क्रो ओवर द ट्री। आदमी विस्मय से उसकी ओर देखता। क्या है यह ? और वह विजयोल्लास में कहती – पोयम !

ए पोयम ! बढ़ती हुई उम्र में छूटते हुए बचपन की छाया सरक आयी – पार्क की हवा, पेड़, हँसी। वह बाप की उँगली पकड़कर सहसा एक ऐसी जगह आ गयी, जिसे वह मुद्दत पहले छोड़ चुकी थी, जो कभी-कभार रात को सोते हुए सपनों में दिखायी दे जाती थी···

"मैं तुम्हारे लिए कुछ इण्डियन सिक्के लाया था··· तुमने पिछली बार कहा था न !"

"दिखाओ, कहाँ हैं ?" लड़की ने कुछ जरूरत से ज्यादा ही ललकते हुए पूछा।

आदमी ने सलमे-सितारों से जड़ी एक लाल थैली उठायी – जिसे हिप्पी लोग अपने पासपोर्ट के लिए खरीदते थे। लड़की ने उसे उसके हाथ से छीन लिया और हवा में झुलाने लगी। भीतर रखी चवन्नियाँ, अठन्नियाँ, चहचहाने लगीं, फिर उसने थैली का मुँह खोला और सारे पैसों को मेज पर बिखेर दिया।

"हिन्दुस्तान में क्या सब लोगों के पास ऐसे ही सिक्के होते हैं ?"

वह हँसने लगा, "और क्या सबके लिए अलग-अलग बनेंगे ?" उसने कहा।

"लेकिन गरीब लोग ?" उसने आदमी को देखा, "मैंने एक रात टी. वी. में उन्हें देखा था···।" वह सिक्कों को भूल गयी और कुछ असमंजस में फर्श पर बिखरी चीजों को देखने लगी। तब पहली बार आदमी को लगा – वह लड़की जो उसके सामने बैठी है, कोई दूसरी है। पहचान का फ्रेम वही है जो उसने दो साल पहले देखा था लेकिन बीच की तस्वीर बदल गयी है। किन्तु वह बदली नहीं थी, वह सिर्फ कहीं और चली गयी थी। वे माँ-बाप जो अपने बच्चों के साथ हमेशा नहीं रहते, उन गोपनीय मंजिलों के बारे में कुछ नहीं जानते जो उनके अभाव की नींव पर ऊपर-ही-ऊपर बनती रहती हैं, लड़की अपने बचपन की बेसमेण्ट में जाकर ही पिता से मिल पाती थी··· लेकिन कभी-कभी उसे छोड़कर दूसरे कमरों में चली जाती थी, जिसके बारे में आदमी को कुछ भी मालूम नहीं था।

"पापा !" लड़की ने उसकी ओर देखा, "क्या मैं इन चीजों को समेटकर रख दूँ ?"

"क्यों, इतनी जल्दी क्या है ?"

"नहीं, जल्दी नहीं... लेकिन मामा आकर देखेंगी तो... !" उसके स्वर में हल्की-सी घबराहट थी, जैसे वह हवा में किसी अदृश्य खतरे को सूँघ रही हो।

"आयेंगी तो क्या ?" आदमी ने कुछ विस्मय से लड़की को देखा।

"पापा, धीरे बोलो... !" लड़की ने ऊपर कमरे की तरफ देखा, ऊपर सन्नाटा था, जैसे घर की एक देह हो, दो में बँटी हुई, जिसका एक हिस्सा सुन्न और निस्पन्द पड़ा हो, दूसरे में वे दोनों बैठे थे। और तब उसे भ्रम हुआ कि लड़की कोई कठपुतली का नाटक कर रही है। ऊपर के धागे से बँधी हुई, जैसे वह खिंचता है, वैसे वह हिलती है, लेकिन वह न धागे को देख सकता है, न उसे, जो उसे हिलाता है...

वह उठ खड़ा हुआ। लड़की ने आतंकित होकर उसे देखा, "आप कहाँ जा रहे हैं ?

"वह नीचे नहीं आयेंगी ?" उसने पूछा।

"उन्हें मालूम है, आप यहाँ हैं।" लड़की ने कुछ खीजकर कहा।

"इसीलिए वह नहीं आना चाहतीं ?"

"नहीं... !" लड़की ने कहा, "इसीलिए वह कभी भी आ सकती हैं।"

कैसे पागल हैं। इतनी छोटी-सी बात नहीं समझ सकते। "आप बैठिए, मैं अभी इन सब चीजों को समेट लेती हूँ।"

वह फर्श पर उकड़ूँ बैठ गयी ; बड़ी सफाई से हर चीज को उठाकर कोने में रखने लगी। मखमल की जूती, पशमीने की शाल, गुजरात एम्पोरियम का बैडकवर। उसकी पीठ पिता की ओर थी, किन्तु वह उसके हाथ देख सकता था, पतले और साँवले, बिल्कुल अपनी माँ की तरह, वैसे ही निस्संग और ठण्डे, जो उसकी लायी चीजों को आत्मीयता से पकड़ते नहीं थे, सिर्फ अनमने भाव से अलग ठेल देते थे। वे एक ऐसी बच्ची के हाथ थे, जिसने सिर्फ माँ के सीमित और सुरक्षित स्नेह को छूना सीखा था, मर्द के उत्सुक और पीड़ित उन्माद को नहीं जो पिता के सेक्स की काली कन्दरा से उमड़ता हुआ बाहर आता है।

अचानक लड़की के हाथ ठिठक गये। उसे लगा, कोई दरवाजे की घण्टी बजा रहा है लेकिन दूसरे ही क्षण फोन का ध्यान आया जो ज़ीने के नीचे कोटर में था और जंजीर से बँधे पिल्ले की तरह जोर-जोर से चीख रहा था। लड़की ने चीजें वैसे ही छोड़ दीं और लपकते हुए सीढ़ियों के पास गयी, फोन उठाया, एक क्षण तक कुछ सुनायी नहीं दिया। फिर वह चिल्लायी –

"मामा, आपका फोन !"

बच्ची बेनिस्टर के सहारे खड़ी थी, हाथ में फोन झुलाती हुई। ऊपर का दरवाजा खुला और ज़ीना हिलने लगा। काई नीचे आ रहा था, फिर एक सिर लड़की के चेहरे पर झुका, गुँथा

हुआ जूड़ा और फोन के बीच एक पूरा चेहरा उभर आया···

"किसका है ?" औरत ने अपने लटकते हुए जूड़े को पीछे धकेल दिया और लड़की के हाथ से फोन खींच लिया। आदमी कुर्सी से उठा··· लड़की ने उसकी ओर देखा। "हलो," औरत ने कहा। "हलो, हलो," औरत की आवाज ऊपर उठी और तब उसे पता चला, कि यह उस स्त्री की आवाज है, जो उसकी पत्नी थी ; वह उसे बरसों बाद भी सैकड़ों आवाजों की भीड़ में पहचान सकता था··· ऊँची पिच पर हल्के-से काँपती हुई, हमेशा से सख्त, आहत, परेशान, उसकी देह की एकमात्र चीज, जो देह से परे आदमी की आत्मा पर खून की खरोंच खींच जाती थी··· वह जैसे उठा था, वैसे ही बैठ गया।

लड़की मुस्करा रही थी।

वह हैंगर के आईने से आदमी का चेहरा देख रही थी – और वह चेहरा कुछ वैसा ही बेडौल दिखायी दे रहा था जैसे उम्र के आईने से औरत की आवाज – उल्टा, टेढ़ा, पहेली-सा रहस्यमय ! वे तीनों व्यक्ति अनजाने में चार में बँट गये थे – लड़की, उसकी माँ, वह और उसकी पत्नी घर जब गृहस्थी में बदलता है, तो अपने-आप फैलता जाता है···

"तुम जेनी से बात करोगी ?" औरत ने लड़की से कहा और बच्ची जैसे इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी। वह उछलकर ऊपरी सीढ़ी पर आयी और माँ से टेलीफोन ले लिया, "हलो जेनी, इट इज़ मी !"

वह दो सीढ़ियाँ नीचे उतरी ; अब आदमी उसे पूरा-का-पूरा देख सकता था।

"बैठो···," आदमी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। उसके स्वर में एक बेबस-सा अनुनय था, मानो उसे डर हो कि कहीं उसे देखकर वह उल्टे पाँव न लौट जाये।

वह एक क्षण अनिश्चय में खड़ी रही। अब वापस मुड़ना निरर्थक था, लेकिन इस तरह उसके सामने खड़े रहने का भी कोई तुक नहीं था। वह स्टूल खींचकर टी. वी. के आगे बैठ गयी।

"कब आये ?" उसका स्वर इतना धीमा था कि आदमी को लगा, टेलीफोन पर कोई दूसरी औरत बोल रही थी।

"काफी देर हो गयी··· मुझे तो पता भी न था कि तुम ऊपर कमरे में हो !"

स्त्री चुपचाप उसे देखती रही।

आदमी ने जेब से रूमाल निकाला, पसीना पोंछा, मुस्कराने की कोशिश में मुस्कराने लगा। "मैं बहुत देर तक बाहर खडा़ रहा, मुझे पता नहीं था, घण्टी खराब है ! गैराज खाली पड़ा था, मैंने सोचा, तुम दोनों कहीं बाहर गये हो··· तुम्हारी कार ?" उसे मालूम था, फिर भी उसने पूछा।

"सर्विसिंग के लिए गयी है !" स्त्री ने कहा। वह हमेशा से उसकी छोटी, बेकार की बातों से नफरत करती आयी थी, जबकि आदमी के लिए वे कुछ ऐसे तिनके थे, जिन्हें पकड़कर डूबने

से बचा जा सकता था। कम-से-कम कुछ देर के लिए˙˙˙

"तुम्हें मेरा टेलीग्राम मिल गया था ? मैं फ्रेंकफर्ट आया था, उसी टिकट पर यहाँ आ गया ; कुछ पौण्ड ज्यादा देने पड़े। मैंने तुम्हें वहाँ से फोन भी किया, लेकिन तुम दोनों कहीं बाहर थे˙˙˙"

"कब ?" औरत ने हल्की जिज्ञासा से उसकी ओर देखा, "हम दोनों घर में थे।"

"घण्टी बज रही थी, लेकिन किसी ने उठाया नहीं। हो सकता है, आपरेटर मेरी अंग्रेजी नहीं समझ सकी और गलत नम्बर दे दिया हो ! लेकिन सुनो।" वह हँसने लगा, "एक अजीब बात हुई। हीथ्रो पर मुझे एक औरत मिली, जो पीछे से बिल्कुल तुम्हारी तरह दिखायी दे रही थी, यह तो अच्छा हुआ मैंने उसे बुलाया नहीं˙˙˙ हिन्दुस्तान के बाहर हिन्दुस्तानी औरतें एक-जैसी ही दिखायी देती हैं˙˙˙।" वह बोले जा रहा था। वह उस आदमी की तरह था जो आँखों पर पट्टी बाँधकर हवा में तनी हुई रस्सी पर चलता है, स्त्री कहीं बहुत नीचे थी, एक सपने में, जिसे वह बहुत पहले कभी जानता था, किन्तु अब उसे याद नहीं आ रहा था कि वह उसके सामने क्यों बैठा था ?

वह चुप हो गया। उसे ख्याल आया, इतनी देर से वह सिर्फ अपनी आवाज सुन रहा है, उसके सामने बैठी स्त्री बिल्कुल चुप बैठी थी। उसकी ओर बहुत ठण्डी और हताश निगाहों से देख रही थी।

"क्या बात है ?" आदमी ने कुछ भयभीत-सा होकर पूछा।

"मैंने तुमसे मना किया था ; तुम समझते क्यों नहीं ?"

"किसके लिए ? तुमने किसके लिए मना किया था ?"

"मैं तुमसे कुछ नहीं चाहती˙˙˙ मेरे घर तुम ये सब चीजें क्यों लाते हो ; क्या फायदा है इनका ?"

पहले क्षण वह नहीं समझा, कौन-सी चीजें ? फिर उसकी निगाहें फर्श पर गयीं˙˙˙ शान्ति-निकेतन का पर्स, डाक टिकटों का अल्बम, दालबीजी का डिब्बा – वे अब बिल्कुल लुटी-पिटी दिखायी दे रही थीं, जैसे वह कुर्सी पर बैठा हुआ. वैसी वे फर्श पर बिखरी हुई। "कौन-सी ज्यादा हैं ?" उसने खिसियाते हुए कहा, "इन्हें न लाता तो आधा सूटकेस खाली पड़ा रहता।"

"लेकिन मैं तुमसे कुछ नहीं चाहती˙˙˙ तुम क्या इतनी-सी बात नहीं समझ सकते ?"

स्त्री की आवाज काँपती हुई ऊपर उठी, जिसके पीछे न जाने कितनी लड़ाइयों की पीड़ा, कितने नरकों का पानी भरा था, जो बाँध टूटते ही उसके पास आने लगा, एक-एक इंच आगे बढ़ता हुआ। उसने जेब से रूमाल निकाला और अपने लथपथ चेहरे को पोंछने लगा।

"क्या तुम्हें इतनी देर के लिए आना भी बुरा लगता है ?"

"हाँ˙˙˙।" उसका चेहरा तन गया, फिर अजीब हताशा में वह ढीली पड़ गयी, "मैं तुम्हें

देखना नहीं चाहती – बस !"

क्या यह इतना आसान है ! वह जिद्दी लड़के की तरह उसे देखने लगा, जो सवाल समझ लेने के बाद भी बहाना करता है कि उसे कुछ समझ में नहीं आया। "वुक्कू !" उसने धीरे से कहा, "प्लीज़ !"

"मुझे माफ करो... ।"औरत न कहा।

"तुम चाहती क्या हो ?"

"लीव मी अलोन... । इससे ज्यादा मैं कुछ और नहीं चाहती।"

"मैं बच्ची से भी मिलने नहीं आ सकता ?"

"इस घर में नहीं, तुम उससे कहीं बाहर मिल सकते हो ?'

"बाहर !" आदमी ने हकबकाकर सिर उठाया, "बाहर कहाँ ?"

उस क्षण वह भूल गया कि बाहर सारी दुनिया फैली है, पार्क, सड़कें, होटल के कमरे – उसका अपना संसार – बच्ची कहाँ-कहाँ उसके साथ घिसटेगी ?

वह फोन पर हँस रही थी। कुछ कह रही थी – "नहीं, आज मैं नहीं आ सकती। डैडी घर में हैं, अभी-अभी आ रहे हैं... नहीं, मुझे मालूम नहीं। मैंने पूछा नहीं... ।" क्या नहीं मालूम ? शायद उसकी सहेली ने पूछा था, वह कितने दिन रहेगा ? सामने बैठी स्त्री भी शायद यह जानना चाहती थी, कितना समय, कितनी घड़ियाँ, कितनी यातना अभी और उसके साथ भोगनी पड़ेगी ?

शाम की आखिरी धूप भीतर आ रही थी। टी. वी. का स्क्रीन चमक रहा था, लेकिन वह खाली था और उसमें सिर्फ स्त्री की छाया बैठी थी, जैसे खबरें शुरू होने से पहले एनाउंसर की छवि दिखायी देती है, पहले कमजोर और धुँधली, फिर धीरे-धीरे 'ब्राइट' होती हुई... वह साँस रोके प्रतीक्षा कर रहा था कि वह कुछ कहेगी हालाँकि उसे मालूम था कि पिछले वर्षों में सिर्फ एक न्यूज-रील है जो हर बार मिलने पर एक पुरानी पीड़ा का टेप खोलने लगती है, जिसका सम्बन्ध किसी दूसरी जिन्दगी से है... चीजें और आदमी कितनी अलग हैं ! बरसों बाद भी घर, किताबें, कमरे वैसे ही रहते हैं, जैसा तुम छोड़ गये थे ; लेकिन लोग ? वे उसी दिन से मरने लगते हैं, जिस दिन से अलग हो जाते हैं... मरते नहीं, एक दूसरी जिन्दगी जीने लगते हैं, जो धीरे-धीरे उस जिन्दगी का गला घोंट देती है, जो तुमने साथ गुजारी थी...

"मैं सिर्फ बच्ची से नहीं... " वह हकलाने लगा, "मैं तुमसे भी मिलने आया था।"

"मुझसे ?" औरत के चेहरे पर हँसी, हिकारत, हैरानी एकसाथ उमड़ा आयीं, "तुम्हारी झूठ की आदत अभी तक नहीं गयी !"

"तुमसे झूठ बोलकर अब मुझे क्या मिलेगा ?"

"मालूम नहीं, तुम्हें क्या मिलेगा – मुझे जो मिला है, उसे मैं भोग रही हूँ।" उसने एक ठहरी ठण्डी निगाह से बाहर देखा। "मुझे अगर तुम्हारे बारे में पहले से ही कुछ मालूम होता, तो

मैं कुछ कर सकती थी।"

"क्या कर सकती थीं ?" एक ठण्डी-सी झुरझुरी ने आदमी को पकड़ लिया।

"कुछ भी। मैं तुम्हारी तरह अकेली नहीं रह सकती ; लेकिन अब इस उम्र में... अब कोई मुझे देखता भी नहीं।"

"वुक्कू... !" उसने हाथ पकड़ लिया।

"मेरा नाम मत लो... वह सब खत्म हो गया।"

वह रो रही थी ; बिल्कुल निस्संग, जिसका गुजरे हुए आदमी और आनेवाली उम्मीद्र – दोनों से कोई सरोकार नहीं थी। आँसू, जो एक कारण से नहीं, पूरा पत्थर हट जाने से आते हैं, एक ढलुआ जिन्दगी पर नाले की तरह बहते हुए ; औरत बार-बार उन्हें अपने हाथ से झटक देती थी...

बच्ची कब से फोन के पास चुप बैठी थी। वह ज़ीने की सबसे निचली सीढ़ी पर बैठी थी और सूखी आँखों से रोती माँ को देख रही थी। उसके सब प्रयत्न निष्फल हो गये थे, किन्तु उसके चेहरे पर निराशा नहीं थी। हर परिवार के अपने दुःस्वप्न होते हैं जो एक अनवरत पहिये में घूमते हैं ; वह उसमें हाथ नहीं डालती थी। इतनी कम उम्र में वह इतना बड़ा सत्य जान गयी थी कि मनुष्य के मन और बाहर की सृष्टि में एक अद्भुत समानता है – वे जब तक अपना चक्कर पूरा नहीं कर लेते, उन्हें बीच में रोकना बेमानी है... ।

वह बिना आदमी को देखे माँ के पास गयी ; कुछ कहा, जो उसके लिए नहीं था। औरत ने उसे अपने पास बिठा लिया, बिल्कुल अपने से सटाक़र। काऊच पर बैठी वे दोनों दो बहनों-सी लग रही थीं। वे उसे भूल गयी थीं। कुछ देर पहले जो ज्वार उठा था, उसमें घर डूब गया था लेकिन अब पानी वापस लौट गया था और अब आदमी वहाँ था, जहाँ उसे होना चाहिए था – किनारे पर। उसे यह ईश्वर का वरदान-जैसा जान पड़ा ; वह दोनों के बीच बैठा है – अदृश्य ! बरसों से उसकी यह साध रही थी कि वह माँ और बेटी के बीच अदृश्य बैठा रहे। सिर्फ ईश्वर ही अपनी दया में अदृश्य होता है – यह उसे मालूम था। किन्तु जो आदमी गढ़हे की सबसे निचली सतह पर जीता है, उसे भी कोई नहीं देख सकता। माँ और बच्ची ने उसे अलग छोड़ दिया था ; यह उसकी उपेक्षा नहीं थी। उसकी तरफ से मुँह मोड़कर उन्होंने उसे अपने पर छोड़ दिया था – ठीक वहीं – जहाँ उसने बरसों पहले घर छोड़ा था।

लड़की माँ को छोड़कर उसके पास आकर बैठ गयी।

"हमारा बाग देखने चलोगे ?" उसने कहा।

"अभी ?" उसने कुछ विस्मय से लड़की को देखा। वह कुछ अधीर और उतावली-सी दिखायी दे रही थी, जैसे वह उससे कुछ कहना चाहती हो, जिसे कमरे के भीतर कहना असम्भव हो।

"चलो," आदमी ने उठते हुए कहा, "लेकिन पहले इन चीजों को ऊपर ले जाओ।"

"हम इन्हें बाद में समेट लेंगे।"

"बाद में कब ?" आदमी ने कुछ सशंकित होकर पूछा।

"आप चलिए तो !" लड़की ने लगभग उसे घसीटते हुए कहा।

"इनसे कहो, अपना सामान सूटकेस में रख लें।" स्त्री की आवाज सुनायी दी।

उसे लगा, किसी ने अंचानक पीछे से धक्का दिया हो। वह चमककर पीछे मुड़ा, "क्यों ?"

"मुझे इनकी कोई जरूरत नहीं है।"

उसके भीतर एक लपलपाता अन्धड़ उठने लगा, "मैं नहीं ले जाऊँगा, तुम चाहो तो इन्हें बाहर फेंक सकती हो।"

"बाहर ?" स्त्री की आवाज थरथरा रही थी, "मैं इनके साथ तुम्हें भी बाहर फेंक सकती हूँ।" रोने के बाद उसकी आँखें चमक रही थीं ; गालों का गीलापन सूखे काँच-सा जम गया था, जो पोंछे हुए नहीं, सूखे हुए आँसुओं से उभरकर आता है।

"क्या हम बाग देखने नहीं चलेंगे ?" बच्ची ने उसका हाथ खींचा – और वह उसके साथ चलने लगा। वह कुछ भी नहीं देख रहा था। घास, क्यारियाँ और पेड़ एक गूँगी फिल्म की तरह चल रहे थे। सिर्फ उसकी पत्नी की आवाज एक भुतैली कमेण्ट्री की तरह गूँज रही थी – बाहर, बाहर !

"आप मम्मी के साथ बहस क्यों करते है ?" लड़की ने कहा।

"मैंने बहस कहाँ की ?" उसने बच्ची को देखा – जैसे वह भी उसकी दुश्मन हो।

"आप करते हैं।" लड़की का स्वर अजीब-सा हठीला हो आया था। वह अंग्रेज़ी में 'यू' कहती थी, जिसका मतलब प्यार में 'तुम' होता था और नाराजगी में 'आप'। अंग्रेजी सर्वनाम की यह सन्दिग्धता बाप-बेटी के रिश्ते को हवा में टाँगे रहती थी, कभी बहुत पास, कभी बहुत पराया – जिसका सही अन्दाज उसे सिर्फ लड़की की टोन में टटोलना पड़ता था। एक अजीब-से भय ने आदमी को पकड़ लिया। वह एक ही समय में माँ और बच्ची दोनों को नहीं खोना चाहता था।

"बड़ा प्यारा बाग है," उसने फुसलाते हुए कहा, "क्या माली आता है ?"

"नहीं, माली नहीं।" लड़की ने उत्साह से कहा, "मैं शाम को पानी देती हूँ और छुट्टी के दिन ममी घास काटती हैं··· इधर आओ, मैं तुम्हें एक चीज दिखाती हूँ।"

वह उसके पीछे-पीछे चलने लगा। लॉन बहुत छोटा था – हरा, पीला, मखमली ! पीछे गैराज था और दोनों तरफ झाड़ियों की फेंस लगी थी। बीच में एक घना, बूढ़ा, विलो खड़ा था। लड़की पेड़ के पीछे छिप-सी गयी, फिर उसकी आवाज सुनायी दी, "कहाँ हो तुम ?"

वह चुपचाप, दबे-पाँवों से पेड़ के पीछे चला आया और हैरान-सा खड़ा रहा। विलो और फेंस के बीच काली लकडी का बाड़ा था, जिसके दरवाजे से एक खरगोश बाहर झाँक रहा

था ; दूसरा खरगोश लड़की की गोद में था। वह उसे ऐसे सहला रही थी, जैसे वह ऊन का गोला हो, जो कभी भी हाथ से छूटकर झाड़ियों में गुम हो जायेगा।

"ये हमने अभी पाले हैं··· पहले दो थे, अब चार।"

"बाकी कहाँ हैं ?"

"बाड़े के भीतर··· वे अभी बहुत छोटे हैं।"

पहले उसका मन भी खरगोश को छूने के लिए हुआ, किन्तु उसका हाथ अपने-आप बच्ची के सिर पर चला गया और वह धीरे-धीरे उसके भूरे, छोटे बालों से खेलने लगा। लड़की चुप खड़ी रही और खरगोश अपनी नाक सिकोड़ता हुआ उसकी ओर ताक रहा था।

"पापा ?" लड़की ने बिना सिर उठाये धीरे-से कहा, "क्या आपने डे-रिटर्न का टिकट लिया है ?"

"नहीं ; क्यों ?"

"ऐसे ही ; यहाँ वापसी टिकट बहुत सस्ता मिल जाता है।"

क्या उसने यही पूछने के लिए उसे यहाँ बुलाया था ? उसने धीरे-से अपना हाथ लड़की के सिर से हटा लिया।

"आप रात को कहाँ रहेंगे ?" लड़की का स्वर बिल्कुल भावहीन था।

"अगर मैं यहीं रहूँ तो ?"

लड़की ने धीरे-से खरगोश को बाड़े में रख दिया और खट-से दरवाजा बन्द कर दिया।

"मैं हँसी कर रहा था," उसने हँसकर कहा, "मैं आखिरी ट्रेन से लौट जाऊँगा।"

लड़की ने मुड़कर उसकी ओर देखा, "यहाँ दो-तीन अच्छे होटल भी हैं···। मैं अभी फोन करके पूछ लेती हूँ।" बच्ची का स्वर बहुत कोमल हो आया। यह जानते ही कि वह रात को घर में नहीं ठहरेगा, वह माँ से हटकर आदमी के साथ हो गयी ; धीरे-से उसका हाथ पकड़ा, उसे वैसे ही सहलाने लगी, जैसे अभी कुछ देर पहले खरगोश को सहला रही थी। लेकिन आदमी का हाथ पसीने से तरबतर था।

"सुनो, मैं अगली छुट्टियों में इण्डिया आऊँगी – इस बार पक्का है।"

उसे कुछ आश्चर्य हुआ कि आदमी ने कुछ नहीं कहा ; सिर्फ बाड़े में खरगोशों की खटर-पटर सुनायी दे रही थी।

"पापा··· तुम कुछ बोलते क्यों नहीं ?"

"तुम हर साल यही कहती हो।"

"कहती हूँ··· लेकिन इस बार मैं आऊँगी, डोण्ट यू बिलीव मी ?"

"भीतर चलें ? ममी हैरान हो रही होंगी कि हम कहाँ रह गये।"

अगस्त का अँधेरा चुपचाप चला आया था। हवा में विलो की पत्तियाँ सरसरा रही थीं। कमरों के परदे गिरा दिये गये थे, लेकिन रसोई का दरवाजा खुला था। लड़की भागते हुए भीतर

गयी और सिंक का नल खोलकर हाथ धोने लगी। वह उसके पीछे आकर खड़ा हो गया ; सिंक के ऊपर आईने में उसने अपना चेहरा देखा – रूखी गर्द और बढ़ी हुई दाढ़ी और सुर्ख आँखों के बीच उसकी ओर हैरत में ताकता हुआ – नहीं, तुम्हारे लिए कोई उम्मीद नहीं···

"पापा, क्या तुम अब भी अपने-आपसे बोलते हो ?" लड़की ने पानी में भीगा अपना चेहरा उठाया – वह शीशे में उसे देख रही थी।

"हाँ, लेकिन अब मुझे कोई सुनता नहीं··· ।" उसने धारे-से बच्ची के कन्धे पर हाथ रखा, "क्या फ्रिज में सोडा होगा ?"

"तुम भीतर चलो, मैं अभी लाती हूँ।"

कमरे में कोई न था। उसकी चीजें बटोर दी गयी थीं। सूटकेस कोने में खड़ा था ; जब वे बाग में थे, उसकी पत्नी ने शायद उन सब चीज़ों को देखा होगा ; उन्हें छुआ होगा। वह उससे चाहे कितनी नाराज क्यों न हो – चीज़ों की बात अलग थी। वह उन्हें ऊपर नहीं ले गयी थी, लेकिन दुबारा सूटकेस में डालने की हिम्मत नहीं की थी··· उसने उन्हें अपने भाग्य पर छोड़ दिया था।

कुछ देर बाद जब बच्ची सोडा और गिलास लेकर आयी, तो उसे सहसा पता नहीं चला कि वह कहाँ बैठा है। कमरे में अँधेरा था – पूरा अँधेरा नहीं – सिर्फ इतना जिसमें कमरे में बैठा आदमी चीज़ों के बीच चीज़-जैसा दिखायी देता है, "पापा··· तुमने बत्ती नहीं जलायी ?"

"अभी जलाता हूँ··· ।" वह उठा और स्विच को ढूँढ़ने लगा, बच्ची ने सोडा और गिलास मेज पर रख दिया और टेबुल लैम्प जला दिया।

"ममी कहाँ हैं ?"

"वह नहा रही है, अभी आती होंगी।"

उसने अपने बैग से व्हिस्की निकाली, जो उसने फ्रेंकफर्ट के एयरपोर्ट पर खरीदी थी··· गिलास में डालते हुए उसके हाथ ठिठक गये, 'तुम्हारी जिंजर-एल कहाँ है ?"

"मैं अब असली बीयर पीती हूँ।" लड़की ने हँसकर उसकी ओर देखा, "तुम्हें बर्फ चाहिए ?"

"नहीं··· लेकिन तुम जा कहाँ रही हो ?"

"बाड़े में खाना डालने··· नहीं तो वे एक-दूसरे को मार खायेंगे।"

वह बाहर गयी तो खुले दरवाजे से बाग का अँधेरा दिखायी दिया – तारों की पीली तलछट में झिलमिलाता हुआ। हवा नहीं थी। बाहर का सन्नाटा घर की अदृश्य आवाजों के भीतर से छनकर आता था। उसे लगा, वह अपने घर में बैठा है और जो कभी बरसों पहले होता था, वह अब हो रहा है। वह शॉवर के नीचे गुनगुनाती रहती थी और जब वह बालों पर तौलिया साफे की तरह बाँधकर बाहर निकलती थी, तब पानी की बूँदे बाथरूम से लेकर उसके कमरे तक एक लकीर बनाती जाती थीं – पता नहीं वह लकीर कहाँ बीच में सूख गयी ? कौन-सी जगह, किस खास मोड़ पर वह चीज हाथ से छूट गयी, जिसे वह कभी दुबारा नहीं पकड़ सका !

उसने कुछ और व्हिस्की डाली ; हालाँकि गिलास अभी खाली नहीं हुआ था। उसे कुछ अजीब लगा कि पिछली रात भी यही घड़ी थी जब वह पी रहा था ; लेकिन तब वह हवा में था। जब उसे एयर-होस्टेज की आवाज सुनायी दी कि हम चैनल पार कर रहे हैं तो उसने हवाई जहाज की खिड़की से नीचे देखा – कुछ भी दिखायी न देता था – न समुद्र, न लाइट हाउस, सिर्फ अँधेरा, अँधेरे में बहता हुआ अँधेरा – फिर कुछ भी नहीं। और त ब नीचे अँधेरे में झाँकते हुए उसे ख्याल आया कि वह चैनल जो नीचे कहीं दिखायी नहीं देता था, असल में कहीं भीतर है – उसकी एक जिन्दगी से दूसरी जिन्दगी तक फैला हुआ ; जिसे वह हमेशा पार करता रहेगा, कभी इधर, कभी उधर, कहीं का भी नहीं, न कहीं से आता हुआ, न कहीं पहुँचता हुआ...।

"बिन्दु कहाँ है ?" उसने चौंककर ऊपर देखा, वह वहाँ कब से खड़ी थी, उसे पता नहीं चला था। "बाहर बाग में," उसने कहा, "खरगोशों को खाना देने।"

वह अलग खड़ी थी, बेनिस्टर के नीचे। नहाने के बाद उसने एक लम्बी मैक्सी पहन ली थी...। बाल खुले थे। चेहरा बहुत धुला और चमकीला-सा लग रहा था। वह मेज पर रखे उसके गिलास को देख रही थी। उसका चेहरा शान्त था ; शॉवर ने जैसे न केवल उसके गिलास को, बल्कि उसके सन्ताप को भी धो डाला था।

"बर्फ भी रखी है।" उसने कहा।

"नहीं, मैंने सोडा ले लिया ; तुम्हारे लिए एक बना दूँ ?"

उसने सिर हिलाया, जिसका मतलब कुछ भी था ; उसे मालूम था कि गर्म पानी से नहाने के बाद उसे कुछ ठण्डा पीना अच्छा लगता था। अर्से बाद भी वह उसकी आदतें नहीं भूला था, बल्कि उन आदतों के सहारे ही दोनों के बीच पुरानी पहचान लौट आती थी। वह रसोई में गया और उसके लिए एक गिलास ले आया। उसमें थोड़ी-सी बर्फ डाली। जब व्हिस्की मिलाने लगा, तो उसकी आवाज सुनायी दी – "बस, इतनी काफी है।"

वह धुली हुई आवाज थी, जिसमें कोई रंग नहीं था, न स्नेह का, न नाराजगी का – एक शान्त और तटस्थ आवाज। वह सीढ़ियों से हटकर कुर्सी के पास चली आयी थी।

"तुम बैठोगी नहीं ?" उसने कुछ चिन्तित होकर पूछा।

उसने अपना गिलास उठाया और वहीं स्टूल पर बैठ गयी, जहाँ दुपहर को बैठी थी। टी वी. के पास लेकिन टेबुल लैम्प से दूर – जहाँ सिर्फ रोशनी की एक पतली-सी झाँई उस तक पहुँच रही थी।

कुछ देर तक दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला, फिर स्त्री की आवाज सुनायी दी, "घर में सब लोग कैसे हैं ?"

"ठीक हैं... ये सब चीजें उन्होंने ही भेजी हैं।"

"मुझे मालूम है," औरत ने कुछ थके स्वर में कहा, "क्यों उन बेचारों को तंग करते हो ?

तुम ढो-ढोकर इन चीज़ों को लाते हो और वे यहाँ बेकार पड़ी रहती हैं।"

"वे यही कर सकते हैं," उसने कहा, "तुम बरसों से वहाँ गयी नहीं ; वे बहुत याद करते हैं।"

"अब जाने का कोई फायदा है ?" उसने गिलास से लम्बा घूँट लिया, "मेरा अब उनसे कोई रिश्ता नहीं।"

"तुम बच्ची के साथ तो आ सकती हो, उसने अभी तक हिन्दुस्तान नहीं देखा।"

वह कुछ देर चुप रही ... फिर धीरे-से कहा, "अगले साल वह चौदह वर्ष की हो जायेगी ... कानून के मुताबिक तब वह कहीं भी जा सकती है।"

"मैं कानून की बात नहीं कर रहा ; तुम्हारे बिना वह कहीं नहीं जायेगी।"

स्त्री ने गिलास की भीगी सतह से आदमी को देखा, "मेरा बस चले तो उसे वहाँ कभी न भेजूँ।"

"क्यों ?" आदमी ने उसकी ओर देखा।

वह धीरे-से हँसी, "क्या हम दो हिन्दुस्तानी उसके लिए काफी नहीं हैं ?"

वह बैठा रहा। कुछ देर बाद रसोई का दरवाजा खुला, लड़की भीतर आयी, चुपचाप दोनों को देखा और फिर ज़ीने के पास चली गयी, जहाँ टेलीफोन रखा था।

"किसे कर रही हो ?" औरत ने पूछा।

लड़की चुप रही, फोन का डायल घुमाने लगी।

आदमी उठा, उसकी ओर देखा, "थोड़ा-सा और लोगी ?"

"नहीं ...।" उसने सिर हिलाया। आदमी धीरे-धीरे अपने गिलास में डालने लगा।

"क्या बहुत पीने लगे हो ?" औरत ने कहा।

"नहीं ...।" आदमी ने सिर हिलाया, "सफ़र में कुछ ज्यादा ही हो जाता है।"

"मैंने सोचा था, अब तक तुमने घर बसा लिया होगा।"

"कैसे ?" उसने स्त्री को देखा, "तुम्हें यह कैसे भ्रम हुआ ?"

औरत कुछ देर तक नीरव आँखों से उसे देखती रही, "क्यों, उस लड़की का क्या हुआ ? वह तुम्हारे साथ नहीं रहती ?" स्त्री के स्वर में कोई उत्तेजना नहीं थी, न क्लेश की कोई छाया थी ... जैसे दो व्यक्ति मुद्दत बाद किसी ऐसी घटना की चर्चा कर रहे हों जिसने एक झटके से दोनों को अलग छोरों पर फेंक दिया था।

"मैं अकेला रहता हूँ ... माँ के साथ।" उसने कहा।

औरत ने तनिक विस्मय से उसे देखा, "क्या बात हुई ?"

"कुछ नहीं ... मैं शायद साथ रहने के काबिल नहीं हूँ।" उसका स्वर असाधारण रूप से धीमा हो आया, जैसे वह उसे अपनी किसी गुप्त बीमारी के बारे में बता रहा हो, "तुम हैरान हो ? लेकिन ऐसे लोग होते हैं ... " वह कुछ और कहना चाहता था, प्रेम के बारे में, वफादारी के

बारे में, विश्वास और धोखे के बारे में ; कोई बड़ा सत्य, जो बहुत-से झूठों से मिलकर बनता है, व्हिस्की की धून्ध में बिजली की तरह कौंधता है और दूसरे क्षण हमेशा के लिए अँधेरे में लोप हो जाता है···

लड़की शायद इस क्षण की ही प्रतीक्षा कर रही थी ; वह टेलीफोन से उठकर आदमी के पास आयी, एक बार माँ को देखा, वह टेबुल-लैम्प के पीछे अँधेरे के आधे कोने में छिप गयी थीं, और आदमी ? वह गिलास के पीछे सिर्फ एक डबडबाता-सा धब्बा बनकर रह गया था।

"पापा," लड़की के हाथ में कागज का पुर्जा था, "यह होटल का नाम है, टैक्सी तुम्हें सिर्फ दस मिनट में पहुँचा देगी।"

उसने लड़की को अपने पास खींच लिया और कागज जेब में रख लिया। कुछ देर तक तीनों चुप बैठे रहे, जैसे बरसों पहले यात्रा पर निकलने से पहले घर के सब प्राणी एकसाथ सिमटकर चुप बैठ जाते थे। बाहर बहुत-से तारे निकल आये थे, जिसमें बूढ़ी विलो, झाड़ियाँ और खरगोशों का बाड़ा एक निस्पन्द पीले आलोक में पास-पास सरक आये थे।

उसने अपना गिलास मेज पर रखा, फिर धीरे-से लड़की को चूमा, अपना सूटकेस उठाया और जब लड़की ने दरवाजा खोला, तो वह क्षण-भर देहरी पर ठिठक गया, "मैं चलता हूँ।" उसने कहा। पता नहीं, यह बात उसने किससे कही थी, किन्तु जहाँ वह बैठी थी, वहाँ से कोई आवाज नहीं आयी। वहाँ उतनी ही घनी चुप्पी थी, जितनी बाहर अँधेरे में, जहाँ वह जा रहा था।

पिछली गर्मियों में

वह दो सीढ़ियाँ नीचे उतरा और अन्तिम सीढ़ी पर आकर ठिठक गया। पाँव के अँगूठे से पानी को छुआ। एक गुनगुनी-सी झनझनाहट उसकी नंगी देह में फैलने लगी। एक आतुरता-सी हुई अपने को खुला छोड़ देने की, किन्तु उसने अपने को रोके रखा। उसकी निगाह 'पूल' (तालाब) पर टिक गयी जो उजली सफेद धूप में शान्त और स्थिर था, कुछ-कुछ अलसाया-सा भी, जैसे अकसर गर्मियों में ठहरा पानी हो जाता है।

वह अपने को और अधिक नहीं रोक सका। एक क्षण बाद ही उसकी देह सफेद-नीले पानी में खो गयी।

गरमी के उन अन्तिम दिनों में वह अकसर यहाँ आता था। वह दोपहर-भर नीचे रहता—पानी के नीले और ठण्डे अँधेरे में। कुछ देर के लिए अपने शहर को भूल जाता, घर को भी। पानी के भीतर उसे लगता, जैसे वह सो रहा हो।

जब वह बाहर आया, महीप हवा में हाथ हिलाता हुआ उसे बुला रहा था। वह पूल के किनारे घास पर लेटा था। पीछे की ओर क्लब की सफेद इमारत पर धूप उतर रही थी।

"काफी हो गया... चलो, भीतर चलें।" महीप ने कहा।

"तुम नहीं नहाओगे?"

"आज नहीं। तुम जल्दी करो, तुम्हारे लिए मैंने अपनी प्यास रोक रखी है।"

वह चाहता था, कुछ देर और पानी में लेटा रहे। वह चाहता था, रात-भर पानी में लेटा रहे। पूल के चारों तरफ बिजली के हण्डे जलने लगे थे। दूसरी तरफ एक छोटी-सी लड़की डाइविंग बोर्ड पर खड़ी थी। शायद कूदते हुए डर रही है—उसने सोचा। वह तौलियें से अपनी देह रगड़ने लगा।

"तुम ऊब नहीं जाते?"

"किससे?"

"मैं पाँच मिनट से ज़्यादा पानी में नहीं रह सकता!"

उसने गीला जाँघिया उतार दिया। महीप का मुँह लाल हो गया और दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

"तुम बिल्कुल प्रिमिटिव हो !" महीप ने कुछ झल्लाकर कहा।

वह हँसने लगा। उसके मन में जबरदस्त इच्छा हुई कि वह पूल में दोबारा चला जाये–इस बार बिना जाँघिये के। कितना फर्क पड़ जाता है अगर पानी में देह बिल्कुल नंगी हो।

कुछ देर बाद वे क्लब के लाउंज में चले आये। देर तक तैरने के बाद बियर-जैसी कोई चीज़ नहीं–उसने सोचा, अगर वह ठण्डी हो और कोई काम न हो। पिछले कई दिनों से उसके पास कोई काम नहीं है। वियना से आते हुए वह अपने साथ कुछ भी नहीं ला सकता था। बहुत अनिश्चित था। तीन वर्षों बाद वह वापस आया था और इस अरसे में यह उसकी पहली लम्बी छुट्टी थी।

"केशी का कोई पत्र आया ?" महीप ने पूछा।

"नहीं," उसने कहा, "वह शायद नहीं आ सकेगा।"

"जाने से पहले उससे एक बार तो मिलोगे ?"

"अभी कुछ तय नहीं है। मुझे शायद इतना समय नहीं मिल सकेगा।" उसने कहा।

उसने महीप को देखा। वह चुपचाप अपनी बियर पी रहा था। केशी के वह बहुत-से मित्रों को जानता था, किन्तु लौटने पर वह केवल महीप से मिल पाया है। उसके अपने मित्र पहले भी बहुत कम थे, जो थे वे इन वर्षों में केशी के इतने निकट आ गये हैं कि कभी-कभार, जब वह उनसे मिलता है, तो लगता है, जैसे वह अपने नहीं केशी के मित्रों से ही मिल रहा है।

बियर पीते हुए जब सब बातें चुक जाती हैं तो वे केशी को ले बैठते हैं।

"सीट बुक करा ली ?" महीप ने कुछ लापरवाही से पूछा। वह शायद यह प्रश्न तीन सौ बार पूछ चुका है : हर बार लापरवाही पहले से कुछ ज़्यादा बढ़ जाती है।

"अभी नहीं।" उसने गिलास में बोतल की बची हुई बियर उड़ेल दी। "अभी काफ़ी दिन हैं," उसने कहा। अरसे से उसने गिनना बन्द कर दिया है। पहले वह सोचता था–यह दिन है, यह रात। पानी के नीचे कटे-निखरे और साबुत पत्थरों की तरह वे चमकते रहते। वे अब भी वहाँ होंगे लेकिन अब वह उन्हें गिनता नहीं। वे अब उसके लिए नहीं हैं।

"मैं एक बियर और लूँगा। तुम ?" महीप ने पूछा।

"तुम एक ले लो, मैं उसी में थोड़ी-सी ले लूँगा।"

"सुनते हैं, वियना में 'बियर-गार्डन्स' होते हैं।... तुम कभी गये हो ?"

"मैं गया नहीं... लेकिन इन दिनों खुल जाते हैं। इन दिनों वहाँ बाहर आरकेस्ट्रा भी होता है...।" उसने कहा। उसे मालूम है कि महीप को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं है। अगर केशी यहाँ होता तो वे आपस में बातें कर सकते थे। और वह चुपचाप इन दोनों की बातें सुनता रहा। पहले ऐसा ही हुआ करता था। लेकिन इन दिनों, यहाँ केशी नहीं है, महीप को यह अपनी ज़िम्मेदारी लगती है कि वह इससे बातें करे। उसने कई बार महीप से कहने की कोशिश की है कि अगर वे चुप रहें तो उसे बुरा नहीं लगेगा। लेकिन यह असम्भव है।

"तुम्हारा मन घर में ऊब नहीं जाता ?" महीप ने पूछा। बियर खत्म हं. गयी थी और लाउंज़ में अँधेरा घिर आया था।

"नहीं," उसने कहा, "मुझे ठीक लगता है।"

"तुम्हें यहाँ अजीब तो लगता होगा`` इतने बरसों बाद !"

"इतना नहीं।" उसने सिगरेट सुलगा ली। उसे अपना स्वर कुछ अजीब-सा लगा। उसे हल्की-सी खुशी हुई कि महीप अँधेरे में उसका चेहरा नहीं देख सकता।

"तुमने कभी यहीं रहने के लिए नहीं सोचा ? तुम्हें आसानी से कोई पोस्ट मिल सकती है।"

"मैंने कभी सोचा नहीं," उसने कहा। पहले वह कभी-कभी सोचता था–शुरू में जब वह आया था। शुरू में, जब आया था तो उसमें काफी उत्साह था। उसे अब कभी-कभी स्वयं अपने उस उत्साह पर हँसी आने लगती है।

कुछ देर बाद जब वे बाहर आये तो उसे लगा, उसके गीले बाल धीरे-धीरे हवा में सूख रहे हैं। दिल्ली में उसे अगस्त के दिन हमेशा अच्छे लगते रहे हैं। वे तुम पर छाते नहीं और तुम इन दिनों दूसरे दिनों के बारे में सोच सकते हो–जो बीत गये है या जो आनेवाले है। सारे साल में अगस्त का महीना ही एक पुल की तरह है, तुम उस पर से गुजर जाते हो लेकिन खुद अपने में वह कुछ भी नहीं है।

वे विलिंग्डन क्रीसेण्ट से निकलकर कुशक रोड पर आ गये। गरम हवा का रेला आता था और सड़कों की धूल उड़कर फुटपाथ पर, फुटपाथ से उड़कर जामुन के पेड़ों से छनती हुई बँगलों की भूरी झाड़ियों पर बिछ जाती थी। अरसा पहले वे शहर के इस हिस्से में रहते थे। तब बाबू रिटायर्ड नहीं हुए थे। और केशी आर्मी में नहीं गया था। उन दिनों वे बाहर घास पर सोते थे और रात को हवा चलने से बेडमिण्टन का जाल बहुत देर तक फड़फड़ाता रहता था। उन रातों में नीता हमेशा रोती रहती थी (वह उसकी बहन है) और उन्हें पता नहीं चलता था कि उसने कोई बुरा स्वप्न देखा है या वह हवा में जाल की फड़फड़ाहट सुनकर डर गयी है। उसने सोचा, वह यह बात महीप से कहे। किन्तु फिर वह कुछ सोचकर चुप रह गया। महीप सोचेगा–वह बियर पीकर यह सब कह रहा है। ऐसे क्षणों में केशी हमेशा चुप रहता था। वह कहा करता था कि पीने के बाद अगर तुम अतीत के बारे में सोचने लगो तो तुममें 'डीपर फीलिंग' नहीं है।

मुझमें वह नहीं है–उसने सोचा। शायद बचपन में रही होगी। एक रात उसने केशी से कहा–"देखो, मैं मर रहा हूँ।" तब वह बहुत छोटा था। केशी उससे बहुत प्रभावित हुआ था। बाद में उसने उससे कहा, "अगर तुम उस दिन सचमुच मर जाते तो कुछ भी नहीं होता। तब मैं सिर्फ उदास हो जाता। लेकिन तुमने सिर्फ कहा और मरे नहीं, यह डीप फीलिंग है। यह बहुत ही डीप फीलिंग है।"

सेक्रेटेरियट की इमारत के सामने आकर वे ठहर गये। वहाँ बहुत-सी बसें खड़ी थीं।

लेकिन समय काफी था। वे चुपचाप खड़े रहे। महीप ने एक लम्बी साँस ली।

"तुम अरुणा से मिले हो?" उसने पूछा।

"अभी नहीं। मैं एक दिन वहाँ जाऊँगा।"

"घर में ही बैठना था तो इतनी दूर से आने की क्या ज़रूरत थी?"

"अभी काफ़ी दिन हैं," उसने कहा। उसे लगा, महीप उसकी ओर देख रहा है। उसे हल्की-सी दुविधा हुई और वह दूसरी ओर देखने लगा जहाँ पुराने बैरक थे। उन गरमियों में उसे अनके बार भ्रम हुआ है कि लोग कुछ देर उसके संग रहने के बाद विस्मय से उसकी ओर देखते हैं। वे कहते कुछ भी नहीं। शायद यह महज भ्रम है, और है कुछ भी नहीं। शायद कुछ पीने के बाद उसे ऐसा लगता है, बाद में उसे खयाल भी नहीं आता।

महीप की बस आ गयी थी, वह उसमें बैठ गया। "तुम कल आओगे?" उसने पूछा।

"हाँ। मैं पूल के पास रहूँगा।" उसने कहा।

वह उसे कुछ और भी कहना चाहता था, किन्तु बस चल दी थी और वह अकेला खड़ा रहा।

गरमी की उन रातों में वह अकसर देर से घर पहुँचता था। इससे कभी उसके पिता को बुरा नहीं लगा। उन्हें मालूम था कि इन दिनों उसके पास कुछ भी करने को नहीं है। उन्हें सिर्फ यही चिन्ता रहती कि वह कहीं घर में ऊब तो नहीं रहा। वह उन्हें आश्वासन देना चाहता कि वह बहुत सुखी है। उन दिनों के बारे में आज जब वह सोचता है तो लगता है कि वह तब सचमुच सुखी था। लेकिन वह यह कह नहीं सकता था। यह कहना कि तुम सुखी हो, बहुत हास्यास्पद है। कहोगे भी तो तुम पर कोई विश्वास नहीं करेगा।

उन गरमियों में उनके पास कुछ भी करने को नहीं था। उसका छोटा भाई केशी आर्मी में चला गया था और जब वह अपने कमरे में अकेला ऊब जाता तो स्विमिंग पूल चला जाता था। वहाँ उसे घर से ज्यादा अच्छा लगता था। उसे घर में भी अच्छा लगता था, लेकिन वहाँ माँ और बाबू थे और वे बहुत अकेले थे और वह उनके लिए कुछ भी नहीं कर सकता था।

रात को जब वे सो जाते थे तो वह कोन्याक पीने लगता था। कभी-कभी माँ उसे देख लेती थी और वह कुछ भी नहीं कहती थी। माँ का कुछ न कहना उसे काफी बुरा लगता था और उसकी इच्छा होती थी कि वह दोबारा नहाने के लिए चला जाये, लेकिन रात को तुम पूल में नहीं जा सकते।

उस रात वह सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ सहसा ठिठक गया। बाबू के कमरे में माँ का स्वर सुनकर वह चौक गया था। वह बाबू के कमरे में बहुत कम आती थी।

"पता नहीं, दिन-भर वह कहाँ रहता है! तुमसे कभी कुछ कहा है?" बाबू का स्वर था।

"तुम्हें हमेशा फिजूल की चिन्ता लगी रहती है." माँ ने कहा। "वह तीन साल बाद लौटा

है। तुम समझते हो, वह पहले जैसा ही रहेगा ?"

"नहीं... नहीं, मैंने यह थोड़े ही कहा।" बाबू का स्वर अजीब खिसियाना-सा हो गया था।

उसने आगे नहीं सुना और चुपचाप सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

छत पर आकर उसे अजीब-सी शान्ति मिलती थी। उसने वहाँ बहुत-से पेण्ट और सफ़ेदी के पीपे और ब्रुश जमा कर रखे थे। वह लकड़ी की सीढ़ी को दीवार के सहारे खड़ा कर देता और एक रस्सी से रंग के पीपे सीढ़ी पर बाँध देता। जब चाँदनी बढ़ने लगती तो सब चीज़ें रात को भी दिखायी देती थीं। वह देर तक दीवार के पलस्तर-भरे कोनों पर ब्रुश फेरता रहता। वह भूल जाता कि नीचे माँ खाना लेकर बैठी है। वह चमगादड़ की तरह दीवार से चिपका खड़ा रहता। चाँदनी रात में उसकी धुँधली छाया दीवार पर एक बेडौल पशु-सी पड़ती रहती।

अगस्त की इन गरम रातों में उसने छत और दीवारों को करीने और साफ-सफाई से लीप-पोत डाला था। उसे कभी-कभी अजीब-सा लगता, जब वह ऊपर सीढ़ी पर खड़ा होता। चारों ओर हवा होती और अन्तहीन खुलापन। तब उसे लगता कि किसी चीज़ से अपने को ढक पाना, अपने को घेर पाना कितनी तसल्ली देता है। यह वही जान सकता है जो कभी खुली छत पर एक नंगी दीवार पर चढ़ा हो। उसे तब कुछ-कुछ वैसा ही मालूम होता, जैसा दिन के समय स्विमिंग पूल के नीले अँधेरे में—बहुत शान्त, बहुत खाली।

जब कुछ देर बाद वह नीचे उतरा, उसने देखा, अँधेरे में माँ खड़ी है। उसे देखकर वह तनिक लज्जित-सी हो आयी।

"तुम यहाँ कब से खड़ी हो ?" उसने पूछा।

"कुछ नहीं। तुझे देख रही थी। तू कमरे में नहीं था, इसलिए यहाँ चली आयी।"

माँ एक बहुत छोटी स्त्री है। उम्र के साथ वह सिकुड़ती गयी है।

"खाना नहीं खायेगा ? कब से पड़ा है !" उसने कहा।

वह व्यस्त-सा हो उठा। चूने में भीगा हुआ ब्रुश और पीपा उसने कोने में रख दिया। सीढ़ी को लिटा दिया। "तुम चलो, मैं आता हूँ," उसने कहा।

जब से वह आया है, उसे माँ का व्यवहार विचित्र-सा लगता है। पहले वह इससे बातचीत करती थी—शुरू में। किन्तु जब से उसके जाने के दिन पास आ गये हैं, वह चुप रहने लगी है। बोलती अब भी है, लेकिन कुछ आतंकित भाव से और उन्हीं बातों को दुहराती है जिन्हें वह पहले कह चुकी है। तीन साल पहले जब वह गया था, उसने कुछ नहीं कहा था। अब वह दोबारा जा रहा है, तो भी उसके बारे में उसने कभी कोई चर्चा नहीं की।

वह उसके कमरे में आती है तो भी दबे पाँवों से। एक बार आधी रात में उसकी आँख खुल गयी थी। उसे हल्का-सा आभास हुआ कि कोई अँधेरे में खड़ा है—उसके सिरहाने के पास। उसे इतना साहस भी नहीं हो पाया कि वह करवट ले सके। बाद में माँ को पहचानकर

उसे काफी क्रोध भी आया, लेकिन दूसरे दिन वह उससे कुछ भी कह नहीं सका।

रात का खाना वे एक साथ खाते थे। माँ चटाई पर बैठी रहती। बाबू रेडियो के पास दीवान पर। मेज़ के इर्द-गिर्द दो कुरसियाँ खाली पड़ी रहतीं—एक नीता की, दूसरी केशी की। नीता अपनी ससुराल में रहती, केशी आर्मी में। जब कभी वह इन कुरसियों को देखता, उसे सारा घर सूना-सा लगता।

बाबू रेडियो सुनने के बहाने काफी देर तक कमरे में बैठे रहते। माँ को यह अखरता था। उसे बाबू के प्रश्न भी ज्यादा समझ में नहीं आते थे। वह विस्मय से कभी उसकी ओर देखती थी, कभी बाबू की ओर।

वे कभी न समझ पाते थे, इन तीन वर्षों के अन्तराल के बाद कैसे बात की जाये।

"यह सब तो तुम्हें वहाँ क्या खाने को मिलता होगा?" बाबू माँ की ओर देखते और मुसकराने लगते।

वह चाहता, जल्दी से खाना खत्म करके ऊपर चला जाये, लेकिन वह बैठा रहता।

खाने की बात सुनकर माँ कहती, "अच्छा, नीता कहती थी, वहाँ मांस-मच्छी के सिवा कुछ मिलता नहीं... क्यों?"

अभी वह जवाब नहीं दे पाया होता था कि बाबू पूछते, "अच्छा, सरदी तो वहाँ काफी पड़ती होगी?"

"हाँ, लेकिन कमरों में सेण्ट्रल हीटिंग रहती है। भीतर पता नहीं चलता।" वह धीरे-धीरे कहता।

"मैंने तुम्हें ओवरकोट खरीदने के लिए लिखा था।"

माँ उठकर अपने कमरे में चली जाती। घर में एक बोझिल-सा सन्नाटा घिर आता। वह प्रतीक्षा करता। उसे लगता, बाबू उससे कुछ कहेंगे। बाहर अगस्त की गरमी और उजली रात सिमट आती। बाबू कुछ न कहते और अपलक उसकी ओर देखते रहते। बगलों के पास उसकी कमीज़ पसीने से तर हो जाती। वह भीतर-ही-भीतर प्रार्थना करता रहता कि वह कुछ कह दें जिससे बरसों से खिंचा यह अजीब-सा तनाव टूट सके। किन्तु आखिरी छोर पर आकर सहसा बाबू इरादा बदल देते हैं।

दरवाजे के पास जाकर वह रुक जाते, कहते, "क्या छुट्टी बढ़ा नहीं सकते?"

वह प्रश्न-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगता। बाबू समझ न पाते तो पूछता, "क्या कुछ काम है?"

"नहीं, काम क्या होगा!" बाबू के चेहरे पर वही एक खिसियानी-सी मुसकराहट चली आती, "मैं सोचता हूँ, दीवाली इस बार यहाँ की कर लेते। उन दिनों केशी भी आ जायेगा।"

वह चुप रहता। उसे मालूम है, यह असम्भव है। लेकिन वह कहता कुछ नहीं।

वह ऊपर छत की बरसाती में चला गया। इस घड़ी सारा घर खामोश हो जाता। बरामदे

की बत्ती बुझ जाती। केवल देर तक माँ के कमरे की बत्ती जली रहती। उसे बहुत कम नींद आती थी। खाने के बाद वह अपने कमरे में चली जाती और वहीं अकेली बैठी रहती।

उसे हल्की-सी खुशी होती। अब कोई नहीं आयेगा। वह अपने पलँग पर बैठ गया। कोने में एक पोटली रखी थी, जिस पर पिछले वर्षों में धीरे-धीरे धूल और गर्द इकट्ठी होती गयी थी। वियना जाने से पहले उसने अपने स्कूल और कॉलेज की किताबें इसी पोटली में बाँधकर रख दी थीं। दीवार पर जुआँ-ग्रीका एक प्रिण्ट लगा था जो उसने लाइपार्ज़म से केशी को भेजा था। केशी को हमेशा बहुत-सी चीज़ों में दिलचस्पी रही थी—पुराने चित्र, रिकार्ड, किताबों के पहले एडिशन। वियना में उसकी चीज़ों को खरीदते हुए उसे हमेशा परेशानी उठानी पड़ती थी। उसे स्वयं कभी इन चीज़ों से लगाव नहीं रहा। इन छुट्टियों में भी, जब उसके पास कुछ भी करने को नहीं है, वह उन किताबों में से एक को भी नहीं पढ़ पाता।

उस रात जब माँ दूध का गिलास देने आयी तो कुछ देर तक उसके कमरे में खड़ी रही।

वह पलँग पर बैठ गया। उसे लगा, माँ कुछ कहना चाह रही है और संकोच में नहीं कह पाती।

" यहाँ बैठ जाओ, माँ !" उसने कहा।

"नहीं, मुझे काम है।" माँ ने कहा, "तुम अरुणा से मिले थे ?"

"नहीं, अभी नहीं।" उसने कहा। फिर उसे अपने झूठ पर हल्का-सा खेद हुआ।

"किसी दिन हो आओ। जब तुम यहाँ नहीं थे, वह अकसर तुम्हारे बारे में पूछती थी।"

"मैं किसी दिन वहाँ जाऊँगा," उसने कहा। "माँ, तुम कब तक खड़ी रहोगी ?"

"मैं ठीक हूँ। मैं अब जा रही हूँ," माँ ने कहा। लेकिन फिर भी वह खड़ी रही। वह शायद समझ गयी थी कि वह झूठ बोल रहा है। वह हमेशा समझ जाती है।

"मैं सोचती हूँ, कुछ दिनों के लिए केशी के पास हो आओ, वहाँ तुम्हारा मन लग जायेगा।"

"मेरा मन यहाँ भी लग गया है... फिर अब तो ज़्यादा दिन भी नहीं रहे !" उसने कहा।

"हाँ, अब ज़्यादा दिन नहीं रहे।" माँ ने कहा। उसका स्वर सुनकर वह चौंक-सा गया। उसकी ओर देखा, लेकिन उसके चेहरे पर कुछ भी ऐसा न था जो वह पकड़ सकता।

माँ दरवाजे के पास चली गयी और फिर देहरी पर रुक गयी।

"अगले इतवार को नीता आयेगी, तुम घर में ही रहोगे ?"

"अगर नीता आयेगी तो मैं घर में ही रहूँगा।" उसने कहा।

माँ चली गयी और वह खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। मकान के परे सूने अहाते में आँखें कुछ खोजने लगीं—झाड़ियों के परे, लेन की छाया के ऊपर, जहाँ अगस्त की गरम रात फैली थी। तुम अब भी डरते हो लेकिन किसके लिए ? तुम कुछ दिनों बाद चले जाओगे और किसी को कुछ भी मालूम नहीं होगा।

किसी को मालूम नहीं होगा कि वियना में कोई लड़की तुम्हारे साथ रह रही है जिसके बारे में माँ या अरुणा नहीं जानतीं। तुम्हें शुरू में कह देना चाहिए था। अगर तुम शुरू में कह देते तो शायद कुछ भी न होता।

लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा``` वह कुछ दिनों बाद चला जायेगा और किसी को कुछ भी मालूम नहीं होगा। और जब उन्हें मालूम पड़ेगा, तब भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

आखिर में``` बिल्कुल आखिर में कभी कोई फर्क नहीं पड़ता—अगर तुम्हारे माँ-बाप बहुत बूढ़े हों—उसने सोचा।

उसे हल्की-सी खुशी हुई कि केशी घर में नहीं है। तीन साल बाद उसे देखकर वह ज़रूर कुछ सन्देह करने लगता। वह शायद पूछता कुछ भी नहीं, लेकिन एक दीवार-सी खड़ी हो जाती।

खिड़की के बाहर हवा चली थी। वह वापस मुड़कर पलँग पर लेट गया। बत्ती बुझा दी। उस रात वह देर तक अपने बचपन के बारे में सोचता रहा। उन दिनों लोग मज़ाक में केशी को चीनी मेण्डारिन कहा करते थे। वह हमेशा बहुत चुप रहता था। वह और नीता उसके पीछे हमेशा उसका मज़ाक उड़ाते थे। लेकिन उसके सामने हमेशा कुछ आतंकित-सा हो जाते थे। उसे एक बहुत पुरानी घटना याद हो आयी और वह अँधेरे में ही हँसने लगा।

तब वे बहुत छोटे थे। उन दिनों वे एक पहाड़ी स्टेशन पर रहते थे। गरमी की छुट्टियाँ थीं। एक दिन वह, केशी और नीता कॉटेज़ के पीछे एक बाग में चले गये। वह उजड़ा बाग था और वहाँ कोई नहीं आता था। उन्हें यह भ्रम था कि ऐसे निर्जन स्थानों में अकसर बहुत-सी बहुमूल्य चीज़ें छिपी रहती हैं। उन्होंने खोदना शुरू किया। वे देर तक खोदते रहे। नीता ऊब चली थी। आखिर कुदाली किसी सख्त चीज़ से टकरायी। एक बड़ा पत्थर था। तीनों ने मिलकर उसे उठाया। धड़कते हुए दिल से नीचे गढ़े में देखा और वे स्तब्ध-से होकर देखते रहे।

गढ़े में पड़ी थी एक पेड़ की डाल, एक लम्बी हड्डी और एक टूटे काँच का टुकड़ा।

उन्होंने बारी-बारी से हर चीज़ को छुआ—डाल को, हड्डी को, काँच के टुकड़े को। फिर अचानक नीता रोती हुई घर की तरफ भाग गयी। उन चीज़ों को वहीं छोड़कर वे चुपचाप लौट आये।

उस रात सोने से पहले केशी ने बिना उसकी ओर मुँह मोड़े, छत की ओर देखते हुए पूछा, "जानते हो, नीता क्यों रोने लगी थी ?"

"शायद वह डर गयी थी।"

"नहीं, डर तो हम गये थे। वह बहुत सेन्सिटिव है।"

"फिर ?" उसने केशी की ओर देखा। वह अब भी छत की ओर देख रहा था।

"जब तुम उन्हें छू रहे थे तो तुम्हें ऐसा नहीं लगा कि वे रेज़िस्ट कर रही हैं ?" वह कुछ देर तक चुप रहा, फिर धीमे स्वर में बोला, "रेजिस्ट कर सकना यह एक बड़ी चीज है।" केशी ने

एक लम्बी साँस ली और करवट बदलकर सो गया।

केशी ऐसा ही था – बचपन से। उस रात उसे देर तक नींद नहीं आ सकी। वह अपने वियना के एपार्टमेण्ट के बारे में सोचने लगा जहाँ उसने पिछले तीन साल गुज़ारे थे। वहाँ से डैन्यूब की कैनाल दिखायी देती थी। इन दिनों वहाँ पत्ते झरना शुरू हो चुके होंगे – उसने सोचा। फिर उसे बाबू की खाँसने की आवाज़ सुनायी दी। जब वह सुराही से पानी भरते थो तो ऊपर तक आवाज़ जाती थी। माँ ने ज़ीने के दरावाज़े की साँकल लगायी होगी – सीढ़ियों पर हल्की पदचाप सुनकर उसने सोचा। फिर सारा घर शान्त हो गया।

सिर्फ हवा चलने से जुआँ-ग्रीकी स्टिल लाइफ पर परदे की छाया डोल जाती थी।

उस शाम जब स्विमिंग पूल से लौटा, नीता उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने बूलू को चूमा। उसकी पलकें बहुत लम्बी थीं और जब वह उसे चूमता था तो उसके गालों पर गुदगुदी-सी होने लगती थी।

"मैंने तुम्हारे लिए बहुत-सी चीज़ें जमा की हैं।" उसने उसके बालों को सूँघा। उसे बहुत पहले की वह अजीब-सी गन्ध याद हो आयी जो नीता के बालों से आती थी।

"कौन-सी चीज़ें?" बूलू ने उसकी ओर देखा।

"अलमारी में रखी हैं।"

"मामा, तुमने कहा था, मुझे चार्ल्स स्टोन सिखाओगे।"

बूलू ने जिज्ञासा से उसकी ओर देखा।

"जब तुम सीख जाओगी तो सिर्फ मेरे साथ नाचोगी ; अपने किसी और दोस्त के साथ नहीं।" उसने कहा।

"बड़े होने पर भी?" बूलू के स्वर में हल्की-सी निराशा थी।

"बड़े होन पर ही ! अभी तो तुम कुछ नहीं हो।" बड़े होने पर बूलू उन्नीसवीं शताब्दी की कोई रूसी प्रिन्सेस दिखायी देगी – उसने सोचा। उतनी ही खूबसूरत, उतनी ही डिकेडेण्ट।

वे ऊपर आ गये। जब नीता आती थी तो वे सब केशी वाले ही कमरे में बैठते थे। चाय सब एक साथ पीते। बूलू के लिए खास चाकलेट कप तैयार किया जाता। नीता बाबू के कमरे से उनकी आरामकुरसी खींच लाती थी। वे उसी पर आँखें मूँदकर अधलेटे-से पड़े रहते। बाबू के सामने आज भी वह और नीता एक अजीब-सी हिचक महसूस करते रहे हैं। जब केशी होता था तो यह हिचक नहीं रहती थी। लेकिन उसके न रहने से एक चुप्पी-सी छायी रहती। वह स्वयं कभी भी ठीक से बात शुरू नहीं कर पाता था।

"तुम आये नहीं। तुम्हारे जीजाजी तुमसे बहुत मिलना चाहते थे।" नीता ने उसकी ओर देखा। "क्या करते हो दिन-भर?"

वह हँस दिया।

"मैं कभी-कभी तैरने चला जाता हूँ . महीप के क्लब में।" उसने कहा।

नीता ने तनिक कुतूहल से उसकी ओर देखा।

"मैंने वहाँ सीख लिया था," उसने जल्दी से कहा।

"नीता, तुम्हें भी सीखना चाहिए। वहाँ बहुत-सी लड़कियाँ तैरने जाती हैं।"

"इस उम्र में ? तुम पागल हो !" उसने हँसते हुए बाबू को देखा। वह अब भी आँखें मूँदे लेटे थे।

"तुम्हारी उम्र कुछ भी नहीं है," उसने कहा। जब नीता इस तरह हँसती है तो सचमुच विश्वास नहीं हो पाता कि वह बूलू की माँ है। दोनों छोटी-बड़ी बहनें लगती हैं।

उस घर में सिर्फ नीता ही ऐसी थी जिसे बीच के बरस अछूता छोड़ गये थे। या शायद अछूता शब्द ठीक नहीं, उन्होंने उसे छुआ है, जैसे हम किताब को छूते हैं। ऊपर का कवर पुराना हो जाता है, किन्तु भीतर सबकुछ वैसा ही है जैसा पहले था।

धीरे-धीरे शाम का आलोक फीका पड़ने लगा। वे तीनों चुपचाप चाय की मेज़ के इर्द-गिर्द बैठे रहे। बूलू छत पर चली गयी।

"आपको गरमियों में कहीं चले जाना चाहिए था," नीता ने बाबू को देखकर कहा। "यहाँ अकेले बैठे-बैठे तो वैसे भी जी उचाट हो जाता होगा ?"

"हाँ, केशी ने लिखा तो था," बाबू ने कुछ आगे झुककर कहा। "लेकिन हमारी अब कहीं आने-जाने की हिम्मत नहीं होती।" वह कुछ झेंपते हुए हँस दिये।

"आप कहें तो मैं केशी को चिट्ठी डाल दूँ। वह आपको ले जायेगा," नीता ने कहा।

बाबू कुछ देर तक सूनी आँखों से हवा में देखते रहे, फिर धीरे-से बोले, "मैं चला तो जाता लेकिन फिर तुम्हारी माँ पीछे अकेली रह जायेगी। इसके जाने के बाद तो घर खाली हो ही जायेगा। बाद में कहीं चले जायेंगे।"

नीता की आँखें उस पर उठी थीं। वह खिड़की से बाहर देखने लगा। उसकी इच्छा हुई, वह जेब से सिगरेट निकाल ले, लेकिन फिर उसके हाथ ठिठककर जेब में ही रह गये। बाबू के सामने सिगरेट पीने में उसे आज भी अजीब-सी झिझक होती है। वह कुछ कहते नहीं, फिर भी खुद ही इच्छा मर जाती है।

शाम का पीलापन कमरे में फैल गया। आखिरी धूप का उजलापन चाय की प्यालियों पर सिमट आया था। कभी-कभी कोई चिड़िया रोशनदान से उड़कर कमरे का चक्कर लगाने लगती और उसकी छाया उन तीनों के सिरों पर मँडराकर हवा में घुल जाती।

उन गरमियों में उसे पहली बार बाबू इतने अकेले जान पड़े थे।

छत से उतरकर बूलू कमरे में चली आयी। कमरे का वातावरण अचानक ढीला-सा पड़ गया।

"मामा, कहाँ है हमारी चीज़ें ?"

वह उसके सामने आकर खडी हो गयी।

"कैसी चीज़ें ?" नीता ने पूछा।

वह उठा और अलमारी के पास चला गया। निचली दराज से उसने चमड़े का एक लम्बा बैग निकाल लिया जो उसने आने के पहले वियना में खरीदा था।

लेकिन बूलू में इतना धैर्य कहा था कि प्रतीक्षा कर सकें ! उसने हाथ के झटके से बैग छीन लिया और मेज़ पर रखकर उसे खोलने लगी। दूसरे ही क्षण बहुत-से छोटे-बड़े सिक्के चमचमाते हुए मेज़ पर बिखर पड़े।

एक क्षण के लिए बूलू विश्वास नहीं कर सकी।

"ये सब मेरे हैं ?" उसके स्वर में प्रश्न इतना नहीं था जितना यह विस्मयकारी विश्वास कि ये सब उसके हो सकते हैं।

उसने अपनी कुरसी मेज़के पास खींच ली। वह धीरे-धीरे उसे समझाने लगा—आस्ट्रियन शिलिंग, फेरो आइलैण्ड्स का क्राउन, इटैलियन लीरा—वह जिन-जिन देशों में गया था, उन सबके सिक्के उसके पास होते गये थे। जर्मनी का मार्क़ दिखाते हुए सहसा उसके हाथ ठिठक गये—उसे अचानक वह रात याद हो आयी जो उसने बर्लिन की सड़कों पर बितायी थी। लेकिन बाकी सिक्कों को छूते हुए उसे विशेष कुछ भी याद नहीं आया। लगा, जैसे बूलू के साथ वह भी उन्हें पहली बार देख रहा हो।

"तुम फ़ेरो आइलैण्ड भी गये थे ?" नीता ने तनिक आश्चर्य से पूछा। "तुमने कभी खत में नहीं लिखा।"

"हम वहाँ सिर्फ एक रात ठहरे थे," उसने कहा।

"क्या वे उतने ही छोटे हैं जितने नक्शे पर दीखते हैं ?" बूलू ने कुतूहल से पूछा।

उसने बूलू की हथेली को अपने गाल से दबा लिया। "वे तुम्हारी हथेलियों से छोटे हैं," उसने कहा।

"मामा, शुरू करें ?" बूलू उससे सट गयी।

उसने नीता की ओर देखा। वह दीवार के एक कोने में बैठी थी। बाबू बहुत पहले अपने कमरे में जा चुके थे। अगस्त का धुँधलापन हर चीज़ पर मटियाली रेत-सा बिछ गया था—गरम और किरकिरा-सा।

उसने मेज़ बीच से हटा दी। बूलू जल्दी-जल्दी सिक्कों को समेटने लगी। उसके भूरे बाल ढीले होकर कन्धे पर झुक आये थे।

उसे आज भी अगस्त की वह शाम याद है। वह कुछ क्षणों के लिए भूल गया था कि वह दिल्ली में अपने घर में है। बूलू को चार्ल्सस्टोन सिखाने में ज़्यादा देर नहीं लगी। उन्होंने रेडियो में बहुत खींचतान के बाद एक ऐसा स्टेशन खोज निकाला था जहाँ से थोड़ा-बहुत म्यूज़िक रुक-रुककर बाहर आता था। चार्ल्सस्टोन से उसका दूर का सम्बन्ध भी नहीं था, शायद वह

ट्यून किसी ने पहली लड़ाई के ज़माने में बनायी थी। लेकिन उनके लिए इतना ही काफी था।

इतना ही काफी था, क्योंकि कुछ देर बाद वे रेडियो को भूल गये। बूलू जब घूमकर उसकी ओर देखती तो वह अकेला-सा हो जाता। फिर वे पास आते। बूलू उसकी बाँहों में सिमट जाती। एक छोटी, उड़ती हुई मुसकराहट उसके होंठों को छू जाती और वे अलग हो जाते। यह मुसकराहट उसके लिए नहीं थी। इस उम्र में पहली बार चार्ल्सस्टोन नाचते हुए लड़कियों की यह मुसकराहट किसी के लिए नहीं होती, यह वह वियना में बहुत पहले जान पाया था।

"मामा, तेज़ी से !" बूलू धीरे से उसके कानों में फुसफुसायी। उसका चेहरा पीला-सा पड़ गया था और वह बहुत उत्तेजित-सी हो आयी थी। नाचते हुए उसकी आँखें बहुत उज्ज्वल-सी हो जाती थीं, उसने यह पहले भी देखा था। हर बार वह कुछ घबरा-सा जाता था। किसी लड़की की आँखों को सह पाना, जब वे बिल्कुल चेहरे के सामने हों और इतनी ही उज्ज्वल हों जैसी बूलू की अकसर हो जाती थीं, उसके लिए हमेशा यातनामय रहा है।

"अच्छा, अब बन्द करो... बहुत हो गया।" कमरे के अँधेरे कोने से नीता का स्वर सुनायी दिया। वे उसे बिल्कुल भूल गये थे।

"मामा... अभी नहीं," बूलू ने कहा।

उसने माथे से पसीना पोंछा। उसे लगा जैसे पिछले महीनों में उसकी आदत बिल्कुल छूट गयी है।

"अब नहीं, बूलू, फिर किसी दिन।" उसने कहा।

"फिर कब ?" बूलू की आँखें अचानक डबडबा आयीं।

"तुम चले जाओगे और मैं सब भूल जाऊँगी।" फिर उसे अपने ही आँसुओं पर शर्म-सी हो आयी। उसने हँसते हुए कहा, "तुमने मुझे सबसे पहले वाल्ट्स सिखाया था, याद है ?" उसने उसकी आँखों में देखा और उसे अपना स्वर ही अजीब-सा लगा, "बूलू, लेट अस हैव ए वाल्ट्स !"

बूलू ने नीता की ओर देखा और मुसकुराने लगी। वाल्ट्स के लिए बूलू में कुछ ऐसी चीज़ थी जो वह कभी नहीं समझ पाया—क्रेशी की डीप फीलिंग नहीं बल्कि एक खास तरह का मोह जिसे देखकर वह हमेशा आतंकित-सा हो जाता। लेकिन उस शाम वे बहुत सुखी थे। नीता भी दीवान के आगे खिसक आयी थी और मुसकुराते हुए उन्हें देख रही थी। एक बार उन्होंने उसे भी अपने साथ खींचने की कोशिश की थी, लेकिन उसने हँसते हुए अपने को छुड़ा लिया था। कमरे में पीला-सा अँधेरा घिर आया था। उनके स्टेप्स की गति इतनी धीमी थी कि कभी-कभी उसे भ्रम होता था कि वे एक ही जगह पर खड़े हों, हालाँकि रेडियो की गड़गड़ाहट के बीच वह ट्यून अब भी सुनायी पड़ जाती थी—वही ट्यून जो किसी ने पहले युद्ध के ज़माने में बनायी थी। उसके नोट्स माचिस की जलती तीली की तरह हवा के छोटे-से घेरे में ही सिमट गये थे, जब

ज़रा ऊपर भी उठते थे तो लगता था जैसे तीली से हाथों का घेरा हट गया हो और वह नंगी होकर अँधेरे कमरे में फड़फड़ा रही हो। उस धुँधलके में उसे बूलू बहुत बड़ी-सी लग रही थी। उसने अपना सिर उसके कन्धों पर टिका दिया था। लेकिन उसकी साँसों से लगता था जैसे वह अभी बहुत छोटी है। उसके बालों से वही पहचानी-सी गन्ध आ रही थी—बहुत अरसा पहले गरमी की छुट्टियों और पहाड़ी स्टेशन की गन्ध जो बचपन में उसकी माँ या नीता के बालों से आती थी।

वे ठहर गये। रेडियो की ट्यून अचानक बुझ गयी थी। नीता ने उठकर कमरे कीबत्ती जला दी।

"तुम तो पूरे एक्सपर्ट जान पड़ते हो।" नीता ने हँसते हुए कहा। उसकी साँस उखड़ने लगी थी। सिगरेट लगाकर वह उस आरामकुरसी पर बैठ गया जिस पर अभी कुछ देर बाबू बैठे थे।

"मामा, तुम तो वहाँ हर शाम को नाचने जाते होगे?" बूलू ने ईर्ष्या से उसकी ओर देखा। उसने अपने बाल पीछे समेट लिये थे।

उसकी बड़ी आँखों में एक ज्वरग्रस्त आलोक सिमट आया था।

खिड़की के बाहर लैम्प-पोस्ट जलने लगा था। उसके परे दिल्ली का आकाश था—अगस्त के बुझते आलोक में अवसन्न और सूना-सा।

बूलू थककर दीवान पर लेट गयी थी। माँ ने नीता को किसी काम से रसोई में बुला लिया। वह कुछ देर तक कमरे में अकेला बैठा रहा—नीता की प्रतीक्षा में। नींद के बोझ से बूलू की आँखें मुँदने लगी थीं, लेकिन अब भी उसके गाल जल रहे थे। उसने धीरे-से बूलू के जूते उतारकर कोने में रख दिये।

"मामा !" बूलू ने अपनी आँखें खोल दीं।

"क्या बात है, बूलू?"

"तुम जा रहे हो?"

"मैं कहीं भी नहीं जा रहा।"

बूलू ने आँखें फिर मूँद लीं और दीवार की ओर करवट बदल ली। उसने कमरे की बड़ी बत्ती बुझा दी, सिर्फ़ टेबल-लैम्प जलते रहने दिया। वह कुछ देर तक बूलू को देखता रहा। उसे लगा जैसे वह तुर्गनेव की कोई हीरोइन हो। फिर धीमे-दबे कदमों से वह बाहर चला गया।

ऊपर कोई नहीं था, सिर्फ़ हल्की-सी चाँदनी थी जो अगस्त की उन उमस-भरी रातों में फटे-मैले चीथड़े-सी हर मकान की छत पर पड़ी रहती थी।

सामने बहुत-से मकान थे—एक-दूसरे से सटे हुए। पानी के पाइपों के बीच चौकोर दीवारें किसी घिसे-पिटे सिनेमा-स्क्रीन-सी दिखायी देती थीं, जिनके आर-पार कभी-कभी कोई बेडौल-सी छाया रेंग जाती थी।

अब शायद कोई नहीं आयेगा – उसने सोचा। वह बरसाती में चला आया। बत्ती जलायी, फिर अपना सूटकेस खोला। आर्कियोलॉजी की कुछ पुस्तकें ऊपर रखी थीं जिन्हें वह अपने साथ वियना से ले आया था। नीचे कपड़े थे। उन्हें हटाकर उसने तौलिये से लिपटी कोन्याक की बोतल निकाल ली जो वह आते समय अपने साथ ले आया था।

शुरू-शुरू में यहाँ अकेले बैठकर पीना उसे काफी मनहूस-सा जान पड़ता था। इच्छा होती भी थी तो उसे टाल जाता था। लेकिन जब किसी रात देर तक नींद नहीं आती थी तो वह थोड़ी-सी पी लेता था। वैसे भी कोन्याक वह एक साथ ज्यादा नहीं पी सकता था।

यों घर में पीते हुए उसे आज भी थोड़ी-सी झिझक होती थी। तसल्ली भी होती थी लेकिन बाद में। कुछ पी लेने के बाद वह हमेशा वियना के बारे में सोचने लगता था। लेकिन यह वह बाद में सोचता था – शुरू में एक अजीब-सा डर लगता था। लेकिन जब पी लेने के बाद वह बिस्तर पर लेटता था, तो न डर लगता था और न वियना के बारे में सोचता था। तब सिर्फ सो जाने को मन करता था।

लेकिन उस रात वह जानता था, नींद आयेगी। वह बहुत थक गया था। लेकिन जब वह नींद के बारे में निश्चिन्त हो जाता तो वह उसे कुछ और देर के लिए ठेलना चाहता था। वह चाहता था, वह स्वयं अपनी इच्छा से नींद के घेरे में जा सके जैसे वह स्विमिंग पूल के नीचे अँधेरे में धीरे-धीरे खो जाता था।

उसने बोतल से गिनी-नपी कोन्याक की मात्रा गिलास में ढाल दी। तब उस क्षण वह छाया दीवार पर पड़ी थी। उसका हाथ रुक गया। लेकिन उसे जल्दी नहीं थी। पीछे मुड़ने के पहले उसने गिलास से एक लम्बा घूँट ले लिया था। उसे बहुत अच्छा महसूस हुआ। उसे कोन्याक हमेशा अच्छी लगती थी।

उसने पीछे मुड़कर देखा – देहरी पर नीता खड़ी थी।

"मैं समझी थी, तुम सो गये।" वह भीतर आकर पलँग के पैताने पर बैठ गयी। उसने धीरे-से कोन्याक की बोतल पलँग के नीचे खिसका दी। उसने सोचा था, उसे पीता देखकर वह चली जायेगी। वह चली जाती तो उसे विशेष दुख न होता।

"बूलू सो गयी ?" उसने पूछा।

"वह बहुत जल्दी उत्तेजित हो जाती है। तुम्हें इतनी देर तक उसके साथ नहीं नाचना चाहिए था।"

"वह ठीक है। वह ठीक तुम्हारे-जैसी है, जब तुम छोटी थीं।" उसने कहा।

"तुम हमारे घर आये नहीं। तुम्हारे जीजाजी ने कई बार मुझसे पूछा था।"

उसके स्वर में कुछ रहा होगा, उलाहना नहीं, फिर भी कुछ जो उन दोनों के बीच है बरसों से। वह अकसर भूल जाता है कि वह उससे बड़ी है – सिर्फ उम्र में ही नहीं, उसका अपना एक अतीत है जिसे वह कभी छू नहीं पाता।

"नीता, तुम्हें बुरा तो नहीं लगेगा अगर…"

"नहीं… नहीं," उसने कुछ असमंजस में कहा, "लेकिन क्या तुम हर रात को…"

"हर रोज़ कहाँ !" उसने कोन्याक पलँग के नीचे से बाहर निकाल ली। इस बार झूठ बोलते हुए हल्की-सी खुशी हुई। शुरू के क्षणों में कोन्याक आदमी को कितना तटस्थ बना देती है ! हम अपने से ही खेलने लगते हैं।

"निन्दी !" नीता कुछ कहते-कहते रुक गयी। उसने उसकी ओर देखा। उसकी आँखें अचानक उजली-सी हो आयी थीं – बूलू की तरह।

"क्या नीता ?" उसने पूछा।

वह एक लम्बे क्षण तक उसे देखती रही।

"तुम बदल-से गये हो।" उसका स्वर बहुत धीमा और अनिश्चित-सा था।

"तुम्हें सचमुच ऐसा लगता है ?" उसने मज़ाक में पूछा।

"तुम नहीं सोचते ?"

"सोचता हूँ।" उसने कहा। "जब वहाँ था, तो कभी खयाल नहीं आता था।"

कुछ देर तक वे खामोश बैठे रहे।

"तुम अक्सर घर आती हो ?"

नीता ने विस्मय से उसकी ओर देखा।

"अब वैसे नहीं जैसे पहले। जब केशी था तो अक्सर आती थी।"

कुछ देर तक वे केशी के बारे में सोचते रहे जो आर्मी में चला गया था। उसकी किताबें, उसकी फोटो, उसके एलबम, उसके प्रिन्ट्स अब भी ऊपर के दराज़ में रखे थे।

उसने थोड़ी-सी कोन्याक और गिलास में डाल ली। एक हल्की-सी गरमायी उसे धीरे-धीरे अपने में घेरने लगी थी।

"तुमसे एक बात कहनी थी… मैं आज इसीलिए यहाँ आयी थी।" कमरे के सन्नाटे में उसे नीता का स्वर पराया-सा लगा।

वह गिलास से खेल रहा था। उसके हाथ ठिठक गये। उसे लगा जैसे वह बहुत पहले से इस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था।

"तुम रुक नहीं सकते ?" नीता का स्वर भावहीन-सा हो आया था।

"इससे होगा क्या?"

"माँ और बाबू बहुत अकेले हैं। जब केशी था, तो मुझे फिक्र नहीं रहती थी।"

"इससे कुछ बनेगा नहीं।" उसने कहा, "मैं चाहूँ तो भी घर ऐसा ही रहेगा।"

"तुम चाहते भी नहीं।"

पीने के बाद उसे हर चीज़ हल्की-सी लग रही थी।

"हाँ, शायद मैं चाहता भी नहीं।" उसने कहा।

कुछ देर तक दोनों एक-दूसरे को देखते रहे।

"केशी ने मुझे बताया था, क्या यह सच है?" नीता का स्वर सूखा था।

"क्या सच है?" उसने पूछा।

"तुम वहाँ अकेले नहीं रहते..."

वह उसकी ओर देखता रहा।

"हाँ, हम एक साथ रहते हैं।"

"तुमने उससे विवाह नहीं किया?"

"नहीं, हम सिर्फ़ एक साथ रहते हैं," उसने कहा।

"तुमने अरुणा से इसके बारे में कुछ कहा है?"

"नहीं।" उसने कोन्याक का एक लम्बा घूँट लेकर गिलास नीचे रख दिया। "उससे कोई फ़ायदा नहीं।"

कुछ देर तक दोनों भाई-बहन चुप बैठे रहे। उनके पास एक-दूसरे से कहने के लिए अब कुछ भी नहीं था। एक क्षण के लिए उसके मन में एक अजीब-सी इच्छा हुई थी कि वह नीता से कुछ कहे—वह सबकुछ जो इन वर्षों में घर के बाहर बीता है। लेकिन वह चुप रहा।

उससे कोई भी अन्तर नहीं पड़ेगा – उसने सोचा।

"मुझे अब चलना चाहिए।" नीता पलँग से उठ खड़ी हुई। फिर उसने कमरे में चारों ओर देखा।

"यह रंग तुमने किया है?"

"तुम्हें कैसा लगा?" उसने हँसते हुए पूछा और उसी साँस में कहा, "मैंने बाहर भी किया है।"

"केशी आयेगा तो पहचान नहीं सकेगा।" नीता अब भी विस्मय से दीवारों को देख रही थी। वे धीमे कदमों से चलते हुए किताबों की लम्बी लकड़ी के शेल्फ के पास आकर खड़े हो गये। यह शेल्फ बहुत पहले केशी और नीता ने मिलकर बनायी थी।

"तुम्हारी किताबें भी यहाँ पड़ी हैं।" उसने नीता से कहा। उसे कभी-कभी आश्चर्य होता था कि विवाह के बाद नीता एक भी किताब अपने साथ नहीं ले गयी।

नीता अनमने भाव से किताबों के टाइटल देखती रही, फिर अचानक उसने उसकी ओर देखा। उसे लगा जैसे एक बहुत पुरानी स्मृति उसके भीतर उखड़ आयी है।

"तुमने वियना में ज़्वायग का घर देखा है?" उसने पूछा।

"ज़्वायग? नहीं। इतना वक्त कहाँ था!" उसने कहा। उसे कभी किताबों और लेखकों में दिलचस्पी नहीं रही।

"निन्दी, तुम्हें अजीब-सा नहीं लगता?" वह शेल्फ से मुँह मोड़कर उसकी ओर देखने लगी।

"कैसा अजीब-सा ?"

"इस रात ...इस रात हम सब घर में हैं ...बहुत अरसे बाद ...सिवा केशी के।"

उसका स्वर कुछ इस तरह भर-सा आया था कि वह दूसरी ओर देखने लगा। उसे अचानक लगा, मानो वे दोनों ज़मीन के एक टुकड़े के सामने खड़े हैं जो बिल्कुल अपरिचित और अंजाना-सा है। उनके बीच—उन भाई-बहन के बीच—एक मूक समझौता है कि वे उस पर नहीं चलेंगे। वहाँ उनकी बढ़ती हुई उम्र थी। उसे वैसा ही छोड़ देंगे जैसा वह है।

वहाँ वे अकेले थे।

फिर सितम्बर के दिन आये। आकाश का रंग दिन-भर नीला रहने लगा। सड़कों पर पत्ते झरते रहते। अगस्त के दिनों में वे बहुत चमकीले और उज्ज्वल थे। अब उनका रंग काला पड़ने लगा। हवा में एक खुश्क करारापन आ गया। लेकिन वह अब बहुत सफेद और उजली थी। जो शहर गरमियों में सिकुड़-सा गया था, अब वह खुला-खुला-सा दिखायी देने लगा।

उन दिनों वह अकसर घर में रहता। माँ उसके सामने ज़्यादा नहीं आती थीं। बाबू अधिकतर अपने कमरे में रहते। वह एक बार नीता के घर गया था। बूलू का स्कूल खुल गया था और वह उससे बहुत कम समय के लिए मिल पायी थी। लेकिन जिस दिन वह जायेगा, वह एयरोड्रोम आयेगी—चाहे उसे अकेली ही आना पड़े। लेकिन इन दिनों उसके पास समय बिल्कुल नहीं था।

जब वह घर में रहता, उसे यही डर लगा रहता कि कहीं बाबू यह न समझें कि उसका मन नहीं लग रहा। इसलिए शाम होते ही वह कपड़े बदल लेता, ताकि वह समझ लें कि उसे अपने मित्रों से मिलने जाना है। सिगरेट खरीदकर वह किसी पासवाले रेस्तराँ में जा बैठता और जब उसे यह निश्चय हो जाता कि वह सैर के लिए बाहर चले गये होंगे तो फिर वापस अपने कमरे में लौट आता।

जाने से एक दिन पहले वह स्विमिंग पूल गया था। महीप ने उसे शाम को आने के लिए कहा था, किन्तु वह अपने को रोक नहीं सका और बहुत जल्दीआ गया। वह शुरू सितम्बर का दिन था। मौसम में भीगा हल्कापन था। धूप उन दिनों भी काफ़ी गरम रहती थी, लेकिन उसके तीखे कोने झर गये थे।

वह दिन-भर पूल में तैरता रहा। जब थक जाता था तो हाथ-पाँव छोड़कर धूप में लेटा रहता। अब पानी के नीचे वह स्याह बोझिलपन नहीं था जो उसे जुलाई के दिनों में महसूस होता था। पानी की झीनी छत उसके ऊपर खिसक आती और उसके ऊपर सूरज पिघलती हुई मोमबत्ती-सा काँपता रहता।

एक बार उसने हल्की-सी सरसराहट सुनी थी जो न पानी की आवाज़ थी न हवा की। उसे लगा था जैसे कहीं बहुत नीचे — पानी के अँधेरे में — कोई खट्-खट्-खट् कर रहा हो, जैसे हम

कभी जंगल में पेड़ के कटने की आवाज सुनते हैं। जब वह पूल के ऊपर आया तो कहीं भी कोई आवाज़ नहीं थी। सूरज डूबने लगा था और ठण्ड से उसके दाँत कटकटा रहे थे।

वह कपड़े बदलकर क्लब के टेरेस पर आ गया।

टेरेस की कुरसियाँ खाली पड़ी थीं। सिर्फ़ एक कोने में महीप बैठा था।

"तुम भी अजीब आदमी हो !" महीप ने कहा।

"क्या बुहत देर हो गयी है ?" उसने मेज के पास अपनी कुरसी खिसका ली।

"कुछ पियोगे ?" महीप ने पूछा।

वह आज पीने के बारे में ज्यादा निश्चित नहीं था। घर में पैकिंग के लिए सब चीज़े बिखरी पड़ी थीं।

"कुछ पी लो··· तुम्हारे होंठ नीले पड़ गये हैं। जाने से पहले ठण्ड में मरने से क्या फायदा !" महीप ने कहा।

उसने चाय में रम मिला हुआ 'ग्राक' का एक गिलास मँगवा लिया। महीप अपनी बियर से चिपका रहा। उसे कुछ याद आया और वह हँसने लगा।

"आज मुझे पूल में एक अजीब-सी आवाज़ सुनायी दी।" उसने महीप से कहा।

"कैसी आवाज़ ?" महीप ने पूछा।

"मैं अब उसे याद नहीं कर सकता।" उसने हँसते हुए कहा।

"तुम अब आवाज़ें भी सुनने लगे हो ?"

लेकिन उसने महीप के मज़ाक की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसे अब भी अपनी कनपटियों पर एक धीमी खट्-खट् सुनायी दे रही थी।

"कल का पक्का है ?" महीप ने पूछा।

"हाँ—उसने कहा। "कल सुबह।"

टेरेस पर उनके अलावा कोई नहीं था। नीचे क्लब की 'बार' थी, उससे सटा डान्सिंग फ्लोर था। कभी-कभी कुछ बातों के टुकड़े या हँसी के स्वर उन्हें सुनायी दे जाते थे। एक क्षण के लिए उसे विश्वास नहीं हो सका कि कल इस समय वह यहाँ नहीं होगा।

नीचे डान्सिंग फ्लोर से 'कुआडरिले' की आरम्भिक 'बार' ऊपर उठी थी—इतनी ऊँची और कर्णभेदी कि मेज़ पर रखे उनके गिलास हल्के-से झनझना उठे। इस ज़माने में भी वे यहाँ कुआडरिले नाचते होंगे, उसने कभी नहीं सोचा था।

ग्राक पीने के बाद उसे अपने खून में एक मीठी-सी तरलता महसूस हुई।

"तुम अरुणा से मिले थे ?" महीप ने पूछा।

"नहीं···वहाँ जाना नहीं हो सका।" उसने कहा।

महीप ने बियर के गिलास से उसकी ओर देखा, "पहले तुम अकसर उसके घर जाते थे।"

उसने महीप की ओर देखा और चुप रहा। तीन साल पहले··· उसने याद करने की

कोशिश की। उसे हल्का-सा विस्मय हुआ कि उसे उन दिनों के बारे में पछतावा नहीं है। उसे खुशी हुई कि वह अरुणा से नहीं मिला। तुम उससे नहीं मिल सकते जिससे तुम कभी बहुत प्यार करते थे और अब नहीं करते। पर वह यह बात महीप से नहीं कहना चाहता था। उसे सचमुच दुख होगा।

उसे पहली बार महीप के साथ कुछ अकेलापन-सा लगा। यदि कुछ और मित्र उनके साथ होते तो शायद ठीक रहता। तब अपने को इतना अरक्षित छोड़ देने की सम्भावना न रहती।

"सुना था, पिछले साल तुम हाइकिंग के लिए गये थे?" उसने महीप से पूछा।

"हाँ, पिछली गरमियों में।" महीप ने कुछ उत्साहित होकर कहा। हाइकिंग हमेशा से महीप के लिए एक फ़ैशन रहा है। वह आज तक उसके इस अजीब पागलपन को समझ नहीं सका।

"हम रोहताग पास गये थे।" महीप ने बियर का गिलास सामने से हटा दिया। "केशी साथ था। इस साल अगर तुम रह जाते तो एक साथ प्रोग्राम बना सकते थे।" महीप ने कहा।

कुछ लड़के-लड़कियों के जोड़े टेरेस पर आ गये। वे ऊँचे स्वरों में बातचीत कर रहे थे। वे शायद डान्सिग रूम से आये थे। उनके हाथों में कोकाकोला की बोतलें थीं और वे कुरसियाँ खिसकाकर दूसरे कोने में बैठ गये थे।

नाच खत्म हो गया था। नीचे बार में अब खामोशी थी। दूर अँधेरे लॉन में स्विमिंग पूल की रोशनियाँ झिलमिला रही थीं।

"क्या सोच रहे हो?" महीप ने पूछा।

"कुछ नहीं।" उसने हँसकर कहा।

"सुनो," महीप भी हँसने लगा, "मैं सोचता था, तुम अरुणा से विवाह करोगे। हम सब यही सोचते थे।"

उसने महीप की ओर देखा। उसने शायद बहुत पी ली है, वह शायद शाम से पी रहा है—उसने सोचा।

टेरेस के परे दिल्ली का आकाश था—नीरव और अबाध। कहीं किसी कोने से सर्चलाइट की शहतीर ऊपर उठती थी और सितम्बर के धूमिल अँधेरे को काटती हुई गायब हो जाती थी। बरसों से यह उसका अपना शहर रहा है, एक क्षण के लिए उसे विश्वास नहीं हो सका। आसपास के मकानों से धुआँ उड़कर हवा में ठहर गया था। दूर से देखने पर लगता था जैसे सारा शहर एक हल्का, नीली धुन्ध से घिर गया हो।

और तब उसने सोचा—मैं चाहूँ तो रुक सकता हूँ। कम-से-कम इस उम्र में हर आदमी थोड़ी-बहुत फिक्र करने लगा है। वह यह जान लेता है कि यह उसकी ज़मीन है, वह यहाँ खड़ा है। उसने आज तक कभी इसके बारे में नहीं सोचा। केशी इसे जानता था और वह आर्मी में

चला गया। लेकिन उसके लिए यह कभी सम्भव नहीं रहा।

नीचे बार से ब्लू डैन्यूब की बहुत पुरानी ट्यून टेरेस पर चली आयी। टेरेस पर बैठे लड़के-लड़कियाँ सीढ़ियाँ उतरकर डान्सिंग रूम में चले गये।

"तुमने तो देखा होगा?" महीप ने पूछा।

"क्या?"

"डैन्यूब को। क्या उसका रंग सचमुच नीला है?"

वह हँसने लगा। उसे वियना के वे दिन याद हो आये जिन्हें वह बहुत पहले भूल चुका था।

नीला एक बहुत उदास रंग है – उसने सोचा। ब्लू पीरियड, नीग्रो ब्लूज़ ... वह एक रंग है जो तुम बनाते हो, जो होता कुछ भी नहीं।

"वहाँ खूब मज़ा रहता होगा।" महीप ने बियर पीते हुए कहा।

"हाँ, बहुत ज़्यादा।" उसने कहा, "तुम्हें वहाँ कभी आना चाहिए। मेरे एपार्टमैण्ट में दो सोफा हैं ... मैंने उन्हें तुम्हारे और केशी के लिए रख छोड़ा है।" उसने कहा। ग्राक पीने के बाद उसे गरमी-सी महसूस हो रही थी। उसकी इच्छा हुई कि वह स्विमिंग पूल में फिर चला जाये, लेकिन वह बैठा रहा। उसने महीप को रिंग स्ट्रासे के बारे में बताया, उनकी बियर पब्स के बारे में भी बताया, जो इतनी बड़ी थी कि वहाँ पाँच सौ आदमी एक साथ बैठ सकते हैं। और फिर वहाँ स्टाइट पार्क भी था–सबसे बड़ा पार्क। वह इतवार के दिन वहाँ जाता था। इन दिनों वहाँ दिन-रात पत्ते झरते रहते हैं। शाम के वक्त आरकेस्ट्रा भी बजता है और तुम अपनी फरमाइश भी भेज सकते हो ... तुम जो कुछ सुनना चाहो, फरमाइश भेजकर सुन सकते हो और तुम्हारा 'पीस' बजाने के बाद कण्डक्टर तुम्हारी ओर झुककर सलाम करता है।

वह रुक गया। बियर के गिलास के सामने महीप की आँख मुँदने लगी थी।

"हमें चलना चाहिए," उसने कहा।

नीचे बार बन्द हो चुका था। टेरेस पर वे अकेले रह गये थे।

"तुम चाहो तो कुछ देर के लिए मेरे कमरे में चल सकते हो ... मेरे पास कुछ पोर्ट है।" महीप ने जम्हुआई लेते हुए कहा।

"मैं अब घर चलूँगा ... मैंने अभी कुछ भी पैक नहीं किया।"

वे बाहर आ गये। सितम्बर की रात चारों ओर फैली थी। आकाश में एक भी बादल नहीं था। सिर्फ तारे थे जो पालिश किये पीतल के बटनों-से चमचमा रहे थे।

टैक्सी लेने के पहले वे चुपचाप फुटपाथ पर खड़े रहे।

"सुबह कितने बजे जाओगे?"

"काफी जल्दी ... तुम बिस्तर पर होंगे।" उसने कहा।

"मैं कोशिश करूँगा"–महीप ने टैक्सी में बैठकर कहा और अपना सिर सीट की गद्दी पर टिका दिया। वह सो रहा था।

वह उस रात काफी देर से घर पहुँचा था। माँ दरवाज़े की साँकल खोलने आयी थी। वह रास्ता छोड़कर एक तरफ खड़ी रही। उसे डर था, उसके पाँव सीधे नहीं पड़ रहे थे। वह बहुत लापरवाही से सीटी बजाता हुआ ज़ीना चढ़ने लगा।

वह पहले गुसलखाने में गया। देर तक हाथ-मुँह धोने के बाद भी उसे लगता रहा जैसे ग्राक की गन्ध उससे चिपकी है। माँ जान लेगी। उसे आज नहीं पीना चाहिए था—उसने सोचा। उसे लगा, उसका सिर धीरे-धीरे चकरा रहा है। उसे खुशी हुई कि सोने तक उसका सिर ऐसे ही चकराता रहेगा।

वह अपने कमरे में आया। माँ ने उसकी चीज़ें अलग-अलग कोनों से बटोरकर सूटकेस के पास रख दी थीं। उसके मोज़ों और रूमालों को धोकर अलग रख दिया था। पैकिंग के लिए उसके पास ज़्यादा चीज़ें नहीं थीं। कुछ दिन पहले वह ज़रूरी चीज़ें खरीद लाया था—सरदियों के लिए एक ऊनी मफलर, दस्ताने, जूतों की एक जोड़ी, दो डिटेक्टिव उपन्यास जो वह हमेशा यात्रा में वक्त काटने के लिए खरीद लेता था। उसे नीता और केशी की पुस्तकों में कभी दिलचस्पी नहीं रही। इन छुट्टियों में उसने उन्हें कई बार पढ़ने की कोशिश की थी लेकिन हर बार वह ऊब जाता था।

कुछ देर बाद माँ कमरे में आयी। उसके हाथ में एक छोटा-सा लेबिल था। दातुन को स्याही में भिगोकर उस पर बड़े-बड़े अक्षरों में उसका नाम लिखा था। नाम के नीचे उन दोनों शहरों के नाम लिखे थे जहाँ से वह जा रहा है और जहाँ वह उतरेगा।

"इसे बाबू ने दिया है।" माँ ने कहा। "इसे अपने सूटकेस पर चिपका लेना ̈ ̈खोयेगा नहीं।"

"इसकी ज़रूरत नहीं थी।" उसने कहा।

"टिकट रख लिये ?" माँ ने पूछा।

"हाँ ̈ ̈वे मेरी जेब में हैं।" उसने कहा।

"एक बटुआ खरीद लेता, तुझे हर चीज़ जेब में रखने की आदत है।" माँ ने कहा।

वह सूटकेस में अपनी चीज़ें रखने लगा। कोन्याक की बोतल वह बाहर फेंक देना चाहता था, किन्तु माँ के सामने वह उसे बाहर नहीं निकाल सका। उसने उसे सूटकेस में ही रहने दिया।

"नीता और बूलू को कह दिया था ?" माँ ने पूछा।

"उन्हें मालूम है।" उसने कहा।

खाना खाते समय भी माँ सामने बैठी रही। उसे भूख नहीं थी किन्तु उस रात वह जल्दी नहीं उठ सका।

"क्या एक दिन के लिए केशी के पास नहीं रुक सकोगे ?" माँ ने पूछा।

"देखो ̈ ̈कोशिश करूँगा।" उसने कहा। उसे मालूम है, यह असम्भव है। लेकिन उसे यह बात माँ से कहना निरर्थक जान पड़ा।

कुछ देर तक कमरे में सन्नाटा रहा। उसे माँ की चुप्पी कुछ अजीब-सी जान पड़ी। सिर उठाकर देखा, वह दीवार की ओर मुँह मोड़कर बैठी थी–निश्चल और मौन।

पहली बार उसने माँ को ज़रा ध्यान से देखा। देखता वह शुरू से आया है, लेकिन पहली बार उसे लगा जैसे वह पहले से अधिक दुबली, क्षीण और मुरझायी हुई दीख रही है। वह सिकुड़कर बैठी थी, मानो उसे स्वयं अपनी नगण्यता पर संकोच हो⋯। बरसों पहले जो चीज उसमें थी, अब वह इतनी पीछे और दूर सरक गयी थी कि उसे देख पाना भी असम्भव-सा जान पड़ा।

अचानक वह चौंक गया। माँ ने कुछ कहा था और उसका स्वर बहुत धीमा-सा हो आया था।

"एक बात कहनी थी⋯ तुम्हें बुरा तो नहीं लगेगा ?"

उसने माँ की ओर देखा।

"कभी-कभी अरुणा को चिट्ठी लिख दिया करो। वह तुम्हें और केशी को बहुत मानती है।"

उसने कुछ नहीं कहा। अनजाने में एक दबा-दबा-सा गुस्सा उसके भीतर उमड़ आया। देर तक उसे पता नहीं चल सका कि वह गुस्सा किस पर है। किन्तु वह अधिक देर तक नहीं टिक सका। उसे तसल्ली हुई कि माँ अभी तक कुछ भी नहीं जानती।

वह ऊपर आ गया। कल की चाँदनी अब भी छत पर बिखरी थी–फीकी सफेद और बुझी-बुझी-सी। हवा चलने से नीम का पेड़ दीवार के ऊपर डोले जाता था।

केशी के लिए वह जो पुराने प्रिण्ट्स और रिकार्ड्स वियना से लाया था, उन्हें पोटली में बाँधकर उसने कोने में रख दिया। वह शायद क्रिसमस में आयेगा–उसने सोचा।

दीवार पर जुआँ-ग्रीकी स्टिल लाइफ अब भी लटकी थी⋯। पता नहीं, केशी उसे अपने साथ क्यों नहीं ले गया। कमरे में केशी और नीता की चीज़ें कुछ इस तरह रखी थीं मानो वे कुछ देर के लिए बाहर गये हों। वह उन्हें छूते भी डरता था। उसने उन्हें वैसा ही छोड़ दिया था जैसा उसने पहली बार उन्हें देखा था।

उसने बत्ती बुझा दी और पलँग पर लेट गया। वह उन गरमियों के बारे में सोचने लगा जो उसने घर में बितायी थीं। किन्तु वह उनके बारे में कुछ भी याद नहीं कर सका। उसका ध्यान बार-बार छोटी और महत्त्वहीन चीज़ों में भटक जाता था। जब कभी उसे नींद नहीं आती थी तो वह एक-एक करके उन मकानों को याद करने लगता जहाँ वे बहुत पहले रहे थे। जब मकान खत्म हो जाते तो वह यूरोप के उन शहरों को गिनने लगतां जहाँ वह गया था–पिछली गरमियों में और उससे पिछली गरमियों में⋯।

सहसा उसे लगा जैसे उसने कमरे में एक धीमी-सी सरसराहट सुनी है। वह शायद सो रहा होगा–उसने सोचा। किन्तु उसे पूरी तरह निश्चय नहीं हो सका। वह बिस्तर पर बैठ गया। एक

लम्बे क्षण तक वह अँधेरे में अपलक घूरता रहा। उसे लगा जैसे एक सफेद-सी आकृति उसके सामने हिली हो।

"बाबू... क्या तुम हो ?"

"जरा बत्ती तो जला, यहाँ कुछ दिखायी नहीं देता।" अँधेरे में उसे बाबू का स्वर सुनायी दिया।

वह कुछ इस बुरी तरह घबरा गया था कि इतनी ही देर तक उसे स्विच नहीं मिल सका। जब कमरे में प्रकाश हुआ तो भी एक छोटे क्षण तक उसे लगता रहा जैसे यह उसका भ्रम है – वह आँखें खोलेगा और कमरे में कोई भी नहीं होगा।

लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी आँखें बाबू पर टिक गयीं।

"आप...आप यहाँ क्या कर रहे हैं ?" इच्छा न रहते हुए भी उसके स्वर में क्रोध उभर आया था।

"मैं समझा था, तुम अभी जाग रहे हो।" उन्होंने कहा। एक निरीह-सी खिसियाहट उनके चेहरे पर सिमट आयी थी।

किन्तु उसे विश्वास नहीं हुआ। उसे लगा जैसे उसके जागने के पहले वह काफी देर तक अँधेरे में खड़े रहे थे। उसे ध्यान आया, वह अब भी खड़े हैं।

"आप बैठ तो जाइए !" उसने पलँग से उठते हुए कहा। उसके स्वर में अब भी झुँझलाहट भरी थी।

"नहीं... नहीं, तुम बैठे रहो। मैं तुम्हें सिर्फ यह दिखाने आया था। ज़रा देखो... यह कैसा रहेगा ?"

उसकी निगाह अनायास बाबू के पीछे छिपी कुरसी पर चली गयी। कुरसी के हत्थे पर एक पुराना ओवरकोट रखा था। उसकी समझ में नहीं आया, वह इसे यहाँ क्यों लाये हैं।

"ज़रा पहनकर देख लो। अगर ठीक लगे तो अपने साथ ले जाओ...मेरे पास तो ऐसे ही पड़ा है।" उन्होंने कहा।

"मेरे पास एक कोट पहले से है, मैंने आपको कहा भी था।"

"एक है तो दूसरा रखने में बुराई नहीं है। तुम्हें तीन-चार साल अभी वहाँ और रहना है... आजकल ऐसे ओवरकोट नहीं मिलते। इससे बरसाती का काम भी निकल जायेगा।" – उन्होंने कहा।

"सूटकेस में जगह कहाँ निकलेगी ?" उसने कहा, लेकिन उसे स्वयं अपना स्वर अनिश्चित-सा जान पड़ा।

"अपने हाथ में ले जाना।" बाबू ने कहा, "आजकल प्लेन में लोग अपने हाथों में न जाने कितनी चीज़ें ले जाते हैं।"

वह चुप रहा। खीज की जगह अब सिर्फ खालीपन था।

"जरा पहनकर तो देख˙˙˙।"

"नहीं। यों ही ठीक है। मैं ले जाऊँगा।"

बाबू कुछ देर तक सिटपिटाये-से चारों ओर देखते रहे˙˙˙ इस बीच उन्होंने एक बार भी ओवरकोट की तरफ नहीं देखा जैसे कोई आदमी उस जगह को दोबारा देखने से कतराता है जहाँ उसने कोई अपराध किया हो।

वह ज्यादा देर तक उसके कमरे में नहीं रहे। बाद में उसे हल्का-सा खेद हुआ। अगर वह उनके सामने ओवरकोट पहन लेता तो शायद उन्हें काफी खुशी होती। लेकिन उसने उसके बारे में ज्यादा नहीं सोचा और पलँग पर लेट गया।

देर तक वह बत्ती बुझाने का साहस नहीं कर सका। उसका दिल अब भी तेज़ी से धड़क रहा था। उसे ख्याल आया कि अगर वह न जागता तो शायद बाबू कोट कुरसी पर छोड़, चुपचाप बाहर चले जाते। आज भी बाबू को कोई चीज आमने-सामने देने में मुश्किल-सी महसूस होती है। जब वह छोटा था तो वह उसके जेब-खर्च के रुपये मेज पर रख जाते थे—हाथ में कभी नहीं देते थे।

उसने करवट बदली। देर तक वह घर की आवाज़ें सुनता रहा। माँ जीने के दरवाजे की साँकल लगाने नीचे उतरी थी। कहीं एक छत से रेडियो का स्वर हवा में तिरता हुआ दूसरी छत पर आकर ठहर जाता था। कभी-कभी बाबू के कमरे से खाँसने की आवाज सुनायी दे जाती थी।

कुछ देर बाद सब खामोश हो गया। उसने बत्ती बुझा दी। दरवाजा खुला था। बाहर की चाँदनी धीरे-धीरे फैलती हुई देहरी के भीतर सरक आयी थी। वह फिर सोने की कोशिश करने लगा।

बहुत रात बीते उसे लगा था, जैसे वह और केशी स्कीइंग के लिए कुफ़री गये हैं। चारों तरफ बर्फ फैली थी। वह बहुत तेज़ी से नीचे फिसल रहा था। कुछ दूर नीचे जाकर उसे लगा जैसे उसकी 'स्की' की नोक किसी कड़ी चीज़ से जा टकरायी है। उसे हल्का-सा विस्मय हुआ। वह वहीं बर्फ पर बैठ गया और अपनी स्की की मुड़ी हुई नोक से बर्फ खोदने लगा। बहुत-सी बर्फ ऊपर आती थी और वह उसे दूसरी तरफ फेंक देता था। फिर अचानक उसके हाथ ठिठक गये˙˙˙ नीचे। बर्फ के बहुत नीचे एक गड्ढा दिखायी दिया और उसे लगा जैसे उसके भीतर कोई रो रहा है। उसने नीचे झुककर गड्ढे में देखा लेकिन वहाँ कुछ भी नहीं था ; सिर्फ एक हड्डी, पेड़ की एक डाल और एक काँच का टुकड़ा पड़ा था।

उसकी आँख खुल गयी। घर सूना पड़ा था। कहीं भी कोई नहीं था – सिर्फ छत की चाँदनी देहरी लाँघकर उसके बिस्तर पर सरक आयी थी। उसने करवट ली और दोबारा सो गया।

पिक्चर पोस्टकार्ड

जब उसने मुझे देखा, तो अखबार मेज के कोने में सरका दिया।

"क्यों कुछ बना ?"

मैं उसके सामने खाली कुर्सी पर बैठ गया। "कहानी वापिस हो गयी है, बुक-रिव्यू रख लिया है।" मैंने कहा।

चाय पीते हुए मेरी निगाहें अखबार पर ठहर गयीं। सीडी वैकेन्सीज का दूसरा पन्ना देख रहा होगा, क्योंकि सामने वही पन्ना खुला पड़ा था। तीन-चार जगह के हाशियों पर उसकी पेन्सिल के निशान पड़े थे।

"कितना देंगे?... फ्लैट रेट है या लफ्जों के हिसाब से ?" उसने पूछा।

"पता नहीं–" मैंने कहा।

"रिव्यू के नीचे तुम्हारा नाम होगा ?"

"पता नहीं–" मैंने कहा।

"शायद नहीं देंगे, अक्सर अंग्रेजी अखबारों में नाम नहीं देते –" उसने कहा।

कुछ देर तक हम चुपचाप चाय पीते रहे।

"तुम्हारे संग निकी नहीं आया ?" सीडी ने पूछा।

"युनिवर्सिटी गया है। उससे वहीं मिलेंगे –" मैंने कहा।

वह अखबार के दूसरे पन्ने पर कुछ खोजने लगा।

"इस बार कहाँ एप्लाई करोगे ?" मैंने पूछा।

उसने अपनी नोटबुक पर अखबार से एक पता उतार लिया।

"तुम्हारी नोटबुक अभी पूरी भरी नहीं ?" मैंने कहा।

"शट अप !" उसने कहा।

हम दोनों उठ खड़े हुए।

हम गिगेल के पोर्च में खड़े रहे। एयरकण्डीशण्ड हाल का दरवाजा जब कभी खुल जाता है, तो ठण्डी हवा का झोंका हमें ढँक लेता है।

"सच, सीडी, मैं दिन-भर यहाँ खड़ा रहूँ !" मैंने कहा।

सीडी चुप है, वह पोर्च की दीवार पर लगे हुए सिनेमा के पोस्टर देख रहा है ! ... जब तक सीडी खड़ा है, मैं पास की दूकान से 'टाइम्स' के सम्पादकीय विभाग में फोन कर आता हूँ। उन्हें आज रात तक रिव्यू मिल जाना चाहिए। आधा टाइप हो चुका था, आधा बचा है ... कल रात लिखना था। कल रात मैं सो गया।

"सीडी, कल रात तुम नहीं आये ? सब इन्तजार करते रहे।" मैंने कहा।

सीडी लड़कियाँ देख रहा है। वे पोर्च से बाहर निकलकर सिन्धिया हाउस की ओर मुड़ गयीं। अब मैं और सीडी दोनों उन्हें देख रहे हैं।

"कल रात क्या हुआ ?" सीडी ने कहा।

"निखिल लिवर्स ब्रदर्स में चला गया है। उसके संग बियर पी थी।" मैंने कहा, "कल रात लिखना था। कल रात मैं सो गया। बियर पीकर हमेशा सोचता हूँ, अब कभी नहीं पिऊँगा। रात-भर चकराता रहा और अजीब-से सपने आते रहे।"

धूप में बस स्टैण्ड की ओर चलते हुए हमने कमीजों के बटन खोल लिये। पानी में रूमाल भिगोकर मुँह पोंछा। कुछ देर के लिए लू भी अच्छी लगी। किन्तु रूमाल से पसीने की बू आती रही। कनाट प्लेस के कॉरीडोर में इस कड़कड़ाती दुपहरी में भी अँधेरा है। बाहर गर्म चुनचुनाती धूप है। शुरू की गर्मी की खट्टी-मीठी हवा है। हमने इस हवा में लहकते गुलमुहर के फूलों को देखा है।

"गरमियों में यहीं रहोगे ?"

"मंसूरी से आण्टी ने बुलाया है।" उसने कहा।

"चले क्यों नहीं जाते ? इन दिनों वहाँ कनाट प्लेस से भी कहीं ज्यादा रौनक रहती है। पिछली बार मैं गया था, तो सारी शाम 'किताबघर' के सामने गुजार देता था।" मैंने कहा।

"इस बार नहीं," सीडी ने कहा, "इस बार कम्पीटीशन में रह गया, तो 'ओवर एज' हो जाऊँगा। यहीं रहकर तैयारी करनी होगी।"

सीडी बहुत गम्भीर है।

हम दोनों ने एक ही कालेज से एम. ए. पास किया था। उन दिनों का सीडी आज भी है, मेरे संग-संग चल रहा है। किन्तु तब वह इतना गम्भीर नहीं था। उन दिनों की बातें हम आज बहुत कम करते हैं। लगता है, मानो हम किन्हीं दूसरे आदमियों की बातों को चुराकर बोल रहे हैं। हमें अपने अतीत पर बहुत शर्म आती है। यह बहुत अच्छा है कि जो लोग हमसे आज मिलते हैं, वे हमारे उन दिनों से अपरिचित हैं, जब हम हर रात डायरी लिखकर दूसरे दिन एक-दूसरे को सुनाते थे। और सोचते थे कि हम दूसरों से भिन्न हैं।

जो आज हमें देखेगा, वह कुछ नहीं जानेगा। आज जब हम अपनी पुरानी डायरी पढ़ते हैं, तो खिसियाने-से हँसते हैं, चारों ओर देखते हैं, कि हमें कोई देख तो नहीं रहा है। बिल्कुल वैसी

ही शर्म आती है, जैसे बचपन में आती थी, जब माँ पराये लोगों के सामने हमारी तारीफ करने बैठ जाती थीं।

हमारा बड़प्पन सब कोई देखते हैं, हमारी शर्म केवल हम देख पाते हैं।

बस आयी और हम पिछली सीट पर बैठ गये।

"पिछले इतवार के पेपर में 'व्हाट डू द स्टार्स टेल' (राशि-फल) देखा था ?" सीडी ने कहा।

"हाँ, अब कुछ याद नहीं रहा। तुम्हारे बारे में क्या फोरकास्ट (भविष्यवाणी) था ?"

"मैं कुछ ठीक समझा नहीं।... कहीं से कोई पत्र आयेगा, जो आनेवाले महीनों में नयी तब्दीलियों का सूचक होगा। तुम क्या अर्थ लगाते हो ?"

"शायद किसी नौकरी का ऑफर हो।"

"होता हमेशा सच है, तुमने कभी आजमाया है ?"

"नहीं, मुझे कभी याद नहीं रहता।"

"तुम्हारा कौन-से महीने का जनम है ?"

'मुझे एकदम याद नहीं आता,"शायद अप्रैल।"

"तुम्हारा एरियस है, अगले इतवार को मैं तुम्हारा भी देखूँगा।"

मैं सीडी को देखता हूँ। वह निर्विकार भाव से खिड़की के बाहर देख रहा है। बस मिण्टो रोड के रेलवे ब्रिज के पार सरकारी क्वार्टरों के सामने चौड़ी सड़क पर निकल आयी है। क्वार्टर के संग-संग लम्बी झाड़ी चली गयी है, जिस पर धूप में सूखते हुए गीले कपड़े हवा चलने से फरफराने लगते हैं। उसके बाद बस की गड़गड़ाहट मद्धिम पड़ने लगी और मैं ऊँघने लगा। इर्विन अस्पताल के स्टाप पर क्षण-भर के लिए आँख खुली थी, क्योंकि भीड़ का एक छोटा-सा लश्कर बस में चढ़ा था। फिर बस चलने पर आँख लगी थी, और दरियागंज तक मैं सोता रहा। दरियागंज पर सीडी ने हल्के-से मुझे झिंझोड़ा।

"वह आगे की तरफ बायीं सीट पर बैठी हुई लड़की तुम्हें घूर रही थी।" सीडी ने कहा।

"हेल विद हर !" मैंने जमुहाई ली और मेरी आँखों में पानी आ गया। मैंने उस लड़की की ओर देखा और फिर ऊँघने लगा।

"निकी का अफेयर कैसा चल रहा है।" सीडी ने पूछा।

"मैंने उससे पूछा नहीं।"

"आज युनिवर्सिटी शायद उसी से मिलने गया है ?"

"उसने मुझे कुछ कहा नहीं। शायद उसी से मिलने गया हो।" मैं कुछ और सोचने लगा था।

"सीडी, तुम्हें मेरी कहानियाँ कैसी लगती हैं ?" मैंने पूछा।

सीडी कुछ देर तक चुप रहा और मुझे लगा कि वह कुछ हिचक रहा है।

"अच्छी लगती हैं, लेकिन मैं सोचता हूँ कि जब तक कहने के लिए कुछ सिगनिफिकेण्ट (महत्त्वपूर्ण) चीज न हो, तब तक लिखने के क्या मानी रह जाते हैं ?"

मैं कुछ कहना चाहता हूँ, फिर भी चुप रह जाता हूँ, क्योंकि मुझे मालूम है कि मैं जो कुछ कहूँगा, वह बहुत नीरस और निरर्थक है। बहुत-से शब्द हैं और मैं अक्सर बोलते हुए गलत शब्दों को चुन लेता हूँ और फिर मुझे बुरा लगता है, और फिर जिद बँध जाती है, और मैं विषय से भटक जाता हूँ, लेकिन तब चुप रहने का अवसर चूक जाता है, और जब अन्त में बोलकर चुप हो जाता हूँ, तो मुझे लगता है कि मुझे शुरू में ही चुप रहना था।

बाहर की धूप बस की खिड़की से हमारी सीट पर गिरती है। मैं माथे का पसीना पोंछता हूँ। रूमाल से वही बू आती है।

"रिव्यू अंग्रेजी में लिखते हो, कहानी क्यों नहीं लिखते ? अंग्रेजी में तो आजकल बड़ा स्कोप है–" सीडी ने कहा।

"कभी सोचा नहीं–" मैंने कहा और खिड़की के बाहर देखने लगा। खैबरपास से मालरोड तक ऊबड़-खाबड़ धरती का विस्तार फैला है। मिट्टी के ढूहों और चट्टानों के परे जमुना है, जो हमें नहीं दिखती। दिखता है केवल मजनू का टीला, जिसकी मीनार बुझे हुए आकाश की राख कुरेदती-सी जान पड़ती है। मैं खामखाह हँसता हूँ।

"क्या बात है ?"

"सीडी, तुम्हें याद है जब हम होस्टल में थे, तो किसी रात विकेट गेट को लाँघकर यहाँ आते थे··· तब हमें बड़ा डर लगता था।"

सीडी चुपचाप ड्राइवर की सीट की ओर देखता रहा। डर हमें शायद अब भी लगे, हालाँकि बीच के कई साल गुजर गये हैं और हम काफी बड़े हो गये हैं, मैंने सोचा।

बस युनिवर्सिटी के मोड़ पर मुड़ गयी। मैं अब हँस नहीं रहा हूँ। मैं अब उस लड़की को देख रहा हूँ जो आगे की सीट पर बाँयीं ओर बैठी है और जिसने मुझे ऊँघते हुए देखा था। बाहर की धूप उसके जूड़े पर पड़ रही है।

युनिवर्सिटी कैण्टीन में निकी ने हमें दूर से ही देख लिया। दूर से ही उसने 'हलो' कहा और हमने हवा में हाथ हिला दिये। भीड़ में हमें उसका 'हलो' सुनायी नहीं दिया, किन्तु उसने काफी जोर से कहा होगा, क्योंकि उसके पास बैठी हुई दोनों लड़कियों ने पीठ मोड़कर हमारी ओर देखा।

'हलो नीलू ! हमने तुम्हें लाइब्रेरी में देखा, और तुम यहाँ हो !" सीडी ने कहा।

"यह है प्रभा, यह है परेश," नीलू ने कहा।

"हाऊ डू यू डू ?" मैंने कहा।

"हाऊ डू यू डू ?" प्रभा ने कोल्ड कॉफी में डूबी स्ट्रा से क्षण-भर के लिए मुँह हटाकर मेरी ओर देखा। किन्तु उसकी आँखें हठात् सीडी की ओर मुड़ गयीं। लड़कियाँ सीडी को हमेशा ऐसे

ही देखती हैं, मानो वह पुडिंग की प्लेट हो।

"कैसे पेपर हुए ?" मैंने नीलू से पूछा।

"शायद अगले साल फिर आना पड़ेगा–" वह कहीं भी नहीं देख रही थी।

"डोंट बि सिली," मैंने कहा।

उसने मेरी ओर देखा, क्षण-भर, अपलक, मानो मैं कोई अजनबी हूँ और वह मुझे पहल बार देख रही है। मुझे लगता है, जैसे यह बहुत दूरी की निगाह है, जो मुझे बहुत पास से देख रही है। मैं सोचता हूँ कि मैं यह बात नीलू से कहूँ, किन्तु मैं चुप रहता हूँ, क्योंकि शब्द बहुत हैं और मैं अक्सर गलत शब्दों को चुन लेता हूँ।

"निकी भी अजीब सनकी है," प्रभा ने सीडी से कहा–"हमेशा वही रिकार्ड बजाता है !"

जूक बाक्स पर लाल सितारे-सी रोशनी जल गयी। निकी ने हाथ आगे बढ़ाकर बटन दबाया। यह निकी का संकेत था, निकी ही कर सकता था। बहुत पुराना दृश्य आँखों में घूम गया, जब सार्त्र के नाटक 'नो एक्जिट' में निकी ने इस तरह अवरुद्ध, अनिश्चित ढंग से शून्य में संकेत करते हुए कहा था, 'हेल, हेल इज द अदर्स !' जूक बाक्स के शीशे में रिकॉर्ड छोटे पहिये-सा हवा में चक्कर काटता हुआ डिस्क पर आ गिरा। एक क्षण के लिए स्तब्ध, परेशान-सा ठिठक रहा, सुई के स्पर्श की प्रतीक्षा में फिर चौंककर सचेत हो गया।

एक बहुत पुरानी डान्स ट्यून, मानो, चिरीको के चित्र से बाहर आ रही है। सूनी, अन्धी गलियों में भुतैले मकानों की नंगी छायाएँ, जिनमें वह ट्यून एक पागल जिप्सी-सी भटक रही है।

"निकी, प्लीज, स्टाप इट !" प्रभा ने कहा।

लेकिन निकी कहीं पास नहीं है। वह जूक बाक्स के पास खड़ा हुआ प्रभा को देख रहा है।

"कल मैं तुम्हारे होस्टल आया था, तुम बाहर थीं –" मैंने नीलू से कहा।

"हाँ, कल हम सब पिक्चर देखने गये थे। कल हमारा आखिरी पेपर था। मैं सिर्फ दो प्रश्न करके उठ आयी थी। अला-बला लिख आयी हूँ।" –नीलू हँसने लगी।

मुझे लगा कि उसका चेहरा बहुत पीला है और हँसने पर आँखें थिर रहती हैं मानो खुद नीलू की हँसी से बाहर हैं। वह बहुत तेजी से बोल रही है, जैसे उसे डर है कि कोई बीच में उसका आधा वाक्य पकड़कर मरोड़ न दे।

"पेपर के बाद हम पिक्चर देखने गये थे, 'लव इज ए मैनी स्पलैण्डर्ड थिंग'। जेनीफर जोन्स बिल्कुल चीनी लगती है। और पिक्चर के बाद हम एसप्रेसो गये थे। मैंने जूक बाक्स पर रिकॉर्ड बजाया था। हमने सोचा था, तुम वहाँ होगे। और हम जब बाहर आये, तो अँधेरा था। और हमने सिगरेट पी, अँधेरे में, और मुझे बिल्कुल खाँसी नहीं आयी। सच परेश, बड़ा मजा रहा। होस्टल में देर से पहुँचे थे, किन्तु आखिरी दिन होने के कारण मैट्रन ने कुछ नहीं कहा। तुम कब आये थे ?"

'मेरी चिट मिली थी ?"

"हाँ, मुझे मिली थी। सोचा था, सुबह पढ़ूँगी, फिर याद नहीं रहा। क्या लिखा था ?"

"रहने दो, कुछ भी नहीं था।"

"मेरे बैग में अब भी पड़ी होगी, देखूँ ?"

"रहने दो, कुछ भी नहीं था।"

मैंने नीलू को देखा और मेरी आँखें नीचे उतर आयीं। मैंने उसकी कालर-बोन के पास छोटे-से गिट्टे को देखा। उसके तनिक ऊपर बित्ते-भर का गढ़ा था। मेरी आँखें उस गढ़े में टिक गयीं। मैंने कई बार सोचा है कि किसी दिन मैं कालर-बोन के उस गढ़े को अपनी जुबान की नोक से स्पर्श करूँगा। उस गढ़े में हल्का पसीना है। मैंने कई बार सोचा है कि किसी दिन मैं उस पसीने को अपने होंठों से चूस लूँगा।

"इस इतवार को परेश का रिव्यू 'टाइम्स' में आयेगा–" सीडी ने कहा।

मैंने सीडी को देखा। उस क्षण मुझे सीडी से गहरी घृणा हुई।

"अच्छा तो आप लिखते भी हैं ? हाऊ वण्डरफुल"–प्रभा ने कहा। मैं दूसरी ओर देखने लगा, मुझे सीडी पर बेहद गुस्सा था।

"हमारे शहर में 'टाइम्स' नहीं आता, कटिंग भेजो तो मैं भी पढ़ूँगी–" नीलू ने कहा।

"तुम कब जा रही हो ?" मैंने कहा।

"आज रात को। आखिरी पेपर के बाद होस्टल में रहने की इजाजत नहीं है।"

"हाऊ फनी !" सीडी ने कहा।

"हाँ, जैसे कालेज न हो, किंडरगार्टन हो !" प्रभा ने कहा।

निकी ने बिल चुकाया। हम कैण्टीन के बाहर आ गये। धूप में आँखें चुँधिया गयीं। नीलू ने साड़ी के पल्लू से सर ढँक लिया। लॉ कालेज के सामने लॉन पर फूलों की क्यारियों के बीच कुछ लड़के बैठे थे। हम पीछे मुड़कर दूसरी ओर से जाने लगे। उनमें से किसी ने हमारी ओर देखकर सीटी बजायी। हमने पीछे मुड़कर देखा, वे लोग हँस रहे थे और हवा में रूमाल हिला रहे थे। नीलू ने भी उनकी ओर देखते हुए हाथ हिलाया।

"तुम पागल तो नहीं हो गयी हो, झाड़ के काँटे की तरह कल तुम्हारे पीछे पड़ जायेंगे।" प्रभा ने झुँझलाकर उसका हाथ झिंझोड़ दिया।

मैं विस्मित-सा नीलू को देखता रहा।

"कल मैं यहाँ नहीं हूँगी," नीलू ने कहा–"और फिर हाथ हिलाने में क्या हर्ज है ? वे सब लोग हवा में रूमाल हिलाते हुए कितने अच्छे लग रहे थे ? दे वर लुकिंग लाइक सेलर्स ! क्यों निकी, लग रहे थे न ?"

हम लॉन पार करके लाल बजरी की सड़क पर आ गये। वहाँ से हम सेण्ट स्टिफन्स कालेज के चैपल का क्रास देख सकते थे। वह उस दुपहरी में बहुत अकेला और अपने में बहुत

खोया-सा दिखायी दे रहा था। उसके ऊपर सिर्फ आकाश था। लाल बजरी की सड़क के सिरे पर फिजिक्स लैब के सामने सीडी ने कहा कि वह कुछ देर के लिए लाइब्रेरी जायेगा।

"इस वक्त लाइब्रेरी में क्या करोगे ?" प्रभा ने पूछा। लगता था कि उसे सीडी का जाना कुछ अच्छा नहीं लगा।

निकी का चेहरा पत्थर-सा भावहीन हो आया—"सीडी इस साल आई. ए. एस. में बैठ रहा है।" —निकी ने उसी निर्विकार भाव से कहा।

सीडी ने निकी को ऐसे देखा, मानो उसे फाड़कर खा जायेगा। न जाने हम सब इतनी जल्दी अपने पर क्यों शर्मिन्दा हो जाते है ?

"हाऊ वण्डरफुल !" प्रभा ने कहा।

"मैं लाइब्रेरी सिर्फ 'लन्दन मैगजीन' देखने जा रहा था। वर्जीनिया वुल्फ की डायरी के कुछ पन्ने छपे है।"—सीडी ने अटकते, लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा।

"नीलू, आज शाम तुम क्या कर रही हो ?" मैंने कहा।

"पैकिंग—" नीलू ने कहा।

"मैं स्टेशन आऊँगा," मैंने जान-बूझकर प्रश्न नहीं पूछा, ताकि उसे उत्तर न देना पड़े वह कुछ देर तक चुप रही। मै बराबर उसकी कालर बोन के गढ़े को देखता रहा।

"होस्टल की लड़कियाँ मेरे संग होंगी," उसने कहा।

"तो फिर मैं आज शाम को होस्टल आऊँगा, गेट के बाहर," मैंने कहा।

उसने कुछ नहीं कहा।

युनिवर्सिटी लॉन से लाइब्रेरी का चक्कर काटकर प्रभा और नीलू, अपने कालेज की सड़क पर मुड़ गयीं।

"गुड बाई !" हमने हवा में हाथ हिलाये।

निकी प्रभा को देख रहा है। प्रभा प्रीवियस में है, वह छुट्टियों बाद वापस आयेगी। निकी धीरे-धीरे स्टैण्ड की ओर चलने लगा।

मैं कुछ देर तक वैसा ही, उसी स्थान पर खड़ा रहा, जहाँ से वे अलग हुई थीं। मैंने सोचा था कि नीलू एक बार पीछे मुड़कर देखेगी। मैंने सोचा था कि मैं एक बार केवल उसी के लिए हाथ हिलाऊँगा।

किन्तु नीलू प्रभा के संग धीरे-धीरे आगे चलती गयी।उसने साड़ी के पल्लू से अपना सिर दुबारा ढँक लिया। उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। वह और प्रभा किसी बात पर हँस रही थो और हँसते-हँसते खडी हो गयी थीं। फिर कुछ दूर चलकर वे आँखों से ओझल हो गयीं।

बस मं हम दोनों चुप रहे। लू के संग धूल की गर्म मोटी परतें बस के भीतर चली आती थीं। इसलिए हमने खिड़की के शीशे ऊपर चढ़ा दिये। खिड़की के बाहर कहीं आकाश नहीं था, केवल गर्द की चादर थी, जिसके पीछे सूरज मैले आईने में बुझते दीये-सा जल रहा था। कश्मीरी

गेट पहुँच कर निकी ने कहा–"चलो, ज़रा नीचे उतरकर साँस लें। भीतर मेरा दम घुट रहा है।"

टिकट करोलबाग का लिया था, किन्तु मैंने कुछ नहीं कहा।

"थोड़ी-सी बियर पी लें, गला सूख रहा है–" निकी ने कहा।

हम कार्लटन में जाकर बैठ गये।

"मैं नहीं लूँगा, निकी–" वेटर के आने पर मैंने कहा।

"क्यों ?"

"मुझे रिव्यूं पूरा करना है और बियर के बाद मुझसे कुछ काम नहीं होता।" मैंने वेटर से एक विमटो लाने के लिए कह दिया, ताकि निकी ज्यादा बहस न करे। मुझे निकी अच्छा नहीं लगता, जब वह चुप रहता है। कुछ देर तक निकी चुपचाप बियर पीता रहा।

"परेश, तुम्हें प्रभा कैसी लगती है ?"

"मैं उसे जानता नहीं, महज देखा भर है–" मैंने कहा।

"क्या वह और लड़कियों-सी नहीं है ?" निकी ने कहा।

"पता नहीं, निकी, मैं कम, बहुत कम लड़कियों को जानता हूँ, जिनमें मेरी माँ और बहन भी शामिल हैं।"

निकी बियर के गिलास के पीछे से मुझे घूरता रहा। मुझे निकी अच्छा नहीं लगता, जब कभी वह इस तरह देखता है।

"और नीलू ?" निकी ने दूसरा गिलास भरा। वह मेरी ओर देख रहा था।

"मे बी येस, मे बी नो !"

हम दोनों हँसने लगे। यह हमारे बीच पुराना मजाक है। जब हम किसी बात को नहीं जानते, तो हमेशा इस वाक्य का सहारा पकड़ लेते हैं।

"परेश, थोड़ी-सी पी लो।"

"नहीं, मैं ठीक हूँ।"

"अच्छा, एक घूँट !"

मैंने उसके गिलास की बियर अपनी विमटो में डाल ली।

"थोड़ी-सी और लो !"

"नहीं निकी, इतनी काफी है।"

"परेश, क्या तुम प्रेम करते हो ?"

"निकी, चलो–" मैंने धीरे-से उसका हाथ खींचा।

"मुझे लगता है, परेश, कि प्रभा और मेरे बीच कुछ भी नहीं है", निकी ने कहा।

"यू आर क्रेजी, निकी"–मैंने कहा।

"देखा नहीं, वह सीडी को कैसे देख रही थी–" उसने कहा।

"सब लड़कियाँ सीडी को ऐसे ही देखती है," मैंने कहा– "निकी चलो।" मैंने उसका

कन्धा पकड़कर उठाने की चेष्टा की।

उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया–"परेश, तुम्हारी क्या उम्र है ?"

"निकी, पहले बाहर चलो," मैंने कहा।

"परेश, क्या तुम अभी तक वर्जिन हो ?"

मैंने जबर्दस्ती निकी को कुर्सी से उठा लिया। वेटर से टैक्सी लाने के लिए कहा और अपने रूमाल से निकी का मुँह साफ करने लगा।

"नींबू चूसोगे, निकी ?" मैंने उसके कन्धे को अपनी बाँह से घेर लिया।

"यू आर डियर, परेश !" निकी हँस रहा था।

जब हम घर पहुँचे, तो हल्की-सी बूँदाबाँदी होने लगी थी। निकी अब ठीक था। दोपहर-भर वह मेरी काउच पर लेटा-लेटा फ्रेंच गानों की धुनें गुनगुनाता रहा। कभी-कभी जब रात के समय में सोते हुए जाग जाता, तो देखता कि वह पाल वर्ला या एपोलोनियर की कविताएँ अँधेरे में ही गुनगुना रहा है।

"परेश, क्या कार्लटन में मैं बहुत ज्यादा बकवास कर रहा था ? तुमने मुझे रोका नहीं ?" निकी ने कहा।

"छोड़ो भी, निकी। तुम कुछ देर सो जाओ।" मैं अपना रिव्यू टाइप करता रहा।

"परेश"–उसके स्वर में एक अजीब-सा भारीपन था। हाथ रोककर मैंने उसकी ओर देखा, उसके लम्बे, साँवले चेहरे पर बढी हुई दाढ़ी के ऊपर दो उदास आँखें मुझे देख रही थीं।

"मैं सोचता हूँ, गरमियों में कहीं चला जाऊँ। इस तरह मुझसे निठल्ले नहीं बैठा जाता।"

"तुम चले जाओगे, तो रिहर्सल का क्या होगा ?"

"रिहर्सल सितम्बर तक नहीं होंगे। कल ही यूनिट ने फैसला किया है।" वह करवट बदलकर पेट के बल लेट गया और दोनों कुहनियों पर उसने अपना मुँह टिका लिया।

"निकी, तुम किसी प्रोफेशनल थियेटर में क्यों नहीं चले जाते, कब तक ऐसे घिसटते रहोगे ?"

"यहाँ रहकर कुछ नहीं होगा। अगर कभी गया, तो ब्राडवे या पैरिस जाऊँगा।"

"किसी स्कॉलरशिप के लिए क्यों नहीं कोशिश करते ? तुम्हें फ्रेंच तो आती है।"

"मुझसे यह सबकुछ नहीं होता। मैं शायद कुछ भी नहीं कर पाऊँगा।" उसने आँखें मूँद लीं और धीरे-धीरे काउच पर अपने पैर हिलाता रहा।

मैं फिर अपने टाइपराइटर के सामने बैठ गया। मन ऊबा था। खिड़की के शीशे पर बारिश की बूँदें छिटक आयी थीं। निकी आँखें मूँदे सीटी बजा रहा था। मैंने नया पन्ना जोड़ा और धीरे-धीरे टाइप करता रहा, केवल एक ही वाक्य, कभी शुरू के शब्द, कभी आखीर के शब्द, पन्ने की अन्तिम लाइन तक, इन द ईवनिंग आई शैल मीट नीलू (शाम को नीलू से मिलूँगा)··· आई शैल मीट नीलू इन ईवनिंग··· इन द ईवनिंग, इन द ईवनिंग··· जब पूरा पन्ना

मर गया, तो उसे वहीं छोड़कर मैं उठा और चाय का पानी स्टोव पर रख आया।

"परेश, तुम कभी मुझे अपनी कहानी क्यों नहीं बताते ? तुम जानते हो, हिन्दी मैं एक लफ्ज नहीं पढ़ पाता।" निकी ने कहा।

मैं चुपचाप टाइप करता रहा। मुझे मालूम है, कहानियाँ हमेशा उसे उबा देती हैं। वह केवल मेरा जी खुश करने के लिए ही शिकायत करता है।

कुछ देर बाद हमने चाय पी।

"मेरी एक तमन्ना है, निकी," मैंने कहा–"मैं एक ड्रामा लिखूँ, जिसमें तुम एक्ट करो और मैं आगे की सीट पर बैठूँ, और तुम्हारे मुँह से वे शब्द सुनूँ, जो मैंने लिखे हैं और..."

किन्तु निकी ने मुझे बीच में ही टोक दिया–"और उस रात आडिटोरियम में मेट्रो गोल्डन मेयर का कोई बड़ा डाइरेक्टर बैठा हो। प्ले के एकदम बाद वह हम दोनों के संग कण्ट्रैक्ट कर ले, तुम सीनिरियो लेखक और मैं..."

"हालीवुड का नया जेम्स डीन्स !" मैंने कहा।

हम बहुत देर तक हँसते रहे। चाय मेज पर पड़ी-पड़ी ठण्डी हो गयी। रेमिंग्टन में दबा आधा टाइप किया हुआ रिव्यू मानो विस्मित-सा होकर हम दोनों के पागलपन को देखता रहा।

एक घण्टे बाद रिव्यू टाइप कर चुकने पर जब मैंने पीठ मोड़ी, तो देखा, निकी काउच पर घुटने उठाये, पोटली-सा बना हुआ सो रहा है।

"निकी," मैंने कहा, धीरे-से सीटी बजायी, किन्तु वह पूर्ववत् सोता रहा। मैंने उसके घुटने काउच पर फैला दिये और कुर्सी से कुशन उठाकर उसके सिरहाने रख दिया। कमरे की चाभी ताले में लगाकर मेज पर रख दी। मैं अपना मुँह हौले से उसके कान के पास ले गया। उसके मुँह से बियर की बू अब तक आ रही थी। मैंने उसके माथे पर गिरे बाल पीछे खिसका दिये और धीरे-से कहा–"जेम्स डीन्स !"

वह हँसा नहीं। मैं चुपचाप दरवाजा बन्द करके कमरे के बाहर हो गया।

जब बस से उतरा, बादल छितर आये थे। भीगी सड़कों पर भाप के हल्के, झीने बादल उड़ रहे थे। रजिस्ट्रार के बँगले से आगे युनिवर्सिटी रोड के दायीं ओर एक छोटी-सी लेन चली गयी है। इस लेन पर धूप और छाया आधी-आधी बँट गयी है। मैं आधी छाया पर चलता हूँ, मेरी छाया आधी धूप पर गिरती है।

होस्टल के मेन गेट की दीवारों पर काँच के टुकड़े शाम की धूप में चमक रहे हैं। ऊपर की मंजिल में दाहिने विंग पर उसका कमरा है। खड़ा-खड़ा मैं जेब में हाथ डालकर कहानी के पन्नों को छूता हूँ। बहुत दिन पहले लिखी थी। बहुत दिन पहले नीलू ने माँगी थी। मुझे मालूम है कि वह ऐसे ही पूछती है, ऐसे ही भूल जाती है। लेकिन शायद कहीं याद हो, पूछेगी, तो दे दूँगा। दूँगा नहीं, केवल दिखला-भर दूँगा। दिखलाकर कहूँगा, नहीं, कहूँगा कुछ नहीं, सिर्फ शीर्षक बतला दूँगा, फिर शीर्षक का अंग्रेजी में अनुवाद करूँगा, क्योंकि अंग्रेजी में शीर्षक हमेशा अच्छा

सुनायी देता है। नहीं, यह सबकुछ नहीं करूँगा, जेब में ही पड़ा रहने दूँगा और अगर वह पूछेगी, तो कहूँगा, नहीं, कहूँगा कुछ नहीं...

"कब से खड़े हो ?"

मैंने अचकचाकर पीछे देखा।

नीलू मुझसे कुछ दूर खड़ी थी।

"कहाँ से आ रही हो ?" मैंने पूछा।

"युनिवर्सिटी लाइब्रेरी में किताबें वापिस करनी थीं।"

मैंने रूमाल निकालकर पसीना पोंछा। हवा में घुटती-सी उमस थी।

"लाइब्रेरी सिक्योरिटी के रुपये वापिस मिले हैं। यहाँ रहती, तो आज सब पिक्चर जाते।" उसने कहा।

"नीलू"—मुझे अपनी आवाज के कम्पन से घृणा होती है। मैं फिर पसीना पोंछता हूँ।

"क्या परेश ?" नीलू ने कहा।

"तुम छुट्टियों बाद आओगी ?"

"हाँ, शायद आना पड़े, सारे पेपर बिगड़ गये हैं—" उसने कहा।

"डोण्ट बी सिली !" मैंने धीरे-से कहा।

"सारा सामान बिखरा पड़ा है। अभी कुछ भी पैक नहीं किया।" नीलू ने कहा।

मेरा हाथ जेब में जाता है। मेरी अँगुलियाँ कहानी के पन्ने को छू रही हैं।

"परेश, अपने रिव्यू की कटिंग जरूर भेजना। हमारे शहर में 'टाइम्स' नहीं आता। मेरा पता मालूम है ?"

उसने पर्स से कागज निकाला और पता लिखने लगी। मेन गेट की बत्ती जल गयी। उसकी झुकी हुई गर्दन के नीचे कालर-बोन का छोटा-सा गढ़ा चमकने लगा। मुझे लगा, वह क्षण बहता पानी है, मेरी उम्र के सब साल इर्द-गिर्द खड़े नीचे झाँक रहे हैं, उनकी छायाएँ मेरे और उस क्षण के बीच झिलमिल-सी तिरती जाती हैं...

"परेश, तुम गरमियों में यहीं रहोगे ?" उसने वैसे ही सर झुकाये लिखते हुए पूछा।

"क्यों ?"

"तुम यहाँ बेकार अपना समय बरबाद कर रहे हो।"

मैं चुप रहा और अँधेरे में दूर होस्टल की इमारत देखने लगा।

"सुनो, तुम किसी पेपर के प्रतिनिधि बनकर बाहर क्यों नहीं चले जाते ?"

"बाहर कहाँ ?"

"क्यों, सारी दुनिया पड़ी है !... लन्दन, न्यूयार्क, पैरिस..."

मैं हँसने लगा।

"सच ! अभी मेरा कजिन कैरो गया था, स्वेज की खबरें कवर करके लौटा है। तुम अगर

जाओ, तो हर शहर से पिक्चर पोस्टकार्ड भेजना। पिरामिड्स, आइफल टावर, लूव्र..."

मैं अब हँस नहीं रहा, बेवकूफ-सा नीलू को देख रहा हूँ। मेरी अँगुलियों से कहानी के पन्ने छूट गये और मैंने अपना हाथ जेब से बाहर निकाल लिया।

"अच्छा परेश, मैं चली। सारा सामान खुला पड़ा है। दिन-भर आलस के मारे कुछ भी पैक नहीं किया। यह पता रख लो। कटिंग जरूर भेजना।"

मैं चुपचाप अँधेरे में खड़ा हूँ। नीलू मेन गेट के भीतर दो कदम चलकर रुक गयी, "तुम अब कहाँ जाओगे?"

"एसप्रेसो! सीडी और निकी इन्तजार में होंगे"—मैंने कहा।

"वह ट्यून याद है, जो पिछली बार एसप्रेसो में बजायी थी?" नीलू ने कहा।

मैंने सर हिलाया। मुझे नीलू के संग बितायी गयी शामें याद हैं, "थ्री कायन्ज इन द फाउन्टेन"—मैंने कहा।

"आज वह रिकॉर्ड बजाओगे?" उसने कहा।

"तुम उस समय ट्रेन में होगी, नीलू"—मैंने कहा।

"फिर भी बजाना... दस बजे... मैं उस समय तुम सबको याद करूँगी। निकी, सीडी और तुम्हें और दिल्ली में बिताये दो साल!"

"गुड बाई, नीलू!"

नीलू ने हाथ हिलाया। वह अँधेरे में चली गयी।

मैं अँधेरे में खड़ा रहा, पिक्चर पोस्टकार्ड! नीलू ने पिक्चर पोस्टकार्ड के बारे में क्या कहा था?

बारिश के बाद भी रात गर्म थी। गीली सड़कों पर दुकानों की नियोन लाइट्स के नीचे चलते हुए मुझे वे सब बातें याद हो आयीं, जो मैं नीलू से कहना चाह रहा था और नहीं कह पाया था। मुझे अच्छा लगा कि मैंने उन्हें नहीं कहा। अब सोचकर मुझे शर्म आ रही थी, क्योंकि कुछ बातें हैं, जो एक उम्र के संग जुड़ी होती हैं, और अगर उम्र बीत जाये, और वे अनकही रह जायें, तो उन्हें कभी कहना नहीं होता।

एसप्रेसो में कोने की कुर्सी पर निकी बैठा था। हाथ के इशारे से उसने मुझे पास बुला लिया। वेटर को बुलाकर उसने एक एसप्रेसो कॉफी लाने के लिए कहा। "तुम नहा लोगे?" – मैंने पूछा।

"पिछले एक घण्टे से बैठा हूँ। तुम्हें इतनी देर कैसे हो गयी?" निकी ने पूछा।

"मैं नीलू के होस्टल गया था" – मैंने कहा।

"प्रभा मिली थी?" उसने पूछा।

"नहीं, उसके पेपर अभी बाकी हैं –" मैंने कहा।

"क्या नीलू को 'स्टेशन सी आफ' करने गये थ?" उसने कहा।

"नहीं, होस्टल म ही लौट आया" – मैंने कहा।

निकी धीरे-से मेरे पास झुक आया – "तुम्हारी आँखें झपक रही हैं, सच बतलाओ, क्या कुछ पीकर आये हो ?"

"शट अप, निकी !" मैंने कहा।

एसप्रेसो में भीड़ छँटने लगी थी। वेटर खाली घूम रहे थे। दो-चार विद्यार्थी जूक-बाक्स के पास खड़े हुए आपस में हँस रहे थे।

"परेश, एक बात पूछूँ ?" निकी मुझे ध्यान से देख रहा था।

"क्या निकी ?"

"क्या तुम कभी कम्युनिस्ट रहे थे ?" निकी ने कहा।

"निकी, तुमसे किसने कहा ?"

"सीडी ने कहा था। लेकिन मैंने विश्वास नहीं किया। क्या यह सच है, परेश ?"

"सीडी ने क्या कहा था ?"

"कुछ नहीं, मुझे सिर्फ उत्सुकता हुई थी। जानते हो, मेरा अभी तक किसी कम्युनिस्ट से वास्ता नहीं पड़ा। दूर से देखा है, लेकिन इतने पास से कभी नहीं, जितने तुम हो। परेश, क्या सचमुच तुम कम्युनिस्ट रह चुके हो ?"

"निकी, अगर तुम्हारी बीती हुई उम्र के पिछले पाँच साल तुम्हें कोई लौटा दे, तो तुम क्य करोगे ?"

निकी कुछ देर तक विस्मित-सा एकटक मुझे निहारता रहा। जूक-बाक्स पर जाज का रिकॉर्ड बजने लगा था।

मैं आर्मी में चला जाता !" निकी की आँखों पर अजीब घनी-सी तरलता घिर आयी–"परेश, मुझे एक बात का हमेशा दुख रहेगा, पिछली लड़ाई में मैं बहुत छोटा था, वर्ना मैं जरूर जाता !"

कुछ देर बाद दरवाजा खुला और हमें सीडी भीतर आता हुआ दिखलायी दिया। उसके चेहरे पर मुस्कराहट चमक रही थी। वह बीच की कुर्सियाँ हटाता तेजी से हमारी टेबुल के पास आ गया।

"हलो, सीडी ! इतनी देर कैसे हो गयी ?" निकी ने उसके आगे कुर्सी खिसका दी।

"बाबू का मनीआर्डर आया है। आण्टी के पास मसूरी जाने के लिए लिखा है।" सीडी की मुस्कराहट सारे चेहरे पर फैल गयी।

"लेकिन तुम तो आई. ए. एस. की परीक्षा के लिए रुक गये थे ?" मैंने उसे चिढ़ाते हुए कहा।

लेकिन वह चिढ़ने के मूड में नहीं था – "अभी दो महीने पड़े हैं। वहीं तैयारी कर लूँगा।"

"कब जाओगे ?"

"कल। टिकट खरीदने लगा था, इसलिए देर हो गयी।"

"हाऊ वण्डरफुल, सीडी !" निकी ने हँसते हुए सीडी के कन्धे झिंझोड़ दिये – "साडी, लैट अस सेलीब्रेट टुनाईट !"

सीडी ने वेटर से तीन क्रीम कॉफ़ी लाने के लिए कहा – "एक पिक्चर क्यों न संग देख ली जाय, क्या बजा है, निकी ?"

"दस बजने में कुछ मिनट बाकी हैं, अभी तो न्यूज रील चल रही होगी।"

दस बजे ... दस बजे ... नीलू ने कहा था ...

"सीडी, परसों तुम इस वक्त मॉल पर होगे। सामने पहाड़ियों में घिरी देहरादून की रोशनियाँ होंगी। मैं दो साल पहले गया था।" निकी ने कहा।

"जल्दी करो, दस बज रहे हैं !" सीडी ने कहा।

"परेश, सच बताओ, तुमने आज पी है, तुम्हारी आँखें इतनी मुँदी-मुँदी क्यों हैं?"

"निकी, यू आर क्रेजी !" मैंने कहा।

"सीडी, क्या मसूरी में प्रोहीबिशन है ?" निकी ने पूछा।

"पता नहीं। जल्दी करा, दस बज रहे हैं !" सीडी ने कहा।

दस बजे मैं ट्रेन में हूँगी, नीलू ने कहा था।

हम सब उठ जाते हैं। मैं धीरे-धीरे जूक-बाक्स के पास आया और कुछ देर तक उसके सामने खड़ा रहा।

"जल्दी करो, परेश ! वहाँ खड़े क्या कर रहे हो ?"

मैंने चवन्नी डालकर धीरे-से बटन दबाया।

रिकॉर्ड धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा। जूक-बाक्स के भीतर सितारे-सी लाल बत्ती जल उठी।

राजकमल पेपरबैक्स

निर्मल वर्मा

प्रतिनिधि कहानियाँ

'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित निर्मल वर्मा हिन्दी के विशिष्ट कथाकार हैं। उनके द्वारा उद्घटित एक नये वस्तुजगत और उसे अभिव्यक्ति करनेवाली नयी रचनात्मक भंगिमा ने नयी कहानी को जैसी कलात्मक सार्थकता प्रदान की है, आज उसे एक तथ्य के रूप में स्वीकार लिया गया है।

निर्मल मनुष्य-जीवन की ऐकान्तिक अनुभूतियों के रचनाकार हैं। व्यक्ति और समाज का बाहरी और स्थूल यथार्थ उनके यहां नहीं के बराबर है, क्योंकि उनका सरोकार समाज में निरन्तर अकेले होते जा रहे व्यक्ति के अन्तर्मन से कहीं ज्यादा गहरा है। वे उसके आन्तरिक कोलाहल और हाहाकार के चित्रण से ही जैसे इस त्रासद समय पर टिप्पणी करते हैं। इसके लिए उन्हें किसी घटना का सहारा नहीं चाहिए, चाहिए सिर्फ एक परिवेश और उसकी धाड़कनों को अनुभूत कर सकनेवाला संवेदनशील हृदय और निर्मल की प्रायः प्रत्येक कहानी इसी रचनात्मक जरूरत से उपजी है-एक विशेष मूड और मनःस्थिति के आद्यन्त निर्वाह से परिपूर्ण, जिसे हम अपने भीतर महसूस करते हैं। वस्तुतः ये सभी कहानियाँ एक गूँज या अहसास की तरह हमारी संवेदना में उतर जती हैं और फिर धीरे-धीरे उसमें घुलती रहती हैं।

आवरणचित्र : रामकुमार

राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली पटना